ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ४४

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

[भाग १]

श्री नेमिचन्द्र शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

दो शब्द

जैन साहित्य विशाल है। इस साहित्यका विपुल भाग अपभ्रंश और हिन्दी भाषामें लिखा गया है। अपभ्रंश भाषा हिन्दीकी जननी है। हिन्दीका विकास और विस्तार अपभ्रंशसे ही हुआ है। शैली एवं आकृतिगठनमें हिन्दी अपभ्रंश भाषाकी ऋणी है। हिन्दीमें महाकाव्यों का प्रणयन सस्कृत साहित्यके महाकाव्योंके आधारपर नहीं हुआ है, बल्कि अपभ्रंश भाषाके महाकाव्योंके आधारपर हुआ है। रामचरित-मानस और पद्मावत जैसे प्रसिद्ध काव्यग्रन्थोंकी शैली अपभ्रंशकी है। देशीभाषामें भी जैन कवियोंने अनेक काव्यग्रन्थोंका निर्माण किया है। इस भाषामें भी अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य और गीतिकाव्य लिखे गये हैं। अतः प्रत्येक निष्पक्ष जिज्ञासुके हृदयमें इतने विशाल साहित्यके जाननेकी इच्छा बराबर हुआ करती है।

साहित्यरत्नके विद्यार्थियोंको अध्यापन कराते समय मुझे अनेक आलोचनात्मक ग्रथोंको देखनेका अवसर मिला। श्री डॉ० रामकुमार वर्मा, आचार्य शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रसिद्ध इतिहास-कार और आलोचकोंने जैन साहित्यके विवेचनके समय केवल अपभ्रंश भाषामें निबद्ध साहित्यपर ही विचार किया है तथा यह विचार भी उपलब्ध अपभ्रंश साहित्यको देखते हुए अपर्याप्त ही है। हिन्दी जैन साहित्यके अमूल्य रत्नोंके अवलोकनका समय या अवसर हिन्दीके हमारे मान्य आलोचकोंको मिला ही नहीं, इसके कई कारण हैं—सबसे प्रबल एक कारण तो यह है कि हिन्दी जैन साहित्य अभी सर्वसाधारणके लिए उपलब्ध नहीं है। अधिकांश उच्चकोटिके ग्रन्थ अभी भी अप्रकाशित हैं। जो प्रकाशित भी हैं, वे भी सभीको उपलब्ध नहीं तथा उनकी छपाई-सफ़ाई आदि बहुत प्राचीन एवं निम्नस्तरकी है, जिससे एक सुरुचि सम्पन्न पाठकको ऐसी पुस्तकें छूनेका भी साहस नहीं होता। अतः अधिकाश आलोचक जैन साहित्यके सम्बन्धमें यही लिखकर छोड़ देते है कि इस साहित्यका भाषाकी दृष्टिसे महत्त्व है, विचारोंकी दृष्टिसे नही।

पर वास्तविकता इससे बहुत दूर है ; क्योंकि जैन साहित्यका भाषाकी दृष्टिसे उतना महत्त्व नहीं, जितना विचारोंकी दृष्टिसे है। इस साहित्यमे मानवताको अनुप्राणित करनेवाली भावनाओंकी प्रचुरता है। ससारके किसी भी साहित्यके समक्ष इस साहित्यको तुलनाके लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। नवरसमयी हृदयको आन्दोलित करनेवाली पिच्छिल रसधारा इस साहित्यमें विद्यमान है। शब्द और अर्थकी नवीनता, शब्दों के सुन्दर विन्यास, भावोंका समुचित निर्वाह, कल्पनाकी ऊँची उड़ान, मानवके अन्तरंग और बहिरंगका सजीव विश्लेषण इस साहित्यमे सर्वत्र मिलेगा। अतः हृदयमें एक भावना उत्पन्न हुई कि कतिपय हिन्दी जैन ग्रन्थोंका अध्ययन कर एक अनुशीलन प्रस्तुत किया जाय। यद्यपि हिन्दी भाषामें निबद्ध जैन साहित्य विशाल है, उसका सागोपाग अनुशीलन प्रस्तुत करना, तनिक कठिन है, तो भी इस प्रयासमे लब्धप्रतिष्ठ कवियों एवं लेखकोंकी प्रमुख रचनाओंका परिशीलन उपस्थित करनेका आयास किया गया है।

अपभ्रंश भाषाका साहित्य इतना विशाल है कि इस साहित्यपर एक बृहत्काय अनुशीलनात्मक ग्रन्थ लिखना आवश्यक है, अतएव प्रस्तुत परिशीलनमें इस भाषाकी दो-एक रचनाएँ ही ली गई हैं। मैंने अपनी रुचिके अनुसार महाकवि स्वयम्भूदेव, पुष्पदन्त, बनारसीदास, भैया भगवतीदास, भूधरदास, द्यानतराय, दौलतराम, वृन्दावन प्रभृति प्राचीन हिन्दी जैन कवियों एव अनूपशर्मा, धन्यकुमार सुधेश, बालचन्द्र एम. ए. आदि नवीन कवियोंकी उन्हीं रचनाओंका परिशीलन प्रस्तुत किया है, जो मुझे रुचिकर हुई हैं।

यह परिशीलन दो भागोंमें प्रकाशित हो रहा है। प्रथम भागमें प्राचीन कवियोंकी काव्य रचनाओंका परिशीलन है तथा इस परिशीलन में भी सभी प्राचीन कवियोंकी रचनाएँ नहीं भी आ सकी हैं। रचनाओं का निर्वाचन मैंने किसी क्रमसे नहीं किया है और न रचनाओंके मान-दण्डको ही प्रधानता दी है। जो ग्रन्थ मेरे अध्ययनका विषय रहा है तथा किसी भी कारणसे जो मुझे प्रिय है, उसीका परिशीलन उपस्थित किया

गया है। अतः बहुत संभव है कि श्रेष्ठ रचनाएँ छूट भी गयी हों और निम्न कोटिकी रचनाओंको स्थान मिल गया हो।

मेरी इच्छा इस परिशीलनमें कवि और उनकी रचनाओंके सम्बन्धमें ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत करने की थी, किन्तु जिन दिनों इस परिशीलनको तैयार कर रहा था, उन दिनों श्री बाबू कामताप्रसादजीका 'हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास' प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तककी ऐतिहासिक भूलोंपर जैन आलोचकोंकी रोष-चिनगारियाँ उद्‌बुद्ध हो रही थीं, अतएव ऐतिहासिक क्षेत्रमें क़दम बढ़ानेका साहस नहीं हुआ। भूल होना स्वाभाविक बात है, अतः प्रत्येक मनुष्य अपूर्ण है। आलोचकोंका कर्त्तव्य है कि सहिष्णुतापूर्वक आलोचना करते हुए भूलोंकी ओर संकेत करें। उन आलोचनाओंको देखकर मुझे ऐसा लगा कि कतिपय लब्धप्रतिष्ठ प्राचीन लेखक नवीन लेखकोंको इस क्षेत्रमे आया हुआ देखकर असहिष्णु हो उठते हैं और सहानुभूति एवं सहृदयतापूर्वक आलोचना न कर तीव्र रोष और क्षोभ दिखलाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आज जैन साहित्यपर आलोचना-प्रत्यालोचनात्मक ग्रन्थोंका प्रायः अभाव है। नवीन लेखकोंको कहींसे भी प्रोत्साहन नहीं मिलता, बल्कि निराशा ही मिलती है। कतिपय ग्रन्थमालाओंसे उन्हीं विद्वानोंके ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं, जो उनसे सम्बद्ध हैं या उन सम्बद्ध विद्वानोंके मित्र हैं। कहनेके लिए सभाओंमें हमारे मान्य आचार्य बहुत कुछ कह जाते हैं, पर वे अपने हृदयको टटोलें कि सत्य क्या है? यदि ख्यातनामा विद्वान् प्रोत्साहन दें और नवीन लेखकोंका मार्ग प्रदर्शन करें तो जैन साहित्यपर बेजोड़ कृतियाँ शीघ्र ही प्रकाशमें आ सकती हैं। अस्तु,

परिशीलन शब्द परि उपसर्ग पूर्वक शील धातुसे भाव अर्थमें ल्युट् प्रत्यय करनेपर बनता है, जिसका अर्थ होता है सभी दृष्टियोंसे आलोडन-विलोडन कर अध्ययन प्रस्तुत करना। उपर्युक्त अर्थकी दृष्टिसे तो इस कृतिका नाम सार्थक नहीं है, यतः समस्त दृष्टिकोणोंसे रचनाओंका शीलन नहीं किया गया है, पर इस शब्दका व्यावहारिक और प्रचलित अर्थ यह भी लिया जाता है कि शास्त्रीय दृष्टिसे रचनाओंका विश्लेषण करना। मेरी दृष्टि प्रधानतः यह रही है कि परिशीलित रचनाओंका कथानक भी अवश्य दिया जाय। क्योंकि जैन साहित्यकी अधिकांश कथाएँ इस प्रकारकी हैं, जिनका आधार लेकर श्रेष्ठतम नवीन काव्य लिखे जा सकते हैं। अतएव आलोचनाके साथ कथावस्तु देनेकी चेष्टा की गयी है।

इस परिशीलनके तैयार करनेमें वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीसे मुझे पर्याप्त सहयोग मिला है। आपने एकबार इसे आद्योपान्त देखा तथा अपने बहुमूल्य सुझाव उपस्थित किये, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। नींवकी ईंटकी तरह समस्त भार वहन करनेवाले श्री पं० अयोध्याप्रसादजी गोयलीयका आभार प्रकट करनेके लिए मेरे पास शब्द नहीं। आप एकबार आरा पधारे थे, मैंने उस समय इस कृतिके कुछ अंश पढ़कर आपको सुनाये। आपने मेरी पीठ ठोकी, फलतः आपके द्वारा प्राप्त उत्साहसे यह रचना कुछ ही समयमें तैयार हो गयी। इस कृतिको परिष्कृत रूप देनेका श्रेय लोकोदय ग्रन्थमालाके सुयोग्य सम्पादक श्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी जैन एम०ए० को है, आपने इसे संक्षिप्त रूप देकर एक कुशल मालीका कार्य किया है। अन्यथा इस कृतिके पाँच-पाँच सौ पृष्ठके दो भाग होते। प्रेस-कापी तैयार करनेमें श्रीजैन बालाविश्राम आराकी साहित्य विभागकी छात्राओ, वहाँके शिक्षक श्री प० माधवराम शास्त्री और अपने भतीजे आयुष्मान् श्रीराम तिवारीसे भी पर्याप्त सहयोग मिला है। परामर्श प्राप्त करनेमें पूज्य भाई प्रो० खुशालचन्द्रजी गोरावाला एम० ए०, साहित्याचार्य, मित्रवर बनारसीप्रसाद 'भोजपुरी', प्रो० रामेश्वरनाथ तिवारीसे भी समय-समयपर सहयोग प्राप्त होता रहा है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके अधिकारी एव प्रूफसंशोधनमें सहायक श्री चतुर्वेदीजीका भी हृदयसे आभारी हूँ। समस्त ग्रन्थोंकी प्राप्ति जैन-सिद्धान्तभवन आराके ग्रन्थागारसे हुए, अतः उस पावन-संस्थाके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मै अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। अन्तमें समस्त सहायक महानुभावोंके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

जैनसिद्धान्त भवन, आरा
२ फरवरी ५६

—नेमिचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

तृतीयाध्याय

चतुर्थाध्याय

पञ्चमाध्याय

छठवाँ अध्याय

सातवाँ अध्याय

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

•

प्रथमाध्याय

हिन्दी-जैन-साहित्यका प्रादुर्भाव

प्राचीन परम्परामे साहित्यको सनातन सत्यकी उपलब्धिका साधन माना है। इसीलिए कतिपय मनीषियोंने "आत्म तथा अनात्म भावनाओंकी भव्य अभिव्यक्तिको साहित्य कहा है। यह साहित्य किसी देश, समाज या व्यक्तिका सामयिक समर्थक नही, बल्कि सार्वदेशिक और सार्वकालिक नियमोसे प्रभावित होता है। मानवमात्रकी इच्छाएँ, विचार-धाराएँ और कामनाएँ साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं। इसमें हमारे वैयक्तिक हृदय-की भाँति सुख-दुःख, आशा-निराशा, भय-निर्भयता एव हास्य-रोदनका स्पष्ट स्पन्दन रहता है" आन्तरिक रूपसे विश्वके समस्त साहित्योमे भावों, विचारों और आदर्शोंका सनातन साम्य-सा है; क्योंकि आन्तरिक भाव-धारा और जीवन-मरणकी समस्या एक है। प्राकृतिक रहस्योसे चकित होना तथा प्राकृतिक सौन्दर्यको देखकर पुलकित होना मानवमात्रके लिए समान है। अतएव साहित्यमे साधना और अनुभूतिके समन्वयसे समाज और संसारसे ऊपर सत्य और सौन्दर्यका चिरन्तन रूप पाया जाता है। इसीकारण साहित्यकार चाहे वह किसी भी जाति, समाज, देश और धर्मका हो अनुभूतिका भाण्डार समान रूपसे ही अर्जित करता है। वह सत्य और सौन्दर्यकी तहमे प्रविष्ट हो अपने मानससे भावराशिरूपी मुक्ताओको चुन-चुनकर शब्दावलीकी लड़ीमे शिवकी साधना करता है।

सौन्दर्य-पिपासा मानवकी चिरन्तन प्रवृत्ति है। जीवनकी नश्वरता और अपूर्णताकी अनुभूति सभी करते है, सभी इसका मर्म जाननेके लिए उत्सुक रहते है, इसी कारण साहित्य अनुभूतिकी प्राचीपर उदय लेता है। मानवके भीतर चेतनाका एक गूढ़ और प्रबल आवेग है, अनुभूति इसी आवेगकी, सच्ची, सजीव और साकार लहर है। इस अनुभूतिके लिए

व्यक्ति, धर्म, जाति, समाज और देशका तनिक भी बन्धन अपेक्षित नहीं। इसी कारण मनीषियोंने आत्म-दर्शनको ही साहित्यका दर्शन माना है, अपनेमें जो आभ्यन्तरिक सत्य है, उसे देखना और दिखलाना साहित्य-कारकी चरम साधना है।

जैन-साहित्य-स्रष्टाओंने अखण्ड चैतन्य आनन्दरूप आत्माका ही अपने अन्तस्में साक्षात्कार किया और साहित्यमें उसीकी अनुभूतिको मूर्त्त रूप प्रदान कर सौन्दर्यके शाश्वत प्रकाशकी रेखाओं द्वारा वाणीका चित्र अंकित किया। इन्होंने अपनी अनुभूतिको आत्म-साधनाका विषय बनाकर चिरन्तन मंगल-प्रभातका दर्शन किया। इन्होंने आभ्यन्तरिक धरातलमें अंकुरित अशान्ति एवं असन्तोषका उपचार ऊपरी सतहपर लगे दोषोंके परिमार्जनसे न कर प्रस्फुटित अनुभूतिके झरनेमें मज्जन कर, किया।

परम्परा

जैन-साहित्यकारोंने अधूरी और अपूर्ण मानवताके मध्यमे उस सक्रान्ति एवं उथल-पुथलके युगमे, जब कि भारतकी राजनीतिक, सास्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ प्रबल वेगके साथ परिवर्तित होती जा रही थीं, खड़े होकर पूर्ण मानवका आदर्श प्रस्तुत किया। जैनाचार्य आरम्भसे ही लोक-भाषामे मानवताका पाठ पढ़ाते आ रहे हैं। भगवान् महावीरका उपदेश भी उस कालकी सार्वजनीन अर्धमागधी भाषामे हुआ था। अतः सातवीं-आठवी शतीमें जैन-लेखकोंने प्राकृत और सस्कृतका पल्ला छोड़ प्रताड़ित और बिखरी हुई मानवताको तत्कालीन लोक-प्रचलित अपभ्रंश भाषामे सुरक्षित रखनेका प्रयास किया।

नवीं शतीमें जन-साधारणकी भाषा बन जानेके कारण अपभ्रंशका प्रचार हिमालयकी तराईसे गोदावरी और सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक था। यह जीवट और भाव-प्रवणमे सक्षम भाषा थी, अतः जैनाचार्योंने मानवके आदर्शोंके प्रचारके लिए तथा मूर्छित मानवताको सचेतन बनानेके लिए इस भाषामें प्रभूत साहित्य रचा। स्तोत्र-काव्य, कथा-काव्य, महाकाव्य

और खण्डकाव्य जैन-लेखकों-द्वारा विरचित इस भाषामें पाये जाते हैं। शृंगार, वीर और नीतिकी स्फुट रचनाएँ भी इस भाषामें बड़ी मार्मिक और गम्भीर मिलती हैं। स्वयम्भू कविने (८–१०वी शती) 'हरिवंशपुराण' और 'पउमचरिउ' की रचना की, पश्चात् इनके पुत्र त्रिभुवनने पिताके अधूरे कार्यको पूरा किया। इसी शताब्दीमें धनपालने 'भविसयत्तकहा' और महाकवि धवलने 'हरिवंशपुराण' की रचना की। ग्यारहवीं शतीमें पुष्पदन्त कविने 'महापुराण', श्रीचन्द मुनिने 'कथाकोष', सागरदत्तने 'जम्बूस्वामीचरित' और 'आराधनाकथाकोष' की रचना की। अभयदेव सूरिका 'जयतिभुवन गाथास्तोत्र', देवचन्द्रका 'सुलसाख्यान' और 'शान्तिनाथचरित', वर्द्धमान सूरिका 'वर्द्धमानचरित', अब्दुल रहमानका 'सन्देश रासक' और धाहिड़ कविका 'पद्मिनी चरित' बारहवी शतीकी प्रमुख अपभ्रंश रचनाएँ हैं। हेमचन्द्रके पश्चात् तेरहवीं शतीमें योगचन्द्रने 'योगसार' और 'परमात्मप्रकाश' तथा माइल्लधवलने 'नयचक्र' लिखा। अपभ्रंशकी ये रचनाएँ पुरानी हिन्दीके बहुत निकट हैं।

अपभ्रंश और पुरानी हिन्दीके जैन-कवियोंने लोक-प्रचलित कहानियोंको लेकर उनमे स्वेच्छानुसार परिवर्तन करके सुन्दर काव्य लिखे। मध्यकालके आरम्भमे समाज और धर्म सकीर्ण हो रहे थे, अतः जैन-लेखकोंने अपने पुरातन कथानकों और लोकप्रिय परिचित कथानकोंमे जैनधर्मका पुट देकर अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल उपस्थित किया तथा पञ्चनमस्कार फल या किसी व्रतसे सम्बद्ध दृष्टान्त प्रस्तुत कर जनताके हृदय-पटलपर मानवोचित गुण अंकित किये।

बाहरी वेश-भूषा, पाखण्ड आदिका—जिनसे समाज विकृत होता जा रहा था—बड़ी ही ओजस्वी वाणीमे जैन-साहित्यकारोंने निराकरण किया। मुनि रामसिंहने भेषकी व्यर्थता दिखलानेके लिए उसे साँपकी केंचुलीकी उपमा दी है। ऊपरी आवरणको छोड़ देनेपर साँप नवीन आवरण धारण करता है, पर विष उसका ज्यों-का-त्यो बना रहता है।

इसी तरह वेग बदल साधु हो जानेसे मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता, इसके लिए भोग-प्रवृत्तिका त्याग करना परम आवश्यक है।

चौदहवीं और पन्द्रहवी शताब्दीमें जैन-कवियोंने व्रज और राजस्थानी भाषामें रासा ग्रन्थोंकी रचना की। गौतम रासा, सप्तक्षेत्ररासा एवं संघपति समरा रासा आदिमें अहिंसातत्त्वके कथानको-द्वारा सुन्दर अभिव्यञ्जना की गयी है। सोलहवीं शताब्दीमे ब्रह्म जिनदास कवि हुए, जिन्होंने मानवताकी प्रतिष्ठा करनेवाली 'आदिनाथपुराण' 'श्रेणिकचरित' आदि कई रचनाएँ लिखीं। वास्तवमें इनसे ही प्रादेशिक भाषामे काव्य-रचनाका आरम्भ होता है। सत्रहवीं शताब्दीमे महाकवि बनारसीदास, रूपचन्द और हेमविजय आदि अनेक कवि हुए, जिन्होंने राजस्थानी और व्रज-भाषामे गद्य-पद्यात्मक रचनाएँ लिखीं।

इस प्रकार सातवीं शतीसे आजतक जैन-हिन्दी-साहित्यकी धारा मानव जीवनकी विभिन्न समस्याओंका समाधान करती हुई अपनी सरसता और सरलताके कारण गृहस्थ जीवनके अति निकट आयी। इस धाराका सन्त कवियोपर गहरा प्रभाव पड़ा; जिस प्रकार जैन-कवियोंने घरेलू जीवनके दृश्य लेकर अपने उपदेश और सिद्धान्तोंका जन-साधारणमें प्रचार किया, उसी प्रकार सन्त-कवियोंने भी। अहिंसा सिद्धान्तकी अभिव्यक्ति करनेवाले लोक-जीवनके स्वाभाविक चित्र जैन-साहित्यमे उपलब्ध है; इस साहित्यमें सुन्दर, आत्मपीयूष रस छल-छलाता है। धर्मविशेषका साहित्य होते हुए भी उदारताकी कमी नही है। आत्मस्वातन्त्र्य प्रत्येक व्यक्तिके लिए अभीष्ट है। प्रत्येक मानव स्वावलम्बी बनना चाहता है और चाहता है उद्घाटित करना आत्मानुभूति-द्वारा अपने भीतरके तिरोहित देवांशको।

दार्शनिक आधार

हिन्दी जैन-साहित्यकी भित्ति जैन-दर्शनपर आश्रित है। इसी कारण जैन-साहित्यकारोंने विलास और शृङ्गारसे दूर हटकर आत्मसमर्पण और उत्सर्गकी भावनाका अंकन किया है। अतएव शृंगार-रसका

वर्णन अल्प परिमाणमें हुआ है। नायिकाके यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल, वैभव और आभूषणोंका निरूपण न्यूनतम मात्रामें उपलब्ध है। यह बात नही कि हिन्दी-जैन-साहित्यमें अज्ञातयौवनाका भोलापन, ज्ञातयौवनाका मानसिक विश्लेषण, नवोढ़ाकी लज्जाकी ललाई, प्रौढ़ाका आनन्द-संमोहन, विदग्धाका चातुर्य्य, मुदिराकी उमग, प्रोषितपतिकाकी मिलनोत्कण्ठा, प्रवत्स्यत्पतिकाकी बेचैनी, आगमिष्यत्पतिकाकी अधीरता, खण्डिताका कोप एव कलहान्तरिताका प्रेमाधिक्यजन्य कलहका चित्रण नहीं है, पर प्रधानतया इसमे मानवकी उन भावना और अनुभूतियोंको पृष्ठाधार रूपमें स्वीकार किया गया है, जिनपर मानवता अवलम्बित है।

दार्शनिक पृष्ठभूमि

हिन्दी जैन-साहित्यके मूलाधारभूत जैन-दर्शनके मुख्य दो भाग हैं—एक तत्त्वचिन्तनका और दूसरा जीवन-शोधनका। जगत्, जीव और ईश्वरके स्वरूप-चिन्तनसे ही तत्त्वज्ञानकी पूर्णता नही होती है, किन्तु इसमें जीवन-शोधनकी मीमासाका भी अन्तर्भाव करना पड़ता है। जैन-मान्यतामें जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व माने गये है। इनके स्वरूपका मनन, चिन्तनकर आत्मकल्याणकारी तत्त्वोंमें प्रवृत्ति करना जैन-तत्त्वज्ञानका एक पहलू है। उक्त सातों तत्त्वोंमें जीव और अजीव ये दो मुख्य तत्त्व हैं। सच्चिदानन्द मय आत्मा या जीव ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणोका अक्षय भाण्डार है। यह अखण्ड, अमूर्त्तिक पदार्थ है, जो न शरीरसे बाहर व्याप्त है और न शरीरके किसी विशेष भागमे केन्द्रित है, किन्तु मनुष्यके समग्र शरीरमें व्याप्त है।

आत्माएँ अनेक है, सबका स्वतन्त्र अस्तित्व है। कर्म-अजीव (पुद्गल) के सम्बन्धके कारण संसारी आत्माएँ अशुद्ध हैं, राग-द्वेषसे विकृत हैं; जब कर्म-बन्धन हट जाता है, तब कोई भी आत्मा शुद्ध हो जाती है। यह शुद्ध आत्मा ही ईश्वर या मुक्त कहलाती है। प्रत्येक आत्मामें ईश्वर बननेकी

योग्यता विद्यमान है; अपने पुरुषार्थकी हीनाधिकताके कारण आत्माएँ भिखारी या भगवान् बननेकी ओर अग्रसर होती हैं।

आत्माकी शुद्धिके लिए राग-द्वेषको हटाना आवश्यक है तथा राग-द्वेषको हटानेके लिए दृढ़तर प्रयत्न करना ही पुरुषार्थ है। यह पुरुषार्थ प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों-द्वारा सम्पन्न किया जाता है। प्रवृत्ति-मार्ग कर्म-बन्धका कारण है और निवृत्ति-मार्ग अबन्धका। यदि प्रवृत्ति-मार्गको घूम-घुमावदार गोलघर माना जाय, जिसमे कुछ समयके पश्चात् गमन स्थान पर इधर-उधर दौड़ लगानेके अनन्तर पुनः आ जाना पड़ता है, तो निवृत्ति-मार्गको पक्की सीधी कंकरीली सीमेंटकी सड़क कहा जा सकता है, जिसमें गन्तव्य स्थानपर पहुँचना सुनिश्चित है, पर गमन करना कष्टसाध्य है। जैन-दर्शन निवृत्ति-प्रधान है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय ही निवृत्ति-मार्ग है। जीवादि सातों तत्त्वोंकी सच्ची श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन, इन तत्त्वोका सच्चा ज्ञान सम्यग्ज्ञान और आत्मतत्त्वको प्राप्त करनेका सम्यक् आचरण ही सम्यक्चारित्र कहलाता है। इस मार्गपर आरूढ़ होनेसे ही जन्म-मरणका दुःख दूर हो निःश्रेयस् या मोक्षकी प्राप्ति होती है।

जैन-दर्शनमे आत्माकी तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जब अज्ञान और मोहकी प्रबलताके कारण आत्मा वास्तविक तत्त्वका विचार न कर सके तथा कल्याणकी दिशामे बिल्कुल न बढ़ सके, बहिरात्मा कही जाती है। जब सच्चा विश्वास उत्पन्न हो जाता है, विवेकशक्तिके जागृत होनेसे राग-द्वेषके संस्कार क्षीण होने लगते हैं, तब अन्तरात्मा कही जाती है और आत्मिक शक्तिको आच्छादित करनेवाले कारणोके क्षीण हो जानेपर परमात्मा अवस्थाका प्रादुर्भाव होता है। आत्माकी ये तीनों अवस्थाएँ रत्नत्रयके अभाव, प्रादुर्भाव और विकासके कारण होती हैं। निष्कर्ष यह है कि जब तक रत्नत्रयकी उत्पत्ति नही होती, आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर अन्यथा रूपसे प्रवृत्त होती है। रत्नत्रयका

प्रादुर्भाव हो जानेपर आत्मा स्वोन्मुखरूपसे प्रवृत्त करती है, जिससे राग-द्वेषके संस्कार शिथिल और क्षीण होने लगते हैं तथा रत्नत्रयके परिपूर्ण होनेपर आत्मा परमात्मा अवस्थाको प्राप्त हो जाती है। अतः आत्म-शोधनमें सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञानके साथ सदाचारका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जैन-सदाचार अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप है। इन पाँचो व्रतोंमे अहिंसाका विशेष स्थान है, अवशेष चारों अहिंसाके विभिन्न रूप है। कषाय और प्रमाद—असावधानीसे किसी जीवको कष्ट पहुँचाना या प्राणघात करना हिसा है, इस हिंसाको न करना अहिसा है। मूलतः हिसाके दो भेद है—द्रव्यहिंसा और भावहिसा। किसीको मारने या सतानेके भाव होना भावहिसा और किसीको मारना या सताना द्रव्यहिसा है। भावोंके कलुषित होनेपर प्राणघातके अभावमे भी हिंसा-दोष लगता है।

अहिंसाकी सीमा गृहस्थ और मुनि—साधुकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न है। गृहस्थकी हिंसा चार प्रकारकी होती है—सकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी। विना अपराधके जान-बूझकर किसी जीवका वध करना संकल्पी हिंसा है। इसका दूसरा नाम आक्रमणात्मक हिंसा भी है। प्रत्येक गृहस्थ-को इस हिसाका त्याग करना आवश्यक है। सावधानी रखते हुए भी भोजन बनाने, जल भरने, कूटने-पीसने आदि आरम्भ-जनित कार्योंमे होनेवाली हिंसा आरम्भी; जीवन-निर्वाहके लिए खेती, व्यापार, शिल्प आदि कार्योंमें होनेवाली हिंसा उद्योगी एव अपनी या परकी रक्षाके लिए होने-वाली हिंसा विरोधी कही जाती है। ये तीनों प्रकारकी हिंसाएँ रक्षणात्मक हैं। इनका भी यथाशक्ति त्याग करना साधकके लिए आवश्यक है। 'स्वयं जियो और अन्यको जीने दो' इस सिद्धान्त वाक्यका सदा पालन करना सुख-शान्तिका कारण है। राग, द्वेष, घृणा, मोह, ईर्ष्या आदि विकार हिंसामें परिगणित हैं।

जैनधर्मके प्रवर्तकोंने विचारोंको अहिंसक बनानेके लिए स्याद्वाद-विचार समन्वयका निरूपण किया है। यह सिद्धांत आपसी मतभेद अथवा पक्षपातो

पूर्ण नीतिका उन्मूलन कर अनेकतामें एकता, विचारोंमें उदारता एवं सहिष्णुता उत्पन्न करता है। यह विचार और कथनको संकुचित, हठ एवं पक्षपातपूर्ण न बनाकर उदार, निष्पक्ष और विशाल बनाता है। वस्तुतः जीवन अहिंसक तभी बन सकता है, जब आचार और विचार दोनों अहिंसक हो जायँ। पूर्ण अहिंसक ही राग-द्वेष और कर्म-बन्धनका ध्वंसकर मोक्ष या निर्वाणको प्राप्त करता है। मानव-जीवनका चरम लक्ष्य निर्वाण या मोक्षको प्राप्त करना ही है।

इस सक्षिप्त दार्शनिक विवेचनके प्रकाशमे हिन्दी-जैन-साहित्यकी पृष्ठ-भूमिकी निम्न भावनाएँ है :—

सम्यग्दर्शन जन्य—

१—अपनेको स्वय अपना भाग्यविधाता समझकर परोक्ष शक्ति—ईश्वरादि शक्ति सुख-दुःख देनेवाली है, विश्वासको छोड़ पुरुषार्थमे प्रवृत्त होना।

२—आत्माके अस्तित्वका विश्वासकर मन-वचन-कायके अपने प्रत्येक क्रिया-व्यापारको अहिंसक बनाना।

३—अपने पुरुषार्थपर विश्वासकर सर्वतोमुखी विशाल दृष्टि प्राप्त करना।

४—राग-द्वेषादि संस्कार अनात्मभाव है, यह विश्वास उत्पन्न करना।

सम्यग्ज्ञान जन्य—

१—वैयक्तिक विकासके लिए हृदयकी वृत्तियोसे उत्पन्न अनुभूतियोको विचारके लिए बुद्धिके समक्ष उत्पन्न करना और बुद्धि-द्वारा निर्णय हो जानेपर कार्यमे प्रवृत्त हो जाना।

२—विरोधी विचार सुनकर घबड़ाना नही, अपने विचारोंके समान अन्यके विचारोका भी आदर करना तथा अपने विचारोंपर भी तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि रखना।

३—मिथ्याभिमान छोड़कर उदारतापूर्वक विचार-सहिष्णु बनना तथा अपनी भूलको सहर्ष स्वीकार करना।

४—तत्त्वज्ञानके चिन्तन-द्वारा अहंभावका इदभावके साथ सामञ्जस्य प्रकट करना।

सम्यक्चारित्र जन्य—

१—निर्भय और निर्वैर होकर शान्तिके साथ जीना और दूसरोंको जीवित रहने देना।

२—अहिंसा और संयमके समन्वय-द्वारा अपनी विशाल और उदार-दृष्टिसे विश्वबन्धुत्वकी भावनाको जागृत करना।

३—वासना, इच्छा और कामनाओंपर नियन्त्रण करना तथा आत्मालोचनमें प्रवृत्त होना।

४—दया, ममता, करुणा आदिके उद्घाटन-द्वारा मानवताको प्रतिष्ठित करना।

५—भौतिकवादकी मृगमरीचिकाको अध्यात्मवादकी वास्तविकता-द्वारा दूर करना।

६—शोषित और शोषकमें समता लानेके लिए अपरिग्रहवाद और संयमको जीवनमें उतारना।

७—शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिए शुद्ध आहार-विहार करना।

पुरातन काव्य-साहित्य

[८वीं शतीसे १९वीं शतीतक]

अपभ्रंश भाषाकी उत्पत्ति पाँचवी शतीमें हुई थी और छठवी शतीमे यह देशी भाषाका रूप ग्रहण कर चुकी थी। अतः छठवी शतीसे ग्यारहवी शतीतक इस भाषामे पुष्कल परिमाणमें साहित्यका सृजन होता रहा। आगे चलकर इसी भाषाने हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें हिन्दीका रूप और अन्य भाषा-भाषी प्रान्तोंमे मराठी, गुजराती आदि भाषाओंका रूप धारण किया।

जैन-कलाकारोंने मध्यकालमें इसी देशी भाषाका आधार लेकर अपने आन्तरिक भावोंकी अधिक-से-अधिक स्पष्ट, मनोरंजक और प्रभावपूर्ण ढंगसे अभिव्यञ्जना की। जीवनका चिरन्तन सत्य, मानव कल्याणकी प्रेरणा एव सौन्दर्यकी अनुभूतिको अनुपम, मधुर देशी भाषामें ही प्रकट करना अधिक उपादेय समझा गया। अतः प्रस्तुत प्रकरणमे देशी भाषा—अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, ब्रजभाषा और राजस्थानीके काव्य साहित्यकी विवेचना की जायगी।

लोक-भाषा होनेके कारण देशी भाषामे आरम्भमे गीत ही रचे गये। इन गीतोंमें जन-साधारणकी भावनाएँ अभिव्यञ्जित हुई है। सर्वसाधारणके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और हास-विलास इनके वर्ण्य विषय थे। भावनाओंकी सघनताकी अभिव्यञ्जना होनेके कारण इन गीतोके लिए छन्दके बन्धनोंकी आवश्यकता नही थी। ८-९वी शतीमे भक्ति, प्रेम, वीरता, करुणा, हास्य आदिकी अभिव्यक्तिके लिए दोहा, चौपाई, कड़वक, घत्ता, छप्पय, रोला आदि मात्रा-वृत्तोंका भी देशी भाषामे प्रयोग होने लगा, फलस्वरूप इस भाषामे प्रबन्ध काव्योका आविर्भाव हुआ।

हिन्दी-जैन-प्रबन्ध काव्य

जैन-हिन्दी-साहित्यमे प्रबन्ध काव्यकी धारा आठवी शतीसे ही प्रवाहित हुई और अबतक प्रवाहित हो रही है। इसका कारण यह है कि हिन्दी-जैन-कवियोंने प्राचीन कथाओंको लेकर ही अपने काव्यभवनका निर्माण किया है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती और नारायण आदि महान् व्यक्तियोके सरस और हृदयग्राही जीवनाकन-द्वारा दिव्य और चिरन्तन सौन्दर्यको प्रकाशित करना उन्होंने सरल तथा मानवताके कल्याणके लिए उपादेय समझा। हिन्दी-जैन-प्रबन्ध-साहित्यकी उषाने मध्यकालमे जनसाधारणके सर्वाङ्गीण जीवन-क्षितिजको आनन्द-विभोर बना दिया, जिससे जीवनका कोना-कोना आलोकित हो उठा।

प्रबन्ध-काव्यमें इतिवृत्त, वस्तुव्यापारवर्णन, भावव्यञ्जना और संवाद ये चार अवयव होते हैं। कथामे पूर्वापर क्रमबद्धताका रहना तो अनिवार्य

है ही, इसके बिना कोई काव्य प्रबन्ध कोटिमें नहीं आ सकता है। देशी भाषा और पुरानी हिन्दीमें जैन-प्रबन्ध-काव्योंकी भरमार है। ब्रजभाषा और राजस्थानी, ढूढारी भाषामें भी कतिपय सुन्दर जैन-प्रबन्ध-काव्य हैं।

देशी भाषा के जैन प्रबन्ध-काव्य

अपभ्रंश भाषामें 'पउमचरिउ—रामायण, हरिवंशचरित—कृष्ण-चरित, रिट्ठनेमिचरिउ, भविसयत्तकहा, तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार और वैरसामिचरिउ प्रमुख हैं। प्रबन्ध-काव्यकी सफलता कथाकी पूर्वापरक्रमबद्धताके साथ उसके मर्मस्थलोंकी पहिचानपर निर्भर है। जो कथाके मर्मस्थलोंकी परख रखता है, उसे प्रबन्ध-काव्यके सृजनमें पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। देशी भाषाके जैन कवियोने कुटुम्बियोंके विछोह होनेपर इष्ट जनोंका विलाप, युद्धमे योद्धाओंकी उमंगे, रणयात्राका सजीव चित्रण, विरहके गीत आदि मर्मस्पर्शी स्थलोंकी परखसे मानवकी सहृदयता और सहानुभूति बढ़ानेमे बेजोड़ सफलता प्राप्त की है।

'पउमचरिउ' मे वर्णित रावणकी वीरगति हो जानेपर मन्दोदरीके करुणापूर्ण विलापको सुनकर निठुरता भी रुदन किये बिना नही रह सकती। कविकी अनुभूति कितनी गहराईतक पहुँची है, वर्णनमे कितनी सजीवता है, यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है।

आएहिं सी आरियहि, अट्ठारह हिव जुवइ सहासेहिं।
णव घण माला डंबरेहि, छाइउ विज्जु जेम चउपासेहिं॥

रोवइ लंकापुर परमेसरि।
हा रावण ! तिहुयण जण केसरि॥
पइ विणु समर तूरु कहों वज्जइ।
पइ विणु बालकील कहों छज्जइ॥
पइ विणु णव गह एक्कीकरणउ।
को परिहेसइ कंठा हरणउ॥

पइ विणु को विज्जा आराहइ ।
पइ विणु चन्दहासु को साहइ ॥
को गंधव्व वापि आडोहइ ।
कण्णहो छवि-सहासु संखोहइ ॥
पइ विणु को कुबेरु भंजेसइ ।
तिजग-विहूसणु कहो वसे होसइ ॥
पइ विणु को जमु विणिवारेसइ ।
को कइलासुद्धरणु करेसइ ॥
सहस-किरणु णलकुब्बर-सक्कहु ।
को अरि होसइ ससि-वरुणक्कहु ॥
को णिहाण रयणइ पालेसइ ।
को बहुरूविणि विज्जा लएसइ ॥
सामिय पइँ भलिएण विणु, पुप्फविमाणे चडेवि गुरुभत्तिए ।
मेरु-सिहरे जिण-मंदिरइ, को मइणेसइ वंदण-हत्तिए ॥

इसी प्रकार हनूमानके युद्धका वर्णन भी बहुत ही ओजस्वी और मर्मस्पर्शी है, पढ़ते ही हृत्तन्त्रियाँ झंकृत हो उठती हैं, मनमे उत्साह और स्फूर्ति जागृत हो जाती है। समस्त वातावरण युद्धोन्मुख दिखलायी पड़ता है, निर्जीव और शुष्क धमनियोमे भी स्वस्थ रक्तका सचार होने लगता है।

अपभ्रंश भाषाके पउमचरिउ, हरिवशचरित, भविसयत्तकहा आदिके प्रबन्धमें तनिक भी शिथिलता या विशृखलता नहीं है। कथाको न तो अनावश्यक विस्तार दिया गया है और न अक्रमबद्धता। कथानकमें गति-स्वाभाविकता और प्रवाह है। वस्तुव्यापारवर्णन और भावाभिव्यञ्जना भी अनुपम है। चरित्र-चित्रणमें इन कवियोंने अपनी पूरी पटुता प्रदर्शित की है। रामके वन-गमनके समय दशरथकी मानसिक अवस्थाका चरित्र-चित्रण पितृहृदयकी अपूर्व झाँकी उपस्थित करता है।

'पउमचरिउ' में सीताहरणके पश्चात् रामकी अर्द्ध विक्षिप्त और मोहाभिभूत अवस्थाका चित्रण रामके मानवीय चरित्रमें चार चाँद लगाता है।

अपभ्रंश प्रबन्ध-काव्योंमें वस्तुव्यापार वर्णन भी सुन्दर है। संवाद इतने प्रभावोत्पादक हुए हैं, जिससे इन प्रबन्धकारोंकी सहृदयताका सहज ही पता लगाया जा सकता है। यद्यपि वस्तु पुरातन है, पर जीवनके बाह्य और आन्तरिक दृश्योंका इतनी कुशलता और सूक्ष्मतासे उद्घाटन किया है, जिससे प्रबन्ध सहजमें ही चमत्कारपूर्ण हो गये हैं।

भावव्यञ्जना इन अपभ्रंश प्रबन्ध-काव्योंमें इतनी स्पष्ट है, जिससे पढ़ते ही हृदयकी रागात्मक वृत्तियोंमें सिहरन उत्पन्न हो जाती है। मननशील प्राणोंके आन्तरिक सत्यका आभास जो कि जीवनके स्थूल सत्यसे भिन्न है, प्रकट हो जाता है। जीवनकी अन्तश्चेतना तथा सौन्दर्यभावना उद्बुद्ध हो चिरन्तन सत्यकी ओर अग्रसर करती है। इन प्रबन्धकारोने घटनावर्णन, दृश्य-योजना, परिस्थिति-निर्माण और चरित्र-चित्रणमें ही अपनेको उलझानेका प्रयास नही किया है; बल्कि भाव, रस और अनुभूतिकी अभिव्यञ्जना भी अनूठे ढगसे की है।

देशी भाषाके प्रबन्ध-काव्योंका जायसी, तुलसी तथा हिन्दीके अन्य कवियोंपर प्रभाव

देशी भाषाके जैन-प्रबन्ध-काव्योंकी रचनाशैलीके आधारपर जायसी, तुलसी तथा विद्यापति आदि कवियोंने अपने काव्योंका निर्माण किया है। पद्मावत और रामचरितमानसमे बहुत-सी बाते पउमचरिउ और भविसयत्तकहाकी ज्यो-की-त्यों पायी जाती है। जिस प्रकार देशी भाषाके जैन-प्रबन्ध-काव्योंका आरम्भ ईश-वन्दनासे हुआ है, उसी प्रकार पद्मावत और रामचरितमानसका भी। जैन-प्रबन्धकारोंने देशी भाषाके प्रबन्ध-काव्योंमे जैसे बत्तीस मात्राओंकी अर्धालियोवाले पज्झटिका या अडिल्ला नामक कतिपय छन्दोंके बाद बासठ मात्राओंवाला घत्ता रखा है, वैसे ही जायसी[1] और तुलसीने भी बत्तीस

[1]—जायसीके पद्मावतका रचनाकाल सन् १५४०, धनपालजी भविसयत्तकहाका रचनाकाल लगभग १००० ईस्वी सन्।

मात्राओंवाली चौपाइयोंकी अर्धालियोंके बाद अड़तालीस मात्राओंवाले दोहे रक्खे हैं। भविसयत्तकहाकी तुकोंकी लड़ी हर एक चरणके अन्तमें कम-से-कम प्रत्येक दो चरणमें मिलती है, उसी प्रकार जायसी और तुलसीकी भी। इसी तथ्यसे प्रभावित होकर प्रोफेसर श्री जगन्नाथराय शर्माने अपने 'अपभ्रंश-दर्पण'में लिखा है कि "हिन्दीका कौन कवि है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें अपभ्रंशके जैन-प्रबन्ध-काव्योंसे प्रभावित न हुआ हो ? चन्दसे लेकर हरिश्चन्द्र तक तो उसके ऋण भारसे दबे हैं ही, आजकलकी नई-नई काव्यपद्धतियोंके उद्भावक भी विचारकर देखनेपर उसकी परिधिके बहुत बाहर न मिलेंगे।"[१]

जायसीका पद्मावत तो भविसयत्तकहाके अनुकरणपर ही नहीं लिखा गया, अपितु उसका कथानक भी भविसयत्तकहासे मिलता-जुलता है। यदि भविसयत्तकहाके पात्रोंके नामोंको बदल ले तो कथाका अवशेष मानचित्र पद्मावतके प्रबन्धके मानचित्रसे ज्यों-का-त्यों मिलेगा। जिस प्रकारका प्रेम-चित्रण भविसयत्तकहामे है, ठीक उसी प्रकारका रत्नसेन-पद्मावतीकी कथामें भी। दोनों कृतियोंकी कथावस्तुमे बहुत साम्य है। सिंगलगढका उल्लेख दोनोंमे है। अलाउद्दीन-द्वारा रानी पद्मिनीके अपहरणका प्रयत्न अस्वाभाविक लगता है, भले ही वह ऐतिहासिक हो; किन्तु भविष्यदत्तकी स्त्रीका अपहरण उसके भाई बन्धुदत्त-द्वारा अधिक स्वाभाविक है। पद्मावतमे जायसीने यत्र-तत्र ही आध्यात्मिक संकेत रक्खे हैं, किन्तु भविसयत्तकहाको धार्मिक रूप ही दिया गया है। जायसीने पद्मिनीकी निराशा दिखलाकर मृत्यु दिखलायी है, पर भविसयत्तकहामे बन्धुदत्तने भविष्यदत्तकी स्त्रीका अपहरण किया है, अतः घटनाचक्रके अनुकूल होनेपर भविष्यदत्तको अपनी स्त्री वापिस मिल जाती है और बन्धुदत्त दण्ड पाता है।

पद्मावतकी वर्णनशैली भी पउमचरिउ और भविसयत्तकहासे बहुत अंशोंमें मिलती-जुलती है। बन्धुदत्तकी समुद्रयात्रा रत्नसेनकी समुद्रयात्रासे

१—देखें अपभ्रंश-दर्पण पृष्ठ २५।

तथा नखशिखवर्णन पद्मावतके नखशिखवर्णनसे भावमें ही नहीं; किन्तु शब्दोंमें भी साम्य रखता है। उदाहरणार्थ बन्धुदत्तकी समुद्रयात्राके कुछ पद्य उद्धृत किये जाते हैं। इन उद्धृत-पद्योंकी पद्मावतके पद्योंके साथ तुलना करनेसे स्पष्ट है कि भविसयत्तकहाके रचयिता धनपालकी शैलीका जायसीने कितना अनुकरण किया है—

णिज्जावय वयणुज्जु अमुहइँ, किरववइँ णंणं भवइँ।
सचलइ रयणायरहो जलि, खरपवहाणय-भय-वणइँ॥
दिढ़-बधइँ जिह मल्लर-गणाइँ। णिल्लोहइँ जिह मुणिवर-मणाइँ।
णिडिभण्णइँ जिह सज्जण-हियाइँ। अकियत्थइँ जिह दुज्जण-कियाइँ॥
वहणइँ वहंति जलहर-रउद्दि। दुत्तरि अत्थाहि महा समुद्दि॥
लंघंतइँ दीवंतर-थलाइ। पिक्खंति विविह कोऊ हलाइँ॥
इय लीलइँ वच्चंताहँ ताहँ। उच्छाह-सत्ति-विक्कम पराहँ॥
दुप्पवणें घणतरुवर-समीवे। वहणइँ लग्गइँ मयणाय दीवे॥
कल्लोल-बोल-जलरल वमाले। असगाह-गाह गहणंतराले॥
तीरंतरे जं सघट्ट पोय। उत्तरिय तरिव पमुहाइ लोय॥
तं वयणु सुणिवि णायर-जणहु, नं सिरि वज्जदंडु पडिऊ।
वोहित्थइँ लेवि दुरास खलु, गहिर महासमुद्दि चडिऊ॥

—भविसयत्तकहा पृष्ठ २१

सायर तरै हिये सत पूरा। जो जिउ सत, कायर पुनि सूरा॥
तेइ सत बोहित कुरी चलाए। तेइ सत पवन पंख जनु लाए॥
सत साथी, सत कर संसारू। सत्त खेइ लेइ लावै पारू॥
सत्त ताक सब आगू पाछू। जहँ जहँ मगर मच्छ औ काछू॥
उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा। चढ़े सरग औ परै पतारा॥

—जायसी ग्रंथावली पृ० ६४

१—स्वयंभूके पउमचरिउका रचनाकाल ई० सन् ७९० ।

इसी प्रकार विरह, युद्ध, ऋतु, नगर आदिका वर्णन भी पद्मावतमे भविसयत्तकहाके समान ही हुआ है। देशी भाषाके शब्दोंके स्थानपर तत्सम शब्दोंको रख देनेपर भविसयत्तकहाके अनेक वर्णनात्मक स्थल पद्मावतके हो जायँगे।

हिन्दी साहित्यके अमरकवि तुलसीदास[1]पर स्वयभूकी पउमचरिउ और भविसयत्तकहाका अमिट प्रभाव पड़ा है। महापडित राहुल साकृत्यायनने अपनी हिन्दी-काव्यधारामे बताया है कि "मालूम होता है, तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणको जरूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होंने स्वयभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामे क्यों नहीं डाल दी। तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणको देखा था, मेरी इस बातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मैं समझता हूँ कि तुलसी बाबाने "क्वचिदन्यतोपि" से स्वयभू-रामायणकी ओर ही सकेत किया है। आखिर नाना पुराण, निगम, आगम और रामायणके बाद ब्राह्मणोका कौन-सा ग्रन्थ बाकी रह जाता है, जिसमे रामकी कथा आयी है। "क्वचिदन्यतोपि"से तुलसी बाबाका मतलब है, ब्राह्मणोंके साहित्यसे बाहर "कहीं अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमें रामकथा बड़े सुन्दर रूपमे मौजूद है। जिस सोरो या सूकरक्षेत्रमे गोस्वामीजीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोमे जैन-घरोंमे स्वयभू-रामायण पढ़ी जाती थी। रामभक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पड़े थे, उससे यह बिल्कुल सम्भव है कि उन्हे जैनोंके यहाॅ इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामीजीसे आठ सौ बरस पहले बना था किन्तु तद्भव शब्दोंके प्राचुर्य तथा लेखकों-वाचकोंके जब-तबके शब्द-सुधारके कारण भी आसानीसे समझमे आ सकता था"।[2]

१—गोस्वामी तुलसीदासका जन्म सं १५८९ और स्वयंभूदेवका ईस्वी सन् ७७०।

२—हिन्दी काव्यधारा पृष्ठ ५२।

राहुलजीका उपर्युक्त कथन कहाँतक यथार्थ है यह तो पाठकोंपर ही छोड़ा जाता है, पर इतना सुनिश्चित है कि रामचरितमानसके अनेक स्थल स्वयंभूकी पउमचरिउ—रामायणसे अत्यधिक प्रभावित हैं तथा स्वयंभूकी शैलीका तुलसीदासने अनेक स्थलोंपर अनुकरण किया है। जिस प्रकार स्वयंभूने पउमचरिउके आरम्भमें अपनी लघुता प्रदर्शित की है उसी प्रकार तुलसीने भी। स्वयभूका आत्मनिवेदन तुलसीके आत्मनिवेदनसे भाव-साम्य रखता है, अतः यदि यह माना जाय कि तुलसीने स्वयभूका अनु-करण किया है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? उदाहरणके लिए कुछ अंश पउमचरिउके नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

बुह-यण सयंभु पइँ विण्णवइ। महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ॥
वायरणु कयाइ ण जाणियउ। णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ॥
णा णिसुणिउ पंच महाय कव्वु। णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु॥
णउ बुज्झिउ पिंगल-पच्छारु। णउ भामह-दंडीय लंकारु॥
वे वे साय तो वि णउ परिहरमि। वरि रयडा वुत्तु कव्वु करमि॥
सामाणभास छुड मा विहडउ। छुडु आगम-जुत्ति किंपि घडउ॥
छुडु होंति सु हासिय-वयणाइँ। गामेल्ल-भास परिहरणाइँ॥
एहु सज्जण लोयहु किउ विणउ। जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ॥
जं एवँवि रूसाइ कोवि खलु। तहो हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु॥
पिसुणें किं अब्भत्थिएण, जसु कोवि ण रुच्चइ।
किं छण-इन्दु मरुग्गहे, ण कंपंतु विमुच्चइ॥

—पउमचरिउ १-३

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें विनय करउँ सब पाहीं॥
करन चहउँ रघुपति गुनगाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी। जे पर दूषन भूषन धारी॥

× × ×

भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥
—रामचरित मानस, बालकाण्ड

इसी प्रकार ऋतु, काल, सन्ध्या, नगर, समुद्र, नदी, वन, यात्रा, नारी-सौन्दर्य, विलाप, रनिवास, जलक्रीड़ा, विरह एव युद्ध आदि विषय, तथा छन्द, शैली आदि दृष्टियोसे 'पउमचरिउ' से तुलसीदासने बहुत कुछ ग्रहण किया प्रतीत होता है।

भविसयत्तकहासे भी तुलसीदासने विषय और वर्णनशैलीकी अपेक्षा-से अनेक बाते ग्रहण की है। पाठक देखेगे कि निम्न पद्योमे कितनी समानता है—

सुणिमित्तइँ जाअइं तासु ताम। गय पयहिणंत्ति उड्डेवि साम॥
वायंगि सुत्ति सहसहइ वाउ। पिय मेलावइ कुलकुलइ काउ॥
वामउ किलकिंचिउ लावएण। दाहिणउ अंगु दरिसिउ मएण॥
दाहिणउ लोयणु फंदइ सबाहु। णं भणइ एण मग्गेण जाहु॥

उसको सुन्दर शकुन दिखलायी पड़े। श्यामापक्षी उड़कर दाहिनी ओर आगया। बाईं ओरसे मन्द-मन्द वायु बह रही थी और प्रियतमसे मेल करानेवाली ध्वनिमे कौआ बोल रहा था। लावाने बाईं ओर बोलना शुरू किया और दाहिनी ओर मृग दिखलाई पड़े।

इसी भावकी कविवर तुलसीदासकी चौपाइयाँ देखिये—

दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरस सब काहुन पावा॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी। सघट सबाल आव वर नारी॥

छौवा फिरि-फिरि दरस दिखावा। सुरभी सन्मुख शिशुहिं पिआवा ॥
मृगमाला दाहिन दिशि आई। मंगल गन जनु दीन्ह दिखाई ॥

वात्सल्य और शृङ्गार रसके मर्मज्ञ कवि सूरदास भी देशी भाषाके जैन कवियोंसे अत्यधिक प्रभावित हैं। सूरने पदोंकी रचना देशी भाषाके जैन कवियोंकी शैलीके आधारपर की है।

देशी भाषाके जैन कवियोंने दो चरणोका एक चरण माना है, वे चौपाईके चार चरण नहीं लिखते, दो ही चरणमे छन्द समाप्त कर देते है। कहीं-कहीं एक चरण रखकर उसे ध्रुवकके रूपमे कुछ पक्तियोंके बाद दुहराया गया है। यही प्रक्रिया पदोंकी टेक बन गयी है। देशी भाषामे सगीत और लयका समन्वय अपूर्व है। इस भाषाका काव्य वाद्यके साथ गेय गीतोमे माधुर्य और तालके साथ गाया जा सकता है। सूरदासने इसी शैलीको अपनाया है। बाललीला और शृङ्गारका वर्णन जैन साहित्यकी देन है। हेमचन्दके व्याकरणमे प्रोषितपतिकाके अनेक सुन्दर सरस उदाहरण आये हैं, जो गोपियोंकी विरह-विह्वल दशाका चित्र उपस्थित करनेमें सक्षम हैं। कवि पुष्पदन्तने ऋषभदेवकी बाललीलाका वर्णन बड़े ही सुन्दर ढगसे किया है। हमारा अनुमान है कि यह भक्त-कवि बाल-चित्रणमें जैनकवियोंसे अत्यधिक अनुप्राणित हैं। उदाहरणके लिए दो-चार पद्य उद्धृत किये जाते हैं।

सेसवलीलिया कीलमसीलिया।
पहुणादाविया केण ण भाविया ॥
धूलीधूसरु ववगयकडिल्लु। सहजायक विलकोंतलु जडिल्लु ॥
हो हल्लरु जो जो सुहुं सुअहिं पइं पणवंतउभूयगणु।
णंदइ रिज्झइ दुक्कियमलेण कासुवि मक्किगुण ण होइ मणु ॥
धूली धूसरो कडि किंकिणीसरो।
णिरुवमलीलउ कीलइ बालउ।
—पुष्पदन्त—महापुराण-प्रथमखण्ड

महाकवि सूरदास¹ने कृष्णकी बाललीलाओंका चित्रण बहुत-कुछ इसी प्रकारका किया है। तुलनाके लिए सूरदासकी कुछ पद्य-पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

कहाँ लौं बरणौं सुन्दरताइ,
खेलत कुँअर कनक आगन में, नैन निरख छवि छाइ।
कुलहि लसति सिर स्याम सुभग अति, बहुबिधि सुरँग बनाइ।
मानों नव घन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाइ।
अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मन, मोहन मुख बगराइ।

× × × ×

खंडित बचन देत पूरन सुख, अल्प अल्प जलपाइ।
घुटुरन चलत रेनु तन मंडित सूरदास बलि जाइ॥

लोकजीवनके ऐसे अनेक स्वाभाविक चित्र जैन देशी भाषाके प्रबन्ध काव्योंमें अंकित किये गये हैं, जिनसे हिन्दीकाव्य अद्यावधि अनुप्राणित होता चला आ रहा है। दोहा छन्द मूलतः जैन कवियोंका है। ८-९ वीं शताब्दीमें यह छन्द जैनोंमें इतना अधिक लोकप्रिय था कि इसी छन्दमें शृङ्गार, वैराग्य, नीति आदि विषयोंकी फुटकर रचनाएँ विपुल परिमाणमें हुई। कुछ कवियोंने कतिपय छोटे-मोटे आख्यान भी दोहोंमे लिखे। हेमचन्द्रके व्याकरणमें ऐसे अनेक दोहोंका सग्रह है, जिनसे जैन कवियोंकी 'अल्प शब्दो-द्वारा अधिक भाव अभिव्यञ्जित' करनेकी शैलीका परिज्ञान सहजमे ही हो जाता है। भावकी दृष्टिसे ऐसी अनेक भावनाएँ दोहोंमे चित्रित हैं, जिनका पूर्ण विकास विहारीमें जाकर हुआ। यद्यपि शृङ्गार रसको बढ़ा-चढ़ा कर नही निरूपित किया, फिर भी विरह और प्रेमकी भावनाओंकी कमी नहीं है।

१—कवि सूरदासका समय वि. सं. १५४० और पुष्पदन्तका ई. सं. ९५९।

प्रबन्धचिन्तामणि, सोमप्रभका कुमारपाल-प्रतिबोध आदि रचनाएँ पुरानी हिन्दीके प्रबन्ध काव्योंमे परिगणित हैं। यद्यपि इन ग्रन्थोंकी प्रबन्ध-पद्धति शिथिल और विशृंखलित है, फिर भी शैली और भाषाकी दृष्टिसे इन काव्योंका विशेष महत्त्व है। प्रबन्ध चिन्तामणि भोज-प्रबन्धके ढगकी रचना है। इसमें जैन धर्मका उद्योतन करनेवाली कई कथाओंका सग्रह किया है। कथाका आरम्भ करते हुए बताया गया है कि एक दिन विक्रमादित्य रातको नगरका परिभ्रमण करने गया और एक तेलीसे निम्न दोहेका अर्धांश सुना। दोहेका उत्तरार्द्ध सुननेकी अभिलाषासे राजा वहाँ बहुत देर तक ठहरा रहा, पर उसे निराश ही लौटना पड़ा। प्रातःकाल दरबारमे उसने तेलीको बुलाया और उससे दोहेको पूरा कराया—

अपभ्रंशके बादकी पुरानी हिन्दीके जैन-प्रबन्ध काव्य

अम्मणिओ संदेसडओ नारय कन्ह कहिज्ज।
जगु दालिद्दिहि डुब्बिड' बलिबंधणह मुहिज्ज॥

अर्थात्—हे नारद, कृष्णसे हमारा सन्देश कह देना कि नगर दरिद्रतासे पीड़ित है, बलि-बन्धन (करका बोझ) छोड दो।

इसमे मुञ्ज, तैल्प, भोज, कुमारपाल, अभय, रावण आदि राजाओंको जैन धर्मावलम्बी मानकर आख्यान दिये गये हैं। वर्णन साहित्यकी अपेक्षा इतिहासके अधिक निकट हैं। यद्यपि वसन्तका शब्द-चित्रण साहित्यकी दृष्टिसे सुन्दर हुआ है, लेखकने कल्पनाकी उड़ान और भावनाकी तहमे प्रवेश करनेका पूरा यत्न किया है, पर सफलता कम मिली है। उदाहरण—

यह कोइल-कुल-रव-मुहुलु भुवणि वसंतु पयट्टु।
भट्टु व मयण-महा-निवह पयडिअ-विजय मरट्टु॥
सूर पलोइवि कंत-करु उत्तर-दिसि-आसत्तु।
नीसासु व दाहिण-दिसय मलय-समीर पवत्तु॥

काणण-सिरि सोहइ अरुण-नव-पल्लव परिणद्ध ।
नं रत्तंसुय-पावरिय महु-पिययम-संबद्ध ॥
सहयारिहिं मंजरि सहहिं भ्रमर-समूह-सणाह ।
जालाउ व मयणानलह पसरिय-धूम-पवाह ॥

अर्थात्—कोयलोंके शब्दसे मुखरित वसन्त जगमें प्रविष्ट हुआ, मानो कामदेव महानृपके विजय-अहंकारको प्रकट करनेवाला योद्धा ही हो ।

सुन्दर किरणोंवाले सूर्यको उत्तर दिशामें आते देखकर मलय-समीर दक्षिण दिशाके निश्वासकी तरह बहने लगा ।

अरुण नव कोपलोंसे परिणद्ध कानन-श्री ऐसी शोभित होती है, मानो वह रक्तांशु लपेटे हुए वासनारूपी प्रियतमसे आलिंगित हो ।

भ्रमर-समूहसे युक्त आम्रमञ्जरी ऐसी जान पड़ती है, मानो मदनानलकी ज्वालासे धुँआ उठ रहा हो ।

प्रबन्ध-चिन्तामणिमे छोटी-छोटी कई कथाएँ हैं, इन कथाओंमे आपसमें कोई सम्बन्ध नहीं है; अतः यह सफल प्रबन्ध-काव्य नहीं कहा जा सकता ।

कुमारपाल-प्रतिबोधमें कुमारपालको प्रबुद्ध करनेके लिए ५७ लघु-कथाएँ दी गयी है । कविने सप्त व्यसन—जुआ खेलना, मास खाना, मदिरा पान करना, शिकार खेलना, परस्त्रीसेवन करना, चोरी करना और वेश्या एव काम वासनाके त्याग करनेका उपदेश देते हुए अनेक छोटे-छोटे आख्यानोको उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत किया है । यद्यपि प्रासङ्गिक कथाओं-की आधिकारिक कथाके साथ अन्विति है, पर प्रबन्धमे शैथिल्य है । क्रम-बद्धताका भी अभाव है । कतिपय वर्णन कल्पनाकी उड़ान और भावनाकी सघनताकी दृष्टिसे सुन्दर हुए हैं । जगत्की तुच्छता और निस्सारता दिख-लाते हुए भौतिक पदार्थोंकी क्षणभंगुरताका मर्मस्पर्शी निरूपण किया है ।

१३ वीं शतीसे लेकर १९ वीं शती तक रासा चरित्र और पौराणिक कथाओंके रूपमें जैन साहित्यकार प्रबन्ध-काव्योंका निर्माण करते रहे हैं।

हिन्दी-जैन साहित्यके परवर्ती प्रबन्ध काव्य

यद्यपि इन ग्रन्थोंमेंसे अधिकांश काव्योंकी वस्तु पुरातन है या संस्कृत और प्राकृतके कथा-ग्रन्थोंका पद्यानुवाद है; फिर भी आत्मद्रष्टा भावुक जैन कवियोंने अपनी कल्पना-द्वारा सुनहला रङ्ग भरकर कलाको चमका दिया है।

१३ वीं शतींमे धर्मसूरिने जम्बूस्वामी रासा, विजयसूरिने रेवंतगिरि रासा, विनयचन्द्रने नेमिनाथचउपई, १४ वीं शतीमें सप्तक्षेत्र रासा, अम्बदेवने सघपति समरा रासा, १५वी शतीमे विजयभद्रने गौतमरासा, १६वी शतीमे ईश्वरसूरिने ललितागचरित्र तथा इसी शताब्दीकी अज्ञात नामवाली रचनाएँ यशोधरचरित और कृपणचरित एवं १७वी शतीमे मालकविने भोजप्रबन्धकी रचना की है। १८वीं शतीकी रचनाओंमे भूधरदासका पार्श्वपुराण तथा पौराणिक आधारोंपर विरचित हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, श्रीपाल चरित और श्रेणिक चरित आदि मुख्य हैं।

मानवके अन्तर्द्वन्द, आत्मचिन्तन, पाप-पुण्यके फल, अन्तस्तलकी निगूढ भावनाओंके घात-प्रतिघात एवं कार्योंमे मस्तिष्क और हृदयके समन्वयको जितनी खूबी और सूक्ष्मताके साथ इन परवर्ती जैन प्रबन्धकारोंने दिखलाया है उतनी खूबी और सूक्ष्मताके साथ इनका अन्यत्र मिलना असम्भव तो नही, पर कठिन अवश्य है। एक अहिसा तत्त्वकी भावना सर्वत्र अनुस्यूत मिलेगी। प्रबन्ध चाहे छोटे हों या बड़े, पर जैन कवियोंने कथाके अनुपातका पूरा ख्याल रखा है। कथामें कहीं मन्थरता और कहीं लपक-झपक नहीं है, बल्कि सन्तुलनात्मक गति है; जिससे पाठक भावनाके उच्च धरातलपर सहजमे ही पहुँच जाता है। पार्श्वपुराण और श्रीपाल चरित्र तो श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्योकी श्रेणीमे रखे जा सकते है। चरित्रोंमे स्थिर और गतिमय दोनो ही प्रकारके चरित्र चित्रित हैं। पार्श्वपुराणमे अत्यन्त सूक्ष्म पर्यवेक्षणसे काम लिया है, इसी कारण कविने सजीव चित्र

खींचनेमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। जीवनकी कमजोरियाँ, मानसिक विकार और विभिन्न परिस्थितियोंके गहन स्तरोंकी अभिव्यञ्जना भी प्रशस्य है।

प्रबन्धकाव्यके दो भेद हैं—महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्यमें सम्पूर्ण जीवनका चित्रण रहता है, पर खण्डकाव्यमे जीवनके किसी खास अंशका ही चित्राकन किया जाता है। काव्यमनीषियोंने महाकाव्यमें जीवनकी सर्वाङ्गपूर्ण कथाके साथ निम्नाङ्कित बातोंका होना भी आवश्यक माना है—

हिन्दी जैन महाकाव्य

१—कथावस्तु सर्गों या अधिकारोंमे विभक्त होती है।
२—नायक तीर्थंकर, चक्रवर्ती या अन्य महापुरुष होता है।
३—शृङ्गार, वीर या शान्त रसकी प्रधानता रहती है।
४—सन्धियोंमे अद्भुत रस होता है, प्रसगवश अन्य रस भी आ सकते हैं।
५—नाटककी सभी सन्धियाँ पायी जाती हैं।
६—कथावस्तु ऐतिहासिक या जगत्-प्रसिद्ध होती है।
७—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे किसी एक पुरुषार्थको प्राप्त करना उद्देश्य माना जाता है।
८—आरम्भमे मंगलाचरण, आशीर्वचन अथवा प्रतिपाद्य वस्तुका संकेत रहता है।
९—सर्गोंकी संख्या आठसे अधिक होती है।

१—सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥
—साहित्यदर्पण

१०–सर्ग या अधिकारके अन्तमें छन्द बदल जाते हैं, कभी-कभी एक ही सर्गमें कई प्रकारके छन्द आते हैं।

११–प्रभात, सन्ध्या, प्रदोष, सूर्य, चन्द्र, अन्धकार आदि प्राकृतिक दृश्यों, संयोग, वियोग, युद्ध, विवाह आदि जीवनकी परिस्थितियाँ एवं स्वर्ग, नरक, ग्राम, नगर आदि अनेक प्रकारकी वस्तुओंका चित्रण रहता है।

१२–महाकाव्यका नामकरण किसी प्रधान घटना, काव्यगत वृत्त, कविका नाम अथवा नायकके नामके आधारपर होता है।

देशी भाषामें स्वयम्भूदेवके पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ, पुष्पदन्त कविका तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार, पद्मकीर्तिका पार्श्वपुराण और नयनन्दिका सुदर्शनचरित हैं। ब्रजभाषा और राजस्थानी भाषामें विनयसूरिका मल्लिनाथमहाकाव्य, भूधरदासका पार्श्वपुराण तथा अनूदित हरिवंशपुराण आदि है। वास्तविक बात यह है कि राजस्थानमें अभी जैन काव्योंका अन्वेषण करना शेष है। हमारा विश्वास है कि जयपुरके आस पासके जैनमन्दिरोंके शास्त्रागारोंमें हिन्दीके अनेक महाकाव्य छुपे पड़े हैं।

यहाँ दो-चार उन मुख्य ग्रन्थोंका ही विवेचन दे रहे हैं, जो हमारे अनुशीलनका विषय रहे हैं।

पउमचरिउ–पद्मचरित्र (जैन रामायण) इस ग्रन्थमे १२००० पद्य हैं। ९० सन्धियाँ और ५ काण्ड हैं। विवरण निम्न है–

विद्याधरकाण्ड—२० सन्धि
अयोध्याकाण्ड—२२ सन्धि
सुन्दरकाण्ड—१४ सन्धि
युद्धकाण्ड—२१ सन्धि
उत्तरकाण्ड—१३ सन्धि

इन सन्धियोंमें ८३ सन्धियाँ स्वयंभूदेवकी हैं और शेष सात सन्धियाँ इनके पुत्र त्रिभुवन-द्वारा रचित हैं।

विद्याधर, राक्षस और वानरवंशका परिचय देनेके अनन्तर बताया है कि विजयार्द्धकी दक्षिण दिशामें रथनूपुर नामके नगरमें इन्द्र नामका प्रतापी विद्याधर रहता था। इसने लंकाको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। पाताल-लंकाके राजा रत्नश्रवका विवाह कौतुकमंगल नगरके व्योमबिन्दुकी छोटी पुत्री केकसीसे हुआ था, रावण इसी दम्पत्तिका पुत्र था। इसने बचपनमें ही बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी, जिससे यह अपने शरीरके अनेक आकार बना सकता था। रावण और कुंभकरणने लंकाके अधिपति इन्द्र और प्रभावशाली विद्याधर वैश्रवणको परास्तकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। खरदूषण रावणकी बहन शूर्पणखाका हरण कर ले गया, पीछे रावणने अपनी इस बहनका विवाह खरदूषणके साथ कर दिया और पाताल-लंकाका राज्य भी उसीको दे दिया।

कथावस्तु

वानरवशके प्रभावशाली शासक बालिने संसारसे विरक्त होकर अपने लघु भाई सुग्रीवको राज्य दे दिगम्बर-दीक्षा ग्रहण कर ली और कैलास पर्वतपर तपस्या करने लगा। रावणको अपने बल, पौरुषका बडा अभिमान था, अतः वह बालिपर क्रुद्ध हो कैलास पर्वतको उठाने लगा। इस पर्वतके ऊपर बने जिनालय सुरक्षित रहें, इसलिए बालिने अपने अगूठेके जोरसे कैलास पर्वतको दबा दिया, जिससे रावणको महान् कष्ट हुआ। पश्चात् बालिने रावणको छोड़ दिया और तपस्या कर निर्वाण पाया।

अयोध्यामे भगवान् ऋषभदेवके वंशसे समयानुसार अनेक राजा हुए, सबने दिगम्बरी दीक्षा लेकर तपस्या की और मोक्ष पाया। इस वंशके राजा रघुके अरण्य नामक पुत्र हुआ, इसकी रानीका नाम पृथ्वीमति था। इस दम्पत्तिको दो पुत्र हुए—अनन्तरथ और दशरथ। राजा अरण्य अपने बड पुत्र सहित ससारसे विरक्त हो तपस्या करने चला गया तथा अयोध्याका शासनभार दशरथको मिला। एक दिन दशरथकी सभामे नारद ऋषि आये, उन्होने कहा कि रावणने किसी निमित्तज्ञानीसे यह जान

लिया है कि दशरथ-पुत्र और जनक-पुत्रीके निमित्तसे मेरी मृत्यु होगी। अतः उसने विभीषणको आप दोनोंको मारनेके लिए नियुक्त कर दिया है, आप सावधान होकर कहीं छुप जायें। राजा दशरथ अपनी रक्षाके लिए देश-देशान्तरमें गये और मार्गमें कैकयीसे विवाह किया। कुछ समय पश्चात् महाराज दशरथके चार पुत्र हुए और एक युद्धमें प्रसन्न होकर उन्होंने कैकयीको वरदान भी दिया। रामके राज्याभिषेकके समय कैकयीने वरदान माँगा, जिससे राम-लक्ष्मण और सीता वन गये तथा महाराज दशरथने जिन-दीक्षा ग्रहण की। सीता-हरण हो जानेपर रामने वानरवंशी विद्याधर पवनञ्जय और अञ्जनाके पुत्र हनूमान एव सुग्रीवसे मित्रता की। रामने सुग्रीवके शत्रु साहसगतिका वधकर सदाके लिए सुग्रीवको अपने वश कर लिया और इन्हींके साहाय्यसे रावणका वधकर सीताको प्राप्त किया।

रावण जैन धर्मानुयायी था। प्रतिदिन जिनपूजा और स्तुति करता था, पर अनीतिके कारण उसके कुलका संहार हुआ।

अयोध्या लौट आनेपर लोकापवादके भयसे रामने सीताका निर्वासन किया। सौभाग्यसे जिस स्थानपर जगलमें सीताको छोड़ा गया था, वज्र-जंघ राजा वहाँ आया और अपने घर ले जाकर सीताका सरक्षण करने लगा। सीताके पुत्र लवणाकुशने अपने पराक्रमसे अनेक देशोंको जीतकर वज्रजंघके राज्यकी वृद्धि की। जब यह वीर दिग्विजय करता हुआ अयोध्या आया तो रामसे युद्ध हुआ तथा इसी युद्धमें पिता पुत्र परस्परमें परिचित भी हुए। सीता अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण हुई, विरक्त हो तपस्या करने चली गयी और स्त्रीलिङ्ग छेदकर स्वर्ग प्राप्त किया। लक्ष्मणकी मृत्यु हो जानेपर राम शोकाभिभूत हो गये, कुछ काल बाद बोध प्राप्त होनेपर दिगम्बर मुनि हो गये और दुर्द्धर तपस्याकर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

यह सफल महाकाव्य है। इसकी आधिकारिक कथा रामचन्द्रकी कथा है, अवान्तर या प्रासङ्गिक कथाएँ वानरवंश और विद्याधर वंशके

आख्यान रूपमें आयी हैं। प्रासङ्गिक कथावस्तुमें प्रकरी और पताका दोनों ही प्रकारकी कथाएँ हैं। पताका रूपमें सुग्रीव और मारुत-नन्दनकी कथाएँ आधिकारिक कथाके साथ-साथ चली हैं और प्रकरी रूपमे बालि, भामण्डल, वज्रजंघ आदि राजाओंके आख्यान हैं।

महाकाव्यत्व

कार्य-व्यापारकी दृष्टिसे उक्त कथावस्तुमें प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम ये पाँचो ही अवस्थाएँ पायी जाती हैं। विद्याधर वंशके वर्णनके उपरान्त अयोध्याकाण्डकी तीसरी सन्धिमे कथासूत्र फलकी इच्छाके लिए उन्मुख होता है। इक्ष्वाकुवशके महाराज दशरथके प्रागणमे राम खेलते दिखलायी पड़ते हैं। द्वितीय अवस्था उस समय आती है जब राम विवाहकर घर लौट आते हैं। वन जाना, सीताका हरण होना और युद्ध करके रावणके यहाँसे सीताको ले आनेके उपरान्त रामका धार्मिक कृत्योमे लीन हो जाना तथा लक्ष्मणकी मृत्युके उपरान्त रामका वेदनाभिभूत होना और देवो-द्वारा बोध प्राप्त होना तीसरी प्राप्त्याशा नामक अवस्था है। रामका तपस्याके लिए जाना नियताप्ति नामक चौथी अवस्था और रामका निर्वाण प्राप्त करना फलागम नामक पाँचवी अवस्था है।

अवस्थाएँ

इस महाकाव्यमें कथावस्तुके चमत्कारपूर्ण वे अंग वर्तमान हैं, जो कथावस्तुको कार्यकी ओर ले जाते हैं। बीज प्रारम्भ नामक अवस्थासे ही दिखलायी पड़ता है, जिस प्रकार बीजमें फल छिपा रहता है उसी प्रकार वशोत्पत्ति नामक आख्यानमें सारी कथा छुपी है। वानरवंश, विद्याधरवश और राक्षसवशका पारस्परिक सम्बन्ध दिखलाकर कविने मानवीय और दानवीय प्रवृत्तियोंके द्वन्द्वकी अभिव्यञ्जना की है। बिन्दुका आरम्भ रामके जन्मसे होता है, कथाके वास्तविक विस्तार और निगमनका यही स्थान है। पताका और प्रकरीमें बालिका तपाख्यान, विशल्याके भवान्तर, हनूमानका निर्वाण लाभ आदि

अर्थप्रकृतियाँ

अवान्तर कथास्थान हैं। रामका निर्वाण लाभ-कार्य नामक अर्थ-प्रकृति है।

अवस्था और अर्थप्रकृतियोंका मेल इसमे सुन्दर ढंगसे हुआ है। बीज अर्थप्रकृति—वंशाख्यानका प्रारम्भ नामक अवस्था—रामके साथ योग दिखलाना मुख सन्धि है। प्रतिमुख सन्धि कथाका वह स्थान है जहाँ रामकी वानरवंशके विद्याधरोंसे मित्रता होती है। गर्भसन्धिमे कथाका विस्तार बहुत हुआ है। अवमर्श सन्धिमे रामका वेदनाभिभूत हो जानेवाला कथाका स्थान है। रामका निर्वाण प्राप्त करना निर्वहणसन्धि-स्थान है, जहाँ कार्य और फलका योग हुआ है।

सन्धियाँ

इस महाकाव्यकी कथावस्तुके नायक पद्म—राम हैं। यह धीरोदात्त है। इनके चरित्रमे महती उदारता है। इनमें शक्तिके साथ क्षमा तथा दृढ़ता और आत्मगौरवके साथ विनय तथा निरभिमानता है। यह त्रेशठ शलाकापुरुषोंमेसे हैं।

नायक

इस महाकाव्यमे यो तो सभी रस हैं, पर शान्तरस प्रधान रूपसे परिपक्व हुआ है। शृङ्गारके संयोग और वियोग दोनों पक्षोंका वर्णन कविने सुन्दर किया है। करुण रसके चित्रणमें तो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। युद्धमें भाई-बन्धुओंके काम आनेपर कुटुम्बियोंके विलाप पाषाणहृदयको भी द्रवीभूत करनेमे समर्थ है।

रस

प्रकृति आदिकालसे ही कवियोंका आकर्षण-केन्द्र रही है। सभी कवियोने विभिन्न रूपोंमें प्रकृतिका चित्रण किया है। इस महाकाव्यमें भी षट्ऋतुओंका वर्णन विशुद्ध प्रकृतिके साथ आलम्बनके रूपमे किया गया है। सन्ध्याकी सुषमाको कविने अनेक उपमा और उत्प्रेक्षाओंके सुन्दर जालमें बाँधना चाहा है, पर वह सुन्दरीका शब्दचित्र प्रस्तुत नहीं कर सका है। निम्न पंक्तियाँ देखने योग्य हैं—

प्रकृतिचित्रण और वस्तुवर्णन

उवहसइ संझाराउ सुह-बंधुरु। विद्दु मयाहरु मोत्तिय-दंतुरु॥
छिवइ व मत्थउ मेरु-महीहरु। तुज्झुवि मज्झुवि कवणु पईहरु॥
जं चंद-कंत-सलिलाहि सित्तु। अहिसेय-पणालु व फुसिय चित्तु॥
जं विद्दुम-मरगय-कंति आहि। थिउ गयणु व सुधरणु-पंति आहि॥
जं इंदणील-माला मसीए। अलिहइ वंदि भित्तीए तीए॥
जहि पोमराय-पह तणु विहाइ। थिउ अहिणव-संझाराउ णाइ॥
—पउमचरिउ ७२।३

इस महाकाव्यके दो खण्ड है—आदिपुराण और उत्तरपुराण। प्रथम खण्डमे ८० सन्धियाँ और द्वितीयमें ४० सन्धियाँ है। आदिपुराणमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथका चरित्र है और उत्तर-पुराणमे अवशेष २३ तीर्थंकरोकी जीवनगाथा है। आदिपुराणकी कथावस्तुमें एकतानता है, पर उत्तर-पुराणमे २३ कथाएँ हैं, एकका दूसरेसे कुछ भी सम्बन्ध नही। अतएव महाकाव्यके सभी पूर्वोक्त लक्षण आदिपुराणमे वर्तमान हैं।

तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु

महाकाव्यकी सबसे बड़ी विशेषता कथावस्तुमे अन्वितिका होना है। आदिपुराणमे घटनाचक्रके भीतर ऐसे स्थलोका पूरा सन्निवेश है जो मानवकी रागात्मिका वृत्तिको उद्‌बुद्ध कर सकते हैं, उसके हृदयको भाव-मग्न बना सकते हैं। इसमें कथाका पूरा तनाव है; इसके नायकमें केवल कालकी अपेक्षासे ही विस्तार नही है, बल्कि देशापेक्षया भी है। नायक ऋषभनाथ—आदिनाथ उस समयके समाज और वर्गविशेषके प्रतिनिधि हैं। उनके जीवनमें समष्टिके जीवनका केन्द्रीयकरण है। महाकाव्यके नायकमे यही सबसे बड़ी विशेषता होनी चाहिये कि वह समष्टिगत भाव-नाओं और इच्छाओंको अपने भीतर रखकर मानवताका प्रतिष्ठान करे। सक्षेपमे यह सफल महाकाव्य है।

१२वीं शतीमें नयनन्दिने १२ सन्धियोंमे सुदर्शन चरितकी रचना की है। यह ग्रन्थ एक प्रेम कथाको लेकर लिखा गया है। कविने बड़े कौशलसे

इस कथाकी व्यञ्जनामें पञ्चनमस्कारका फल घटित किया है। प्रतिदिन

सुदर्शन-चरित

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको भक्तिपूर्वक नमस्कार करना प्रत्येक साधकका धर्म है। काव्यके बीच-बीचमें धार्मिक प्रकरण रखे गये हैं। धार्मिक व्यञ्जनाके साथ प्रेम-कथा कहनेकी यह सांकेतिक शैली सूफी कवियोंके लिए विशेष अनुकरणीय रही है। इस काव्य-ग्रन्थके कथानकके समानान्तर ही प्रेम-मार्गी कवियोंने कथाएँ गढ़कर अपने सिद्धान्तोंका प्रचार किया है।

प्रस्तुत काव्यग्रन्थमें यद्यपि शृंगाररसकी प्रधानता है, तथापि इसका पर्यवसान शान्तरसमें हुआ है। कविने जहाँ एक ओर स्त्रीके सौन्दर्य-चित्रण और आकर्षक परिस्थितियोंमें अपनी कल्पना एवं सौन्दर्य-दर्शनकी अन्तर्दृष्टिका परिचय दिया है, वहाँ बीच-बीचमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंका भी स्पष्टीकरण किया है। नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, प्रकृति चित्रणके रसानुकूल प्रसंग बड़े मनोहर ढंगसे प्रस्तुत किये हैं। जैन साहित्यमें इस महाकाव्यकी शैलीपर अधिक रचनाएँ नहीं हो सकी हैं। आकर्षक रूप-सौन्दर्य ही इस महाकाव्यके आख्यानका आधार है। सुदर्शनका रूप संसारकी समस्त सुन्दर वस्तुओंके समन्वयसे निर्मित है। इसके वर्णन, दर्शन या भावनामात्रसे किसीके भी हृदयमें गुदगुदी उत्पन्न हो सकती है।

कवि नयनन्दने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि-द्वारा भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंके बीच घटित होनेवाली अनेक मानसिक अवस्थाओंका सुन्दर विश्लेषण किया है। अभयाके सामने जब सुदर्शन पहुँचता है तो वह उन्मुक्त हृदयसे प्रेमकी भीख माँगती है, किन्तु शीलपर हिमालयकी चट्टानकी तरह अडिग सुदर्शन मानसिक द्वन्द्वोंके बीच पड़कर भी कमजोरियोंपर विजय पाता है और स्पष्ट शब्दोंमें उसके प्रस्तावको ठुकरा देता है। क्षोभसे उत्पन्न उदासीनता और आत्मग्लानिकी भावनासे अभिभूत अभया शोर मचाती है, जिसका परिणाम दानवीय शक्तिपर मानवीय शक्तिके विजय रूपमें होता है। करुणा, रति, क्रोध, उत्साह आदि स्थायी भावोंके अतिरिक्त कितने

ही छोटे-छोटे भाव और विभिन्न मानसिक दशाओंका चित्रण श्रेष्ठ कविने किया है। इस कारण इसमें महाकाव्यत्वकी अपेक्षा नाटकत्व अधिक है।

सुदर्शनके स्वभावमें वैयक्तिक विशेषता है, यह धीर प्रशान्त नायक है, स्वभावतः शान्त और अपनी प्रतिज्ञापर अटल है, इसे कोई भी प्रलोभन पथभ्रष्ट नहीं कर सकता है। कञ्चन और कामिनी जिनसे संसारके इने-गिने व्यक्ति ही अपनेको विलग रख पाते हैं, से सुदर्शन निर्लिप्त है। रस और शैलीकी दृष्टिसे भी यह महाकाव्य है, नायकके नामपर इसका नामकरण किया गया है। दृश्य-योजना, वस्तु-व्यापार-वर्णन और परिस्थिति-निर्माणकी योजना कविने यथास्थान की है। वर्णनोंमें नामोंकी भरमार नहीं है, किन्तु वस्तुके गुणोंका विश्लेषण किया गया है।

देशी भाषा और पुरानी हिन्दीके पश्चात् कई महाकाव्य प्रचलित हिन्दी भाषामें भी लिखे गये। यद्यपि सोलहवीं शतीके अनन्तर महाकाव्य लिखनेकी परिपाटी उठती गयी, फिर भी पुराण साहित्यको काव्यका विषय बनानेके कारण महाकाव्य रचनेकी परम्परा क्षीण रूपमें चलती रही। प्रकरणवश राजस्थानी और ब्रजभाषाके कतिपय जैन महाकाव्योंका आलोचनात्मक परिचय देना अप्रासंगिक न होगा।

पार्श्वपुराण

यह सफल महाकाव्य है, पूर्वोक्त सभी महाकाव्यके लक्षण इसमें वर्तमान है। इसकी कथा बड़ी ही रोचक और आत्मपोषक है। किस प्रकार वैरकी परम्परा प्राणीके अनेक जन्म-जन्मान्तरोंतक चलती रहती है, यह इसमें बड़ी ही खूबीके साथ बतलाया गया है। पार्श्वनाथ तीर्थंकर होनेके नौ भवपूर्व पोदनपुर नगरके राजा अरविन्दके मन्त्री विश्वभूतिके पुत्र थे। उस समय इनका नाम मरुभूति और इनके भाईका नाम कमठ था। विश्वभूतिके दीक्षा लेनेके अनन्तर दोनों भाई राजाके मन्त्री हुए। जब राजा अरविन्दने वज्रकीर्तिपर चढ़ाई की तो कुमार मरुभूति इनके साथ युद्ध-क्षेत्रमें गया। कमठने राजधानीमें अनेक उत्पात मचाये और अपने छोटे भाईकी पत्नीके साथ

दुराचार किया। जब राजा शत्रुको परास्तकर राजधानीमें आया तो कमठ-के कुकृत्यकी बात सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ। कमठका काला मुँहकर गधेपर चढा सारे नगरमें घुमाया और नगरकी सीमाके बाहर कर दिया। आत्मप्रताड़नासे पीडित कमठ भूताचल पर्वतपर जाकर तपस्वियोके साथ रहने लगा। मरुभूति कमठके इस समाचारको पाकर भूताचलपर गया, पर वहाँ दुष्ट कमठने उसकी हत्या कर दी। इसके पश्चात् आठ जन्मोंकी कथा दी गयी है; नौवें जन्ममे काशीके विश्वसेन राजाके यहाँ पार्श्वनाथका जन्म होता है। यह आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आत्म-साधना करते है, पूर्वभवका साथी कमठ इनकी तपस्यामे नाना विघ्न उत्पन्न करता है, पर ये अविचलित रहकर आत्म-साधना करते है। कैवल्य-प्राप्ति हो जानेपर भव्य जीवोंको उपदेश देते है और सौ वर्षकी अवस्थामें निर्वाण प्राप्त करते है।

महाकाव्यत्व

कथावस्तुसे ही इसका महाकाव्यत्व प्रकट है। नायक पार्श्वनाथका जीवन अपने समयके समाजका प्रतिनिधित्व करता हुआ लोक-मगलकी रक्षाके लिए बद्ध-परिकर है। कविने कथामें क्रमबद्धता का पूरा निर्वाह किया है। मानवता और युग-भावना-का प्राधान्य सर्वत्र है। परिस्थिति-निर्माणमें पूर्वके नौ भवोंकी कथा जोड़-कर कविने पूरी सफलता प्राप्त की है। जीवनका इतना सर्वाङ्गीण और स्वस्थ विवेचन एकाध महाकाव्यमे ही मिलेगा।

यह जीवनका काव्य है। इसमें एक व्यक्तिका जीवन अनेक अवस्थाओ और व्यक्तियोके बीच अकित है। अतः इसमें मानव राग-द्वेषोंकी क्रीड़ाके लिए विस्तृत क्षेत्र है। मनुष्यका ममत्व अपने परिवारके साथ कितना अधिक रहता है, यह पार्श्वनाथके जीव मरुभूतिके चरित्रसे स्पष्ट है।

जीवनके आन्तरिक दर्शनका आभास वृद्ध आनन्दकुमारकी आत्म-कल्याणकी छटपटाहटमें कविने कितने सुन्दर ढगसे दिया है। कवि कहता है—

बालक काया कूंपल सोय। पत्र रूप जीवनमें होय॥
पाको पात जरा तन करै। काल बयारि चलत पर झरै॥
मरन दिवसको नेम न कोय। यातैं कछु सुधि परै न लोय॥
एक नेम यह तो परमान। जन्म धरे सो मरै निदान॥
—४।६५-६७

वस्तुतः उपर्युक्त पक्तियोंका यथार्थ चित्रण अत्यन्त रमणीय है। कवि कहता है कि किशोरावस्था कोंपलके तुल्य है, इसमे पत्र-रूप यौवन अवस्था है। पत्तोंका पक जाना —जरा है। मृत्यु-रूपी वायु इस पके पत्तेको अपने एक हल्के धक्केसे ही गिरा देती है। जब जीवनमे मृत्यु निश्चित है, तो हमे अपनी महायात्राके लिए पहलेसे तैयारी करनी चाहिये।

जीवनका अन्तर्दर्शन ज्ञानदीपके द्वारा ही हो सकता है, किन्तु इस ज्ञानदीपमें तपरूपी तैल और स्वात्मानुभवरूपी बत्तीका रहना अनिवार्य है—

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर॥—४।८१

वस्तु-वर्णन, चरित्र-चित्रण और भाव-व्यञ्जना इस महाकाव्यमें समन्वित रूपमे वर्तमान है। घटना-विधान और दृश्य योजनाओको भी कविने पूरा विस्तार दिया है। आदर्शवादका मेल कविताकी समाजनिष्ठ पद्धति और प्रबन्ध-शैलीसे अच्छा हुआ है। पार्श्वनाथका चरित्र हिंसापर अहिंसाकी विजय है। क्षमाका पीयूष क्रोध और वैरको सुधा बना देता है, क्रोध और उत्पातके स्वरूपको बदल देता है। प्रतिशोध और वैरकी भावनाका अन्त हो जाता है। इसपर कवि कहता है—

इत्यादिक उत्पात सब, वृथा भये अति घोर।
जैसे मानिक दीपकौं, लगै न पवन झकोर॥
प्रभु चित चल्यो न तन हिल्यौ, टल्यौ न धीरज ध्यान।
इन अपराधी क्रोधवस, करी वृथा निज हान॥—८।२३, ८।२५

हिन्दी-जैन-खण्डकाव्य

खण्डकाव्यमें जीवनके किसी खास पहलूपर कविकी दृष्टि केन्द्रित रहती है। यद्यपि घटना-विधान, दृश्य-योजना और परिस्थिति-निर्माणका भी प्रयास खण्डकाव्यके निर्माताओंको करना पड़ता है, पर जीवनके किसी खास अंशकी सीमामें बाँधकर। जैन साहित्यकारोंने भी हिन्दी भाषामें अनेक खण्डकाव्योंकी रचना की है। परिस्थिति निर्माणमें इन्हें अभूतपूर्व सफलता इसलिए प्राप्त हुई है कि जीवनके द्वन्दोंमें प्रवृत्तिसे हटकर निवृत्ति-की ओर ले जाना इनका ध्येय था। इस कारण जीवनकी मर्मस्पर्शी घटनाओंको घटित करानेके लिए परिस्थितियोंका निर्माण सुन्दर ढगसे हुआ है। संसारका कोई भी पदार्थ अपनी स्थितिमें नहीं रहना चाहता है, परिस्थितिकी ओर बढ़ता है; क्योंकि जड़ और चेतन सभी प्रकारके पदार्थों-में परिवर्तन और गतिका होना अनिवार्य है। जैन हिन्दी कवियोंने स्याद्-वाद दर्शनकी अनुभूतिसे प्रत्येक पदार्थकी गति और परिस्थितिका अनुभव कर खण्डकाव्योंमें घटना-विधान इतने सुन्दर ढगसे घटित किये हैं, जिससे मानव जीवनके राग-विराग सहजहीमें प्रकट हो जाते हैं।

पञ्चमीचरित, नागकुमारचरित, यशोधरचरित, नेमिनाथचउपई, बाहुबलिरास, गौतमरास, कुमारपाल-प्रतिबोध, जम्बूस्वामीरासा, रेवंतगिरि-रासा, सघपति समरारास, अञ्जनासुन्दरीरास, धर्मदत्तचरित, ललिताग-चरित, कृपणचरित, धन्यकुमारचरित, जम्बूचरित आदि अनेक जैनखण्ड-काव्य देशी भाषा, पुरानी हिन्दी और परवर्ती हिन्दीमें विद्यमान है। इन सभी खण्डकाव्योमें घटना-वैचित्र्यके साथ चरित्र-चित्रण सफल हुआ है। मानव जीवनकी रागात्मिका वृत्तिके उद्‌घाटनके साथ शुद्धात्मानुभूतिकी ओर ले जानेकी क्षमता इन सभी खण्डकाव्योंमे है। नायक, रस, वस्तु-विधान, अलंकार-योजना और शैली आदि विभिन्न दृष्टिकोणोंकी अपेक्षासे ये सभी खण्डकाव्य सफल है। यह जैन कवियोंकी प्रमुख विशेषता है कि वे पुरातन कथावस्तुमे नवीन प्राणोंकी प्रतिष्ठा कर नूतन और मौलिक

उद्भावनाएँ करनेमें सफल हुए है। पौराणिक कथानकके होनेपर भी विचार निखरे और पुष्ट हैं। इनमेंसे कुछका विवरण निम्न प्रकार है—

यह कवि पुष्पदन्तकी अमर कृति है। इसमे नौ सन्धियाँ हैं। पञ्चमी व्रतके उपवासका फल प्राप्त करनेवाले नागकुमारका चरित वर्णित है।

नागकुमारचरित

नागकुमारके जीवनको प्रकाशमे लानेके लिए कविने अपनी कल्पनाका पूरा उपयोग किया है। युद्ध और संघर्षकी परिस्थितिके क्षणोंमे होनेवाली नागकुमारकी विलक्षण मनोदशाका कविने वैज्ञानिक उद्घाटन किया है। आजकलके मनोविज्ञानके सिद्धान्त भले ही उसमें न हों, पर संघर्षकी स्थितिमे मानवमन किस प्रकार व्याकुल रहता है तथा कल्पनाके सुनहले परोंपर बैठ नभोमण्डलमें कितनी दूर तक विचरण कर सकता है, का आभास सहजमे ही मिल जाता है। इस खण्ड-काव्यमें वस्तुवर्णनका कौशल और प्रबन्धकी पटुताका अद्वितीय मिश्रण है। कवि नागकुमारको वनराजके द्वारा देखे जानेका वर्णन करता हुआ कहता है—

जहिं काणणंते ठागोहतरु, तहिं हुंतउ पल्लविउ सवरु ॥
दिट्ठउ परमेसरु कुसुम सरु, आवासिउ सणरु जणतिहरु ॥
आएस पुरिसु परियाणियउ, भिच्चहिं जाइवि परियाणियउ ॥
तं दिट्ठु जयंधर णिवतणउ, झसकेउ देउ किं सो मणउ ॥
पुच्छिउ कामें किं आइयउ, को तुहुं विणएण विराइयउ ॥

कवि पुष्पदन्तका देशी भाषामे नागकुमार-चरितके समान यह भी सुन्दर खण्डकाव्य है। इसमें यशोधर राजाका चरित्र वर्णित है। कविने

यशोधर-चरित

जनताकी भावनाका चित्रण यशोधरके चरित्रमे किया है। वीर-गाथाकालीन रचना होनेके कारण शक्ति और शौर्यका प्रदर्शन अधिक किया गया है। इस काव्यमे मूर्त्त जीवनमें अमूर्त्तको, स्थूल शरीरमें सूक्ष्मको और क्षण-भगुर संसारमें नित्य और अमर-तत्त्वको अभिव्यञ्जित करनेका प्रयास किया है। लौकिक प्रेमकी विभिन्न

अवस्थाओंका उद्घाटन जीवनके विभिन्न चित्रों-द्वारा किया है। वर्णन और दृश्य-योजना भी सुन्दर बन पड़ी हैं।

जम्बूस्वामीरासा

धर्मसूरि विरचित १३ वीं शतीका यह खण्डकाव्य है। इसमे भगवान् महावीरके समकालीन जम्बूस्वामीका चरित्राकन किया है। यह गृहस्थ अवस्थामें ही अपने बुद्धि-कौशल और वीरत्वके लिए प्रसिद्ध थे। मगधसम्राट् बिम्बसारके आदेशानुसार इन्होने पर्वतीय शत्रुको परास्तकर गौरव प्राप्त किया और अन्तमें भगवान् महावीरके सघमें दीक्षित हो तपस्या की और निर्वाण-पद पाया। कविने इसमे गार्हस्थ्य जीवनका सुन्दर चित्रण किया है। दाम्पत्यको मर्यादामें बद्धकर शृङ्गारिक जीवन आध्यात्मिक जीवनपर किस प्रकार छा जाता है, इसका दिग्दर्शन कराया है।

दर्पोक्तियाँ वीर-रसके पोषणमे कहाँ तक सहायक हैं, यह पर्वतीय राजाके दर्पसे स्पष्ट है। आत्म-विश्वास और आत्म-गौरवकी भावनाका जम्बूस्वामीमें अकनकर उनके प्रतिनायक पर्वतीय राजाके विचारोका कच्चा चिट्ठा सुन्दर ढगसे दिखलाया है। रस, नायक, दृश्यविधान, घटना-वैचित्र्य आदिकी दृष्टिसे यह खण्डकाव्य है, पर संवादोका अभाव और कथा-वस्तुकी शिथिलता इसके सौन्दर्यको विकृत करनेमे सहायक हैं।

अन्य रासा ग्रन्थ

सभी रासा ग्रन्थ एक ही शैलीपर लिखे गये हैं। इनमें से अधिकाश खण्डकाव्योमे काव्यत्व अल्प और पौराणिकता अधिक है। धर्मवार्ता होनेके कारण सुन्दर नीति और विश्वोपकारकी भावना अन्तर्हित है। इन ग्रन्थोके रचयिताओने धार्मिक आस्थाको खुलखुलानेके लिए सुदृढ़ और सौम्य दृष्टान्तोको प्रस्तुत किया है। मानवको इन्द्रिय और मनकी दासतासे छुड़ाकर अतीन्द्रिय आनन्दकी चौरस भूमिमें ला उपस्थित किया है। रासा ग्रन्थोंमे प्रेम और विरहके चित्रोंका भी अभाव नही है। वेदनाकी अग्निमे तपाकर आध्यात्मिक रसानुभूतिकी तीव्रता दिखलायी है। वीर रसका चित्रण तो इन काव्योमे

सफल हुआ है। किन्तु शान्तरस निरूपणकर सभी रास पर्यवसानको प्राप्त हुए हैं। जीवनके आवरणमे छुपे चिरन्तन राग-द्वेषोका जिस कविको जितना गहरा परिज्ञान होगा, वह उतना ही सफल खण्डकाव्य लिख सकेगा। जैन कवियोंमे यह परख-विद्यमान थी, जिससे वे राग-द्वेषका परिष्कार करनेवाली वैराग्यप्रद परिस्थितियोंका निर्माणकर काव्यजगत्मे सफल हुए। जीवनके क्रिया-व्यापारोका संचालन रासग्रन्थोके रचयिताओंमे विद्यमान था, जिससे वे घटना-विधानमें अधिक सफल हो सके हैं।

अंजनासुन्दरी रासामे अजनाके विरहका ऐसा सुन्दर चित्रण किया गया है, जिससे विरहिणीके जीवनकी समस्त परिस्थितियोका चित्र सामने प्रस्तुत हो जाता है। संस्कृत साहित्यमे विरहकी जिन दस दशाओका निरूपण किया गया है, वे सभी अजनाके जीवनमे विद्यमान है। विरहमे प्रियसे मिलनेकी उत्कठा, चिन्ता अथवा प्रियतमके इष्ट-अनिष्टकी चिन्ता, स्मृति, गुणकथन आदि सभी नैसर्गिक ढगसे दिखलाये गये है।

विरहिणी अजनाके जीवनमे कविने सहानुभूतिकी भी कमी नहीं दिखलायी है। पति-द्वारा अकारण तिरस्कृत होनेसे अजनाके मनमे अत्यन्त ग्लानि है, वह अपने सुखी बाल्यकालकी स्मृतिका पतिके प्रथम साक्षात्कार-की मधुर स्मृतिके अनुभव-द्वारा अपने दुःख-सकटके समयको प्रसन्नता-पूर्वक बिता देती है। भगवद्भक्ति और सदाचार ही उसके जीवनका आधार है। वह एक क्षण भी अधार्मिक जीवन बिताना पाप समझती है। पतिके इतने बड़े अन्यायको भी प्रसन्नतापूर्वक सहन करती हुई, अपने भाग्यको कोसती है। अंजनामें अपूर्व शालीनता है, पातिव्रतकी ज्योति प्रभामण्डल बनकर उसे आलोकित कर रही है।

अंजनाको ग़लतफ़हमीके कारण उसकी सास गर्भावस्थामे घरसे निकाल देती है। उस समयकी उसकी करुण अवस्थाको देखकर निष्ठुरता भी रुदन किये बिना नही रह सकती है। यह एक सरस खण्ड काव्य है। यद्यपि इसकी भाषा पर गुजरातीका पूर्ण प्रभाव है, तो भी रस-परिपाकमे

कमी नहीं आयी है। इसके रचयिता कवि महानन्द हैं। वसन्तका चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

मधुकर करइं गुंजारव मार विकार वहंति।
कोयल करइं पटहूकड़ा ढूकड़ा मेलवा कन्त॥
मलयाचल थी चलकिरा पुलकिउ पवन प्रचण्ड।
मदन महानृप पाझइ विरहीनिं सिर दंड॥

'लघुसीता सतु' कवि भगवतीदासका एक सुन्दर खण्डकाव्य है। इसमें कविने सीताके सतीत्वकी झाँकी दिखलायी है। बारह मासोंमें मन्दोदरी-सीताके प्रश्नोत्तरके रूपमें रावण और मन्दोदरीकी चित्तवृत्तिका सुन्दर विश्लेषण किया गया है। मानसिक घात-प्रतिघातोंकी तस्वीर कितनी चतुराईसे खींची गयी है, यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है—

तब बोलइ मन्दोदरी रानी। सखि अषाढ़ घनघट घहरानी॥
पीय गये ते फिर घर आवा। पामर नर नित मंदिर छावा॥
लवहिं पपीहे दादुर मोरा। हियरा उमग धरत नहिं धीरा॥
बादर उमहि रहे चौपासा। तिय पिय बिनु लिहिं उरुन उसासा।
नन्ही बून्द झरत झर लावा। पावस नभ आगमु दरसावा॥
दामिनि दमकत निशि अँधियारी। विरहिनि काम बान उरमारी।
भुगवहि भोगु सुनहि सिख मोरी। जानति काहे भई मति बौरी॥
मदन रसायनु हइ जग सारू। संजमु नेमु कथन विवहारू॥

जब लग हंस शरीर महिं, तब लग कीजइ भोगु।
राज तजहिं भिक्षा भमहिं, इउ भूला सबु लोगु॥

कृपणजगावन काव्य कविवर ब्रह्मगुलालने १७वीं शतीमें इस काव्यकी रचना की है। इसकी कथावस्तु रोचक और सरस है।

राजग्रह नगरमे वसुमति राजा शासन करता था। इसी नगरमे

श्रेष्ठपुत्री क्षयंकरी रहती थी। राजाने मुनिराजसे क्षयंकरीकी भवावली पूछी। मुनि कहने लगे—

यह पहले भवमें उज्जैनके सेठ धवलकी पत्नी थी, इसका नाम मल्लि देवी था। उज्जैनके राजा पद्मनाथने अष्टाह्निका पर्वका उत्सव सामूहिक रूपसे मनाया, धवल सेठ भी इसमें शामिल हुआ, पर मल्लि सेठानीको यह नहीं रुचा। पूजाके लिए सामग्री और पकवान बनवाये अवश्य, किन्तु अच्छी वस्तुएँ न लेकर सड़े गले सामानसे सामग्रियाँ तैयार कीं, जिससे मुनियोंको आहार नहीं दिया जा सका। मल्लिकी भावनाएँ सदा कलुषित रहती थीं; दान धर्ममें एक कानी कौड़ी भी खर्च करनेमें उसके प्राण सूखते थे; इस कारण पतिसे निरन्तर संघर्ष होता रहता था। इस कंजूसीके परिणामस्वरूप ही वह कुष्ठ रोगसे पीडित हो गयी। मुनिराज आगे बोले—स्त्रियाँ ही लोभ नहीं करती, पुरुष भी परमलोभी होते हैं। वह कहने लगे कि कुण्डलनगरमें लोभदत्त सेठ रहता था, कमला और लच्छा उसकी उदारमना पत्नियाँ थीं, दोनों स्त्रियोंमें अत्यन्त स्नेह था। सेठ बहुत ही लोभी था, जब कहीं वह जाता तो अपने भण्डार-घरका ताला बन्द कर जाता।

एक दिन दो चारणमुनि सौभाग्यसे वहाँ आये, उनके वहाँ उतरते ही द्वार खुल गया। मुनिराजोंको आहारदान देनेसे उन्हें आकाशगामिनी और बन्धमोचनी विद्याएँ सिद्ध हो गयी। अतः सेठके घरसे बाहर जानेपर वे दोनों अपनी विद्याओंके प्रभावसे तीर्थाटन करने लगीं। एक दिन पडोसिन रूठकर आयी और छिपकर उनके विमानमें बैठ गयी, दोनों सेठानियोंके साथ उसने सहस्रकूट चैत्यालयके दर्शन किये और वहाँसे मूल्यवान रत्न ले आयी। संयोगकी बात वे कीमती रत्न लोभदत्त सेठके हाथ बेचे। रत्नोंके सौंदर्य और गुणोंपर मुग्ध होकर सेठ उससे कहने लगा, 'तू जहाँसे इन रत्नोंको लायी है, उसकी खान बतला दे'। लोभमें आकर पडोसिनने सेठको विमानमें छुपाकर बैठा दिया। रत्नद्वीपसे लौटते समय

मार्गमें अकस्मात् वह विमान फट गया और सेठकी मृत्यु हो गयी। सेठानियोंने संसारके स्वरूपका विचारकर धैर्य धारण किया और अन्तमें समाधिपूर्वक प्राण-विसर्जन करनेके कारण देव हुईं।

मुनिराजके उपदेशसे क्षयकरीको विरक्ति हो गयी और उसने तपस्या-द्वारा प्राण विसर्जनकर देव-पर्याय प्राप्त की।

यद्यपि इसमे खंडकाव्यके अनेक लक्षण नहीं भी पाये जाते हैं, फिर भी जीवनको प्रभावित करनेवाली घटनामें सार्वजनीन चित्रण है। इसका

खण्डकाव्यत्व

नायक धवलसेठ और नायिका मल्लिदेवी है। नायक सात्त्विक प्रकृतिका है और नायिका तामसी प्रकृतिकी, इसमे लोभकी पराकाष्ठा है। मल्लिकी आधिकारिक कथावस्तु है और लोभदत्त सेठकी कथा प्रासगिक है। दोनों कथाओंमें अन्विति है। लोभीकी सूक्ष्म मानसिक दशाओका चित्रण करनेमे कविको पूर्ण सफलता मिली है।

खरी आलोचनाकी दृष्टिसे यह सफल खंडकाव्य नहीं भी ठहरता है, पर जीवनके कतिपय तत्त्वोंका विवेचन ऐसा मार्मिक हुआ है, जिससे इसे सफल खडकाव्य कहा जा सकता है। पाश्चात्य समीक्षा पद्धतिमे नायकका वर्ग और जातिका प्रतिनिधि होना तथा परिस्थितियोंका ऐसा निर्माण रहे, जिससे नायक अपना विस्तार कर सके और उसके चरित्रका दर्शन सभी कर सके खंडकाव्यका विषय है। वस्तु, संवाद आदि भी इसके सफल हैं।

कवि मनरङ्गलाल विरचित यह एक खण्डकाव्य है। इसकी भाषा

नेमिचन्द्रिका

कन्नौजीसे प्रभावित खड़ी बोली है। भगवान् नेमिनाथ का चरित कवियोंके लिए अधिक आकर्षक रहा है, अतएव अपभ्रंश और हिन्दीमें अनेक रचनाएँ काव्यरूपमें लिखी गयी हैं।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके अन्तर्गत सौराष्ट्र देशमे द्वारावती नगरी थी। इस नगरीमे राजा समुद्रविजय राज्य करते थे। ये बड़े धर्मात्मा पराक्रम-

कथावस्तु

शाली और शूरवीर थे। इनकी रानीका नाम शिवदेवी था। इनके पुत्रका नाम नेमिकुमार रखा गया।

नेमिकुमार बचपनसे ही होनहार, धर्मात्मा और पराक्रमशाली थे। इन्हींके वंशज कृष्ण और बलभद्र थे। कृष्णने अपने भुजबल-द्वारा कंस, जरासंध जैसे दुर्दमनीय राजाओंका क्षणभरमें संहार कर दिया था। इनकी सोलह हजार रानियाँ थीं, जिनमें आठ रानियाँ पट्टमहिषीके पदपर प्रतिष्ठित थीं। एक समय नेमिकुमारके पराक्रमको सुनकर कृष्णके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई तथा इन्होंने उनकी शक्तिकी परीक्षाके लिए उनको अपनी सभामें आमन्त्रित किया। नेमिकुमार यथासमय कृष्णकी सभामें उपस्थित हुए और अपनी कनिष्ठ अँगुलीपर जंजीर डालकर कृष्ण आदिको झुला दिया. कृष्णको इनके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर महान् आश्चर्य हुआ। फलतः उन्होंने अपनी पट्टरानियोंको नेमिस्वामीके पास भेजा। रानियोंने चारों ओरसे नेमिकुमारको घेर लिया और अधिक अनुरोध करनेपर विवाह करनेकी स्वीकृति प्राप्त कर ली। कृष्णने नेमिकुमारका विवाह जूनागढ़के राजा उग्रसेनकी कन्या राजुलमतीसे निश्चित कराया। वहाँपर इन्होंने अपनी कूटनीतिसे पशुओंको पहलेसे कैद करवा दिया। जिससे अगवानीके पश्चात् टीकाको जाते समय पशुओंकी चीत्कार नेमिस्वामीको सुनाई दी।

पशुओंके इस करुणक्रन्दनको सुनकर नेमिकुमारको संसारकी सार-हीनताका अनुभव हुआ और उन्हें विषय कषायोंसे विरक्ति हो गयी। पशुओंको बन्दीगृहसे मुक्तकर नेमिकुमार वरके वस्त्राभूषणोंको उतार दिगम्बर दीक्षा ले गिरनार पर्वतपर तपस्या करने चले गये। एक क्षण पहले जो हर्ष और उल्लास दिखलायी पड़ रहा था, विवाहकी मधुर सहनाई बज रही थी; दूसरे ही क्षण वह हर्षका वातावरण शोकमें परिणत हो गया। सहनाई बन्द हो गयी। वरके बिना विवाह किये चले जानेसे अन्तःपुरमें रोना-धोना शुरू हो गया। महाराज उग्रसेन चिन्तामग्न हो गये। राजुलमतीको जब यह समाचार मिला तो वह मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। प्रयत्न करनेपर जब उसे होश आया तो वह विलाप करने लगी।

माता-पिताने राजुलमतीको अन्य वरके साथ विवाह करनेके लिए

बहुत जोर दिया, पर उसने कहा—"भारतीय रमणी एकबार जिसे आत्म-समर्पण कर देती है, फिर वही सदाके लिए उसका अपना हो जाता है। भले ही लोगोंके दिखावेके लिए विवाहकी रस्म पूरी न हुई हो। स्वामी तप करने चले गये, मैं भी उन्हींके मार्गका अनुसरण करूँगी।" इतना कहकर राजुल भी तपस्या करने गिरनार पर्वतपर चली गयी।

इस काव्यमें शान्तरस, वात्सल्यरस, करुणरस और विप्रलम्भ शृंगारका सुन्दर परिपाक हुआ है। सीमित मर्यादामें स्वस्थ वातावरणको उपस्थित करनेवाला विप्रलम्भशृङ्गार विशेषरूपसे राजुलके विलाप-वर्णनमें आया है। करुणरसके वर्णनमे शब्द स्वय करुणाका मूर्त्तिमान रूप लेकर प्रस्तुत हुए है। कविको इस रसके परिपाकमे अच्छी सफलता मिली है। मानवकी राग-भावनाओंका चित्र प्रस्तुत करनेमें कुशल चित्रकारका कार्य कविने कर दिखलाया है।

अलंकारोंमे अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा और अतिशयोक्तिका समावेश सर्वत्र है। छन्दोंमे दोहा, चौपाई, भुजगप्रयात, नाराच, सोरठा, अडिल्ल, गीता, छप्पय, त्रोटक, पद्दरी आदि छन्दोका प्रयोग किया गया है। गणदोष, पददोष, वाक्यदोष और यतिभग आदिका अभाव पाया जाता है। कोमलकान्तपदावलीयुक्तभाषा अपूर्व विकासको लिये हुए है।

इस काव्यका सन्देश यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको जीवनमे जनसेवाको अपनाना चाहिए। इसके लिए परिश्रमी, अध्यवसायी, कर्मठ, चारित्रवान्, आत्मशोधी, उदार और परोपकारी बनना आवश्यक है। निष्क्रिय और अकर्मण्य व्यक्ति संसारमें कुछ भी नहीं कर पाता है। हिंसासे हिंसाकी आग नहीं बुझाई जा सकती है, घृणासे घृणाका अन्त नहीं हो सकता है। प्रेम, क्षमा, अहिंसा, सहानुभूति और आत्मसमर्पण-द्वारा ही शान्तिकी स्थापना की जा सकती है।

कविने इसमे नेमिकुमारके उस जीवन-अंशको दिखलाया है, जिसका

अनुकरण कर समाज, देश और जातिकी भलाई की जा सकती है। परोपकार या सेवा करनेके पहले अपना आत्मशोधन करना आवश्यक है, जिससे सेवक अपने सेवाकार्यसे च्युत न हो सके।

चरित और कथा-काव्य

हिन्दी जैन साहित्यमे महाकाव्य और खण्डकाव्योके अतिरिक्त कुछ काव्यग्रन्थ ऐसे भी है, जिनमे काव्यत्व अल्प और चरित्र अधिक है। धर्मोपदेश देनेके लिए तीर्थकरों या अन्य पुरुषोंके चरित्र लिखे गये है। कुछ ऐसी कथाएँ भी पद्यबद्ध हैं, जो व्रतोंकी महिमा प्रकट करनेके लिए लिखी गई हैं। अपभ्रंश भाषामे १०-१५ चरित ग्रन्थ, २ बड़े-बड़े कथाकोश एवं ३०-३५ छोटी-छोटी कथाएँ आज भी उपलब्ध है। इसी प्रकार हिन्दीमे लगभग १०० चरित ग्रंथ और २०० कथाएँ उपलब्ध है। इन कथाओंमें चरित्र-चित्रणके साथ आनन्द और विषादका अपूर्व मिश्रण विद्यमान है। काव्यके मूल आलम्बन राग-द्वेषके विभिन्न रूपान्तर इन कथाओं और चरितकाव्योंमे पाये जाते है। जीवनमें पाये जानेवाले भावोंका चरित्र-काव्योंमे यथेष्ट समावेश हुआ है। चरितोंमें भिन्न-भिन्न पात्रोंकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंकी सूक्ष्मता दिखलायी गयी है। सास्कृतिक विशेषताएँ तो इन ग्रन्थोमे विशेषरूपसे उपलब्ध है।

ये चरितग्रंथ और कथाग्रथ रोचक होनेके साथ अहिंसा संस्कृतिके विशाल भवनकी झाँकियाँ सामने प्रस्तुत करते हैं। पाठक इनके अध्ययन और स्वाध्यायसे कुछ समयके लिए सासारिक विषमताओंको भूल जाता है, उसके सामने आदर्शोका एक ऐसा मनोरम चित्र खिंच जाता है, जिससे वह अपनी कुत्सित वृत्तियोंको परिष्कृत करनेके लिए सकल्प कर लेता है। यद्यपि अपनी मानवीय कमजोरीके कारण पाठक थोड़े समयके पश्चात् ही अपने सकल्पको भूल जाता है और पुनः विषय-कषायोंमे आसक्त हो पूर्ववत् आचरण करने लगता है, तो भी सत् सस्कारोंका निर्माण होता ही है।

इन ग्रन्थोंमें स्त्री-पुरुषोंकी नैसर्गिक विशेषताएँ भी दिखलाई पड़ती

हैं। घटनाओंकी कुशल संघटनकी ओर प्रत्येक लेखक बहुत सावधान रहा है, जिससे चरितोंमें रंजन-शक्तिकी भी कमी नहीं आने पायी है। जीवन और जगत्की लोकरजनकारिणी अभिव्यञ्जना करनेमें कथाकाव्यके निर्माताओंको पर्याप्त सफलता मिली है। इन्होंने भावोन्मेष और मानव-मन-रजिनी शक्तिकी अभिव्यक्ति इतनी चतुराईसे की है, जिससे रसोद्रेकमे तनिक भी कमी नहीं आने पायी है।

वस्तु और उद्देश्यकी दृष्टिसे इन ग्रन्थोंमे शान्तरस प्रधान है परन्तु इसके एक ओर करुण और दूसरी ओर वीररसकी धारा भी कल-कल निनाद करती हुई अबाध गतिसे बहती है। कहीं-कहीं विप्रलम्भ शृगार भी प्रबल वेगके साथ कगार तोड़ता हुआ-सा दृष्टिगोचर होता है, परन्तु शान्तरसके सामने उसे भी हारकर सिर झुका लेना पड़ता है। व्यग, विनोद और हास्यकी भी कमी इन ग्रन्थोंमे नहीं है।

सामन्तकालीन अन्तःपुरोंकी विलासिताका चित्रण भी कवियोने विषय-कषायोके त्यागके लिए ही किया है। आदिसे अन्त तक स्वस्थ बौद्धिक दृष्टिकोण (Intellectual vision) उपस्थित किया गया है। निस्संग सरोवरमे मज्जन करनेके लिए रमणियोंके विलास-वैभवका अतिरेक प्रस्तुत किया गया है। झूठा आदर्श जीवनके लिए मगलप्रद नही हो सकता, यह चरित-काव्योंसे स्पष्ट है। जैन कवियोंने भावोकी अतल गहराईमें उतरकर इन चरितोंमें भी अमूर्त भावनाओंको मूर्तरूप प्रदान करनेका प्रयास किया है। पाठकोको जिज्ञासाको उत्तरोत्तर तीव्र करनेके लिए कथाओको गतिशीलता दी गयी है। अतः ये कथाएँ व्रत या चरित्र पालनेके लिए भावोत्तेजक (thought Provocation) हैं।

काव्यकी दृष्टिसे इनमे कविता अलंकृत नहीं की गयी है। शब्दचयन और वाक्ययोजना भी चमत्कारपूर्ण ढगसे नही हुई है तथा महाकाव्य या खण्डकाव्यके विधानका अनुसरण भी इनमे नही हुआ है। इसी कमीके

कारण इनको पृथक् काव्यकोटिमें रखा जा रहा है। चरित और कथा-ग्रंथ इतने अधिक हैं, कि इनका अनुशीलनात्मक परिचय देना असंभव-सा है। अतएव इस प्रकरणमें केवल तीन-चार ग्रंथोंके अनुशीलन देकर ही इस कोटिके काव्योंसे परिचित करानेका प्रयास किया जायगा। इस चरितात्मक विशाल साहित्यका परिशीलन स्वय एक वृहद् ग्रंथ बन सकता है।

यह सुन्दर चरित-काव्य है। इसमें गजसिंह-गुणमालका प्राचीन आख्यान दिया गया है। प्रसंगवश कविने अपने समयके समाज, सम्प्रदाय और राज्यका भी चित्रण किया है। कवि कहता है कि

गजसिंह-गुणमाल चरित[1]

गोरखपुरी नगरीमें अरिमर्दन नामका राजा राज्य करता था, इसकी कनकावती नामकी रानीकी कोखसे गजसिंह नामके राजकुमारका जन्म हुआ था। गजसिंहके विवाहके अनंतर, राजा-रानी अपने पुत्रको राज्यभार सौंप स्वय चारित्र पालनेके लिए वनवासी हो गये। इसी गोरखपुरीमें एक सेठकी कन्या गुणमालाके रूप सौन्दर्यपर मुग्ध होकर गजसिंहने उसके साथ विवाह किया था। कारणवश गजसिंह गुणमालासे रूठ गया और गुणमाला अकेली रहने लगी। एक विद्याधरने उसे शीलधर्मसे च्युत करना चाहा, परन्तु गुणमाला अपने व्रतपर दृढ़ रही। गुणमालाको शीलवती जानकर विद्याधरने अनेक विद्याएँ उसे भेंट कीं।

अब गजसिंह उससे सशंक रहने लगा। वह किसी पुरुषकी तलाशमें रहा और यन्त्र-मन्त्रके चक्करमें बहुत दिनों तक पड़ा रहा। उसने देवी, भैरव और यक्षको प्रसन्न करनेके लिए अनेक यत्न किये। उसकी इस प्रवृत्तिसे एक तान्त्रिक अवधूतने लाभ उठाया और उसने अपने आधीन कर लिया। योगीने एक योगिनी-द्वारा गुणमालाकी परीक्षा करायी। गुणमाला शीलशिरोमणि थी, उसके आगे किसीकी कुछ भी न चली।

---

१. यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। प्रति प्राप्तिस्थान—जैनसिद्धान्तभवन, आरा।

कुछ समय बाद गजसिंह और गुणमालामें पुनः सन्धि हो गयी और दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन एक विद्याधरी गजसिंहको और विद्याधरीका पति गुणमालाको उठाकर ले गया। दोनोने दोनोंको वासनानुरक्त बनानेके असफल प्रयत्न किये। वे पति-पत्नी दोनों ही अपने शीलव्रतमे दृढ़ रहे। उनकी दृढताके कारण विद्याधर-दम्पत्तिकी वासना काफूर हो गयी, और वे संकट-मुक्त हो पुनः मिले।

कुछ समय पश्चात् दम्पतिने श्रीसम्मेद शिखरकी यात्रा की। कालान्तरमें इन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्रको घोड़ेपर चढ़कर चौगान खेलनेका बहुत शौक था। एक दिन रत्नशेखर मुनिसे इस राजकुमारने भी स्वदारसन्तोष और परिग्रहपरिमाण व्रत ग्रहण किये। विदर्भ नगरकी राजकुमारीसे इसका विवाह हुआ।. अन्तमे गजसिंह और गुणमालाने धर्मघोष मुनिसे जिनदीक्षा लेकर तप किया।

इस चरितमे मानव-जीवनके राग-विरागोंका सुन्दर चित्रण हुआ है। इसमे अनुरक्त और विरक्त युवक-युवतियोंकी मनोवृत्तिका बडा ही सरस और हृदयग्राह्य चित्रण किया गया है। वैभवकी अपारराशिके बीच रहकर भी व्यक्ति किस प्रकार प्रलोभनोंको ठुकराकर नैतिकताका परिचय दे सकता है; यह गुणमालाके चरितसे स्पष्ट है। नारीका सारा अवसाद पातिव्रतसे ही दूर हो सकता है, स्वर-लहरीके प्रकम्पनमे नारीकी आत्म-ज्योति जाग्रत होती है। मिथ्याविश्वास और आडम्बर जीवनको कितना विकृत करते है, यह गजसिंहकी मन्त्र-तन्त्रको साधनासे स्पष्ट है। दृढ़ विश्वासकी विद्युत् बडे-बड़े सकटोके पर्वतोंको चूर-चूर करनेकी क्षमता रखती है।

नारी जीवनमें लज्जाका आवरण मंगल-सूत्र है, इसके फट जानेसे वेदनाका ज्वार दबाये नही दबता; जीवन नारकीय बन जाता है।

कविने वन, नदी, सन्ध्या और उषाका भी सरस चित्रण किया है।

उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, रूपक, अनुप्रास और उदाहरण अलंकारोंकी भरमार है। भाषा और उक्तिको अलंकृत बनानेकी कविने पूरी चेष्टा की है। शृंगार, करुण, वीर, बीभत्स और शान्तरसका परिपाक यथास्थान अच्छा हुआ है। अनेक स्थानोंमें काव्य-चमत्कार भी विद्यमान है।

श्रीपालचरित

इस चरितके रचयिता परिमल कवि है। इसमें श्रीपाल और मैना-सुन्दरीकी प्रसिद्ध कथा लिखी गयी है। देश और पुरोंका वर्णन विशद रूपमें किया गया है। जीवन-कथाको सीधे और सरल ढंगसे व्यक्त कर कविने घटनाओंकी क्रमबद्धताका पूरा निर्वाह किया है। इसमें धर्म और अधर्मका संघर्ष, पाप और पुण्यका द्वन्द्व, हिंसा और अहिंसाके घात-प्रतिघात मार्मिक ढंगसे व्यक्त किये गये हैं। अभिमान व्यक्तिको कितना नीचे गिरा देता है, अविवेकसे बुद्धिका सर्वाभाव किस प्रकार हो जाता है, यह मैनासुन्दरीके पिताकी हठग्राहितासे स्पष्ट है।

दोहे और चौपाई छन्दमें ही यह चरित ग्रन्थ लिखा गया है। प्रास-योजनामें कविको अच्छी सफलता मिली है। यतिभंग या छन्दोभंग कहीं भी नहीं मिलेगा। गेय छन्दका प्रयोग करनेमें भावनाओंको गतिशील बनानेका आयास प्रशस्य है। भाषाकी दृष्टिसे इसमें ब्रज, अवधी, बुन्देल-खण्डी और मारवाडीका पूरा मिश्रण है। कहींपर दीनी, लीनी; कहीं दियो, लियो, अजहूँ और कहीं कहाणे, सुवासणि, सीराण और भणूं आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है। तत्सम शब्द बहुत कम आये है। बाह्मन, कोठी, परवीण आदि तद्भव शब्दोंका प्रयोग बहुलतासे हुआ है।

वर्णनमें कवि यथास्थान उपदेश देनेसे नहीं चूका है। धवल सेठको धिक्कारते हुए उपदेशोंकी झड़ी लगा दी है।

इस चरितके रचयिता कवि हीरालाल हैं। इसमें काव्य-चमत्कार विद्यमान है। ८वें तीर्थकर भगवान् चन्द्रप्रभकी जीवन-गाथा इसमें वर्णित की गयी है। इस चरितमें १७ सन्धियाँ हैं। आरम्भमे श्रोता, वक्ता, नमस्कार और त्रिलोक वर्णनको विस्तार देनेके कारण कथाका आरम्भ बहुत दूर जाकर किया गया है। जो व्यक्ति आरम्भसे ही कथा-जिज्ञासु है, वह इस वर्णनके पढ़नेसे ऊब-सा जाता है। आरम्भमे चार सन्धियोंमें ऋषभदेवके चरितका ही वर्णन किया गया है। पॉचवीं सन्धिसे दसवी सन्धितक पद्मनाभके भवान्तरोंका विशद वर्णन किया गया है। इस प्रकार दस सन्धियों तक चरित-नायकके जीवनके सम्बन्धमे कुछ भी प्राप्त नही हो पाता है। ग्यारहवी सन्धिमें भगवान् चन्द्रप्रभका गर्भावतार दिखलाया गया है। भव-भवान्तरोंकी प्रासगिक कथाओंको कविने इतना रोचक बनाया है, जिससे जिज्ञासु पाठकोका मन ऊबता नही है। ये कथाएँ आधिकारिक कथासे जुटी हुई हैं, समस्त झरने एक ही साथ मन्दाकिनीका रूप धर ग्यारहवी सन्धिमे उपस्थित हो जाते है।

चन्द्रप्रभचरित

भगवान् चन्द्रप्रभ काशीके नृपति महासेनकी पट्टरानी लक्ष्मणाके गर्भसे उत्पन्न हुए। नगरीके सौन्दर्य और वनविभूतिके चित्रणमें कविने अपना पूरा उपयोग लगाया है। वनवर्णनमे कितने ही प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध मेवे और फलोके नाम गिनाये है। उदाहरणार्थ एक पद्य उद्धृत किया जाता है—

> **कमरख करपट कैर कैथ कटहर किरमारा।**
> **केरा कौंच कसेर कंज कंकोल कल्हारा॥**
> **खिरनी खैर खजूर खिरहरी खारख खेजर।**
> **गौंदी गौरख पान गुंज गूलर गुञ्ज गोझर॥**

बारहवी सन्धिमें भगवान्‌की बाललीलाओंका बड़ा ही सरस चित्रण किया है। उनकी वेषभूषा, अनुपम शौर्य-पराक्रम, ज्ञान एवं अन्य कर्मोंका

चित्रण किया गया है। तेरहवीं सन्धिमें संसारके स्वार्थ, राग, द्वेष और क्षणभंगुर रूपको देख चन्द्रप्रभकी विरक्तिका वर्णन किया है। वे ससारकी वस्तुस्थितिका नाना प्रकारसे विचार करते हैं। शरीर, धन-वैभव जो एक क्षण पहले आकर्षक मालूम पड़ते थे, वे भी विरक्त हो जानेपर काटनेको दौड़ते हैं। कविने इस स्थलपर मानवीय भावनाओसे आरोपित प्रकृतिके बीभत्स रूपका सुन्दर विश्लेषण किया है।

चौदहवीं सन्धिमें केवलज्ञान प्राप्तकर भगवान्ने ससारसे तप्त और मार्गभ्रष्ट प्राणियोंको कल्याणका मार्ग बतलाया है। इस प्रकरणमें आत्मा-ही परमात्मा है, यही कर्त्ता, भोक्ता और अपने उत्थान-पतनका उत्तरदायी है, आदि बतलाया गया है। पन्द्रहवीं सन्धिमें ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और सोलहवी सन्धिमें चन्द्रप्रभ स्वामीका मोक्षगमन तथा सत्रहवींमें कविने आत्मपरिचय लिखा है।

वर्णनशैलीमे प्रवाह है, भाषा सानुप्रास है। कवितामे ताल, स्वर और अनेक राग-रागनियोका भी समावेश किया गया है। अनुप्रास, यमक, विरोधाभास, श्लेष, उदाहरण, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकारकी यथास्थान योजना की गयी है। निम्न पद्य दर्शनीय है—

कमल बिना जल, जल बिन सरवर, सरवर बिन पुर, पुर बिन राय।
राय सचिव बिन, सचिव बिना बुध, बुध विवेक बिन शोभ न पाय॥

इस प्रकार भाव, भाषा और शैली आदिकी दृष्टिसे यह चरित सुन्दर काव्य है।

वर्द्धमानचरित

इस चरितके रचयिता कवि नवलशाह हैं। इसमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका जीवनचरित विस्तार-पूर्वक वर्णित है। इसमें सोलह अधिकार है। आरम्भमें वक्ता, श्रोता आदिका लक्षण बतलाया है। वर्द्धमान स्वामीके पूर्वभवोंका वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पुष्कलावती देशमे पुण्डरीकिणी नगरीके वनमें पुरुरवा भील रहता था। इसने श्रावकके व्रत ग्रहण किये,

व्रतोंके प्रभावसे वह मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर भरतचक्रवर्तीके मरीचिकुमार नामका पुत्र हुआ। भगवान् आदिनाथके साथ मरीचिकुमारने भी जिनदीक्षा ग्रहण की। दीक्षासे भ्रष्ट होकर इन्हें अनेक योनियोंमें भ्रमण करना पड़ा। अनेक जन्म धारण करनेके उपरान्त यही मरीचिकुमारका जीव कुण्डलपुर नगरमें राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके वर्द्धमानकुमार नामका पुत्र हुआ। कुमार वर्द्धमानकी शूरवीरता, ज्ञान एव दिव्य तेजसे प्रभावित होकर ही लोगोंने इनके नाम महावीर, सन्मति एव वीर रखे थे। यह आजन्म अविवाहित रहे। ३० वर्षकी अवस्थामे संसारसे विरक्त हो तप करने चले गये और आत्मशोधन कर अशान्त विश्वको शान्तिका उपदेश दिया। अब महावीर भगवान् महावीर बन गये, इनका उपदेशामृत पान करनेके लिए मनुष्य ही नही; पशु, पक्षी, देव, दानव सभी आते थे। भगवान् महावीरने समस्त आर्यदेशोंमे विहारकर जनताको कर्तव्यमार्गका उपदेश दिया। अन्तमें मोक्ष लाभ किया।

इस चरित-काव्यमे सभी प्रसिद्ध छन्दोका प्रयोग किया गया है। कविता साधारणतः अच्छी है। सिद्धान्त और आचारकी बातोंका निरूपण बड़े विस्तारके साथ किया गया है। नख-शिख वर्णनमें भी कवि किसीसे पीछे नही है। महारानी प्रियकारिणीके रूप-सौन्दर्यका चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

अम्बुजसौं जुग पाय बनै, नख देख नखत्त भयौ भय भारी।
नूपुरकी झनकार सुनै, दृग ओर भयौ दशहू दिश भारी।
कंदल थंभ बनै जुग जंघ, सुचाल चलै गजकी पिय प्यारी।
क्षीन बनौ कटि केहरि सौ, तन दामिनी होय रही लज सारी॥
नाभि निवौरियसी निकसी पदद्दावत पेट सुकंचन धारी।
काम कपिच्छ कियौ पढ अन्तर, शील सुधीर धरै अविकारी॥

भूषन बारह माँतिनके अँत, कण्ठमें ज्योति लसै अधिकारी।
देखत सूरज चन्द्र छिपै, मुख दाडिम दंत महाछविकारी॥

भाषा व्रज, बुन्देली और खडी बोलीका मिश्रित रूप है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति अलकारोका प्रयोग अनेक स्थलो पर किया गया है।

१७ वी शतीमे रायमल्लके प्रद्युम्नचरित और सुदर्शन चरित, १९ वीं शतीमे ज्ञानविजयका मलयचरित, नथमल विलालाके नागकुमार-चरित और जीवन्धर चरित; सेवाराम के हनुमच्चरित, शान्तिनाथ पुराण और भविष्यदत्त चरित एव भारमल्लके चारुदत्तचरित और सप्तव्यसनचरित चरित-काव्य हैं। कवियोने इन काव्योमे मानव जीवनकी सुन्दर अभिव्यजना की है।

हिन्दीके कथाकाव्योंमे पद्यात्मक दो कथासंग्रह बहुत प्रसिद्ध हैं— आराधनाकथाकोश और पुण्यास्रवकथाकोश। भारमल्लकी कई कथाएँ जो कि प्रबन्धकाव्यके रूपमे लिखी गयी है, बड़ी ही रोचक और हृदय-स्पर्शी है। शीलकथा, दर्शनकथा, एव निशिभोजनत्याग कथा तो अत्यन्त लोकप्रिय है। आराधनाकथाकोशमे १२९ कथाओंका सग्रह और पुण्यास्रवकथाकोशमे ५६ कथाओका सग्रह है।

मानवके विकासके साथ उसकी इच्छाशक्ति और जिज्ञासावृत्ति भी विकसित होती है। यही वृत्ति मानवको कथा सुनने और कहनेके लिए बाध्य करती है। कुशल कलाकार कथाओंको भी काव्यका रूप दे देते है, वे इन्हे इतना रोचक और सरस बनाते है जिससे ज्ञानकी मरुभूमिको पार करते समय पाठक ऊब न जाय और वह बीच-बीचमे वृक्षोंकी छाया-से आच्छादित सरोवरोके निकट बैठकर शान्ति लाभ कर सके।

पुण्यास्रव कथाकोशकी कथाएँ बड़ी ही रोचक, हृदयको छूनेवाली और मर्म-वेदनाको प्रकट करनेवाली हैं। लेखकने इनसे पाप-पुण्यके फल-का भी विवेचन किया है। आजकलकी कहानीके समान जीवनके किसी

एक घटनाको लेकर ही ये कथाएँ नही लिखी गयी हैं, बल्कि इनमें सर्वाङ्गीण जीवनका चित्राकन सफलतापूर्वक किया गया है। इस कथा-सग्रहमे चारुदत्त, राजा श्रेणिक, सेठ सुदर्शन, प्रभावती, वज्रदन्त, पूजाका फल, नवकारमन्त्रका फल आदि कथाएँ अधिक मर्मस्पर्शी हैं।

सेठ सुदर्शनकी कथाको ही लीजिये। निश्शकित एव श्रद्धामय भावनासे एक मन्त्रके दृढ श्रद्धानके फलसे एक ग्वाला मरकर श्रेष्ठिपुत्र सुन्दर कुमार होता है। उसका रूप-लावण्य इतना आकर्षक है कि एक रानी भी उसके चरणोमे गिर पडती है और रूपकी भिक्षा माँगती है। इस स्थानपर मानवकी रागात्मक भावनाओंका हृदय-ग्राह्य सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इस कथामे सत्सगति और कुसंगतिके फलकी भी अभिव्यजना की गयी है। तीन दिनकी मुनिसगतिसे एक गणिका अपने कृत्योपर पश्चात्ताप करती हुई अन्यायोपार्जित धनपर लात मारकर आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लेती है और अन्तमे उच्च पद पाती है। इस कथामे शुभाशुभ कर्त्तव्यके फलाफलका सरस विवेचन किया गया है। अन्य कथाएँ भी आनन्दानुभूति उत्पन्न करनेवाली है। चारुदत्तकी कथा तो इतनी मार्मिक है कि कोई भी प्राणी इसे पढ़कर दो आँसू गिराये बिना नही रह सकता। इसी प्रकार अवशेष कथाएँ भी रस सचार करती हैं।

इस सग्रहकी वर्णनशैली मनोरम और अलकृत है। काव्यके चमत्कारके साथ सौन्दर्यानुभूति इसमे चार चॉद लगाये हुए है।

जोधराज गोदीका विरचित सम्यक्त्वकौमुदीकी कथाएँ भी बड़ी रोचक है। दोहा, सवैया, सोरठा, छप्पय, चौपई आदि छन्दोमे यह कथाग्रन्थ लिखा गया है। जीवनके विभिन्न घात-प्रतिघातोका सुन्दर विश्लेषण इस काव्य-ग्रन्थमे किया है। घटना निर्माण और परिस्थिति-योजनाका सुन्दर समावेश किया गया है। कविता अच्छी है। उदाहरणके लिए एक छप्पय उद्धृत किया जाता है—

तबहिं पावड़ी देखि चोर भूपति निज आन्यौ।
देखि मुद्रिका चोर तबै मन्त्री पहिचान्यौ॥
सूत जनेऊ देखि चोर प्रोहित है भारी।
पंचनि लखि विरतान्त यहै मनमें जु विचारी॥
भूपति यह मन्त्री सहित प्रोहित युत काढी दयौ।
इह भाँति न्याव करि भविय विधि धर्म थापि जग जस लयौ॥

इस प्रकार कथा-काव्य मनोरञ्जनके साथ आदर्श प्रस्तुत करते है, जिससे कोई भी व्यक्ति अपने जीवनका उत्कर्ष कर सकता है।

द्वितीयाध्याय

हिन्दी-जैन-गीतिकाव्य और उसकी इतर गीतिकाव्यसे तुलना

कविता जीवनका अन्तर्दर्शन और रागात्मिका अभिव्यक्ति है। सुख-दुःखानुभूति मानवमे ही नही, पशु-पक्षियोमे भी पायी जाती है। वाणी या अन्य माध्यमो द्वारा मनुष्यने अपनी अनुभूतियोंकी अभिव्यक्तिको स्थायित्व प्रदान किया है। गीतिकाव्योमे भावनाकी अनुभूति अधिक गहरी होती है। मिलन-विरह, हर्ष-शोक और आनन्द-विषादका चित्र सीमित रूपमे गेयता-द्वारा गीतिकाव्यमे उपस्थित किया जाता है। इसमें छन्द और रागविशेष-द्वारा आत्मनिष्ठता, आत्मानुभूति एव भाव-प्रकाशन किया है। हिन्दी-जैन-साहित्यमे गीतिकाव्यका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपभ्रश भाषामे भी जैन कवियोने अनेक सरस गीत लिखे हैं, जिनमें प्रेम, विरह, विवाह, युद्ध और अध्यात्म-भावनाकी अभिव्यञ्जना सुन्दर हुई है। सगीत और लयके सहारे ये गीत गानेके लिए रचे गये हैं।

परवर्ती हिन्दी-जैन-साहित्यमे लावनी, भजन, पद आदिके रूपमे विपुल गीतात्मक साहित्य पाया जाता है। विषयकी दृष्टिसे अध्यात्म, नीति, आचार, वैराग्य, भक्ति, स्वकर्त्तव्य-निरूपण, आत्मतत्त्वकी प्रेयता और शृङ्गार भेदोंमे विभक्त किया जा सकता है। प्रायः सभी पदोंमें आत्मालोचनके साथ मन, शरीर और इन्द्रियोंकी स्वाभाविक प्रवृत्तिका निरूपण कर मानवको सावधान किया है। गीतिकाव्यके निम्न सिद्धान्तो के आधारपर जैनपदोंका विश्लेषण किया जायगा।

१—संगीतात्मकता।

२—किसी एक भावना या किसी रागात्मिका अनुभूतिकी कलापूर्ण समन्वित अभिव्यक्ति।

३—आत्मदर्शन और आत्मनिष्ठा।

४—वैयक्तिक अनुभूतिकी गहराई।

जैन पदोंमें संगीतात्मकता

गीत या पदोंमें गेयताका रहना आवश्यक है। इसका आधार शब्द, अर्थ, चेतना और रसात्मकता है। शब्द जहाँ पाठकको अर्थकी भावभूमिपर ले जाते हैं, वहाँ नादके द्वारा श्रव्य मूर्त विधान भी करते हैं। शब्दोंका महत्त्व उनके द्वारा प्रस्तुत मानसिक चित्र और ज्ञापित वस्तुके सामञ्जस्यमें है। जिस वस्तुको चर्मचक्षुओंसे नहीं देखा है, उसका भी कल्पना-द्वारा मानस-चक्षुओंके सामने ऐसा चित्र प्रसूत होता है, जो अपने सौन्दर्यके स्रोतमें मानवके अन्तस्को डुबा देता है। जैनपदोंमें स्वाभाविक गीत-धाराका अक्षुण्ण प्रवाह है, उनमें अतलस्पर्शिनी क्षमता है। बनारसीदास, दौलतराम, बुधजन और भागचन्दके पदोंमें मुक्त संगीतकी धारा स्वच्छन्द और निर्बाध रूपसे प्रवाहित है। यों तो श्रेष्ठ पदोंका सौन्दर्य संगीतमें नहीं, भावात्मकतामें होता है। अंकुश रूपमें रहनेवाला संगीत सौन्दर्यकी विकृतिमें साधन बनता है। संगीतका अनुबन्ध रहनेपर भी जैनपदोंमें जो मार्मिकता और स्नेहपिच्छिल रसधारा है, उसका समाहित प्रभाव मानवीय वृत्तिपर पड़े बिना नहीं रह सकता। प्रभातराग, रामकली, ललित, विलावल, अलहिया, आसावरी, टोरी सारग, लहरि सारग, पूर्वी एकताल, कनडी, ईमन, झझोटी, खमाच, केदार, सोरठा, विहाग, मालकोस, परज, कलिंगडो, भैरवी, धनासरी, मल्हार आदि राग-रागनियाँ इन पदोंमें व्यक्त हैं। कवि दौलतरामके निम्न पदमें नाद सौन्दर्यके साथ स्वर और तालका समन्वय संगीतके मूर्त्तरूपको भी मुखरित करता है—

चलि सखि देखन नाभिरायघर नाचत हरिनटवा ॥टेक॥
अद्भुत ताल मान शुभलय युत चवत रागषटवा॥चलि सखि० ॥१॥

मनिमय नूपुरादि भूषनदुति, यत सुरंग पटवा।
हरिकर नखन नखन पै सुरतिय, पग फेरत कटवा ॥चलि सखि०॥२॥
किन्नर कर धर वीन बजावत, लावत लय झटवा।
दौलत ताहि लखैं चख तृपते, सूझत शिवबटवा ॥चलि सखि०॥३॥

कविवर बुधजनने भी विलावल रागको धीमी तालपर कितने सुन्दर ढगसे गाया है। इस पदमें भाषाकी तड़क-भड़क और चमक दमक ही नहीं, किन्तु छन्द और लयका सामजस्य मानव अन्तर्रागको उद्‌बुद्ध करनेमे समर्थ है। ससारके बाह्य रूपपर मुग्ध व्यक्तिको सजग करनेके लिए तथा वासनामें फँसे व्यक्तिको सावधान होनेके लिए कहा है कि इस भवको प्राप्तकर कौडीके मोल न बहाओ। कवि कहता है–

नरभव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो ॥टेक॥
नाहक ममत ठानि पुद्गलसौं, करम-जाल क्यों परना हो ॥१॥टेक॥
यह तो जड़ तू ज्ञान अरूपी, तिल-तुष ज्यों गुरु बरना हो।
राग-दोस तजि भजि समताकौं, करम साथके हरना हो।
नरभव० ॥टेक॥
यो भव पाय विसय-सुख सेना, गज चढ़ि ईंधन ढोना हो।
'बुधजन' समुझि सेय जिनवर-पद, ज्यों भव-सागर तरना हो॥
नरभव०॥

ससारकी स्वार्थपरतासे भयभीत होकर कविवर भागचन्दने राग विलावलमे संगीतकी तान छोड़ते हुए अन्तर्तमकी अभिलाषा अभिव्यक्त की है। कवि कहता है कि सभी पुरजन-परिजन स्वार्थके साथी हैं। अन्त समय कोई काम नही आता; जिस प्रकार हिरण मृगमरीचिकाके प्रलोभनसे आकृष्ट होकर नाना कष्ट सहन करता है उसी प्रकार यह जीव भी संसार-रूपी वनमे निरन्तर कषाय और वासनाओंसे अभिभूत होकर भटकता रहता है। शरीर-भोगोंसे जबतक विरक्ति नही होती; शान्ति नही मिलती–

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥टेक॥
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोषै, तिनको होय सदैव गुलाम।
सो तो हैं स्वारथके साथी, अन्तकाल नहिं आवत काम॥
सुमर सदा० ॥१॥
जिमि मरीचिकामें मृग भटकै, परत सो जब ग्रीषम अतिघाम।
तैसे तू भव माही भटकै, धरत न इक छिन हू विसराम॥
सुमर सदा० ॥२॥
करत न ग्लानि अबै भोगनिमें, धरत न वीतराग परिनाम।
फिरि किमि नरक माहिं दुख सहसी, जहँ सुखलेश न आठौं जाम॥
सुमर० ॥३॥
तातैं आकुलता अब तजिकैं, थिर ह्वै बैठो अपने धाम।
'भागचन्द' बसि ज्ञान-नगरमें, तजि रागादिक ठग सब ग्राम॥
सुमर सदा० ॥टेक॥

'सुमर सदा मन आतम राम' मे कविने अनेक अशोमे रेखाचित्रकी भाँति कतिपय शब्दरेखाओं-द्वारा ही भावनाकी अभिव्यञ्जना की है। सगीतके मौन-सौन्दर्यके साथ कल-कल ध्वनि करती हुई भावधारा मानव-मनको स्वच्छ करनेमे कम सहायक नहीं है।

भैया भगवतीदासके पदोंमे भी सगीतका निखरा स्वरूप मिलता है। राग-रागनियोंका समन्वय भी प्रत्येक पदमे विद्यमान है। शरीरको परदेशी-का रूपक देकर वास्तविकताका प्रदर्शन किस माधुर्यके साथ किया गया है, यह देखते ही बनता है। कविने कुशल कलाकारकी तरह मीनाकारी और पच्चीकारी की है—

कहा परदेशीको पतियारो।
मनमाने तब चलै पंथको, साँझ गिनै न सकारो।
सबै कुटुम्ब छाँड़ इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो॥

दूर दिशावर चलत आपही, कोउ न रोकन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अन्त होयगो न्यारो ॥
धन सौं राचि धरम सौं भूलत, झूलत मोह मंझारो।
इहि विधि काल अनन्त गमायो, पायो नहिं भव पारो ॥
साँचे सुखसौं विमुख होत हो, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहु रे भइया, आप ही आप सँभारो ॥

जैन पदोंमे गीतिकाव्यकी दूसरी विशेषता आत्मनिष्ठा भी पायी जाती है। अन्तर्दर्शन-द्वारा आत्मनिष्ठाकी भावना वैयक्तिक सुख, दुःख, हर्ष, शोक, राग, द्वेष एवं हास्य अश्रुके गीत गाती है। इन पदोंमें आत्म-भावनाकी अभिव्यञ्जना इतनी प्रबल है, जिससे इनका आधार अधिकरण-निष्ठताको माना जा सकता है। कल्पनाशील भावुक कवि केवल बाह्य वस्तुओंसे ही प्रभावित नहीं होता, केवल सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कारण ही उसे क्षुब्ध नहीं करते, बल्कि वह आन्तरिक कारणोंसे भी क्षुब्ध और प्रताड़ित होता है। जैन पद रचनेवाले सभी कवियोंने अपने अन्तर्तमसे प्रेरणा प्राप्त की, वे बाह्य संसारसे अनासक्त हैं। चर्म-चक्षुओंके स्थानपर उनके मानस-चक्षु उद्बुद्ध हैं। उन्होंने अपनी भावनाओंको विश्वजनीन बनानेके लिए वैयक्तिक भाव और चेतनाको आदर्श एवं भावात्मक रूप प्रदान किया है। आत्म-चेतनाकी जाग्रति इन पदोंका प्राण और लयपूर्ण भाषामें आत्मानुभूतिकी अभिव्यक्ति इनका उद्देश्य है। कवि-वर बुधजनने निम्नपदमे कितनी गहरी आत्मानुभूतिका परिचय दिया है, इनकी अन्तर्ज्वाला धू-धूकर जल रही है। कविके आकुल प्राण शान्ति-प्राप्तिके लिए छटपटा रहे हैं, अतः कवि आत्म-विभोर हो कहता है—

जैन-पदोंमें आत्मनिष्ठा और वैयक्तिता

हो मना जी, थारी बानि, बुरी छै दुखदाई ॥टेक॥
निज कारिजमें नेकु न लागत, परसौं प्रीति लगाई ॥ हो० ॥१॥

या सुभावसौं अति दुख पायो, सो अब त्यागो भाई ॥ हो० ॥२॥
'बुधजन' औसर भाग न पायो, सेवो श्री जिनराई ॥ हो० ॥३॥

जहाँ हम कवि भागचन्दके पदोंमे अन्तर्दहनके साथ गाम्भीर्य पाते है वहाँ कवि बनारसीदासके पदोंके प्रबल वेग, अन्तस्‌के शोधनकी क्षमता और स्वस्थ व्यजना पाते है। आध्यात्मिक शान्ति-प्राप्तिके लिए कवि दौलतरामने कोमल-कान्त-पदावलीमे अपनी कमनीय अनुभूतियोकी मार्मिक अभिव्यञ्जना की है। कवि अन्तस्‌मे गुनगुनाता हुआ गा उठता है–

पारस जिन चरण निरख, हरख यों लहायो,
चितवत चन्दा चकोर ज्यों प्रमोद पायो ॥
ज्यों सुन घनघोर शोर, मोर हर्षको न ओर,
रंक निधि समाजराज पाय मुदित थायो ॥ पारस० ॥
ज्यों जन चिरक्षुधित होय, भोजन लखि सुखित होय,
भेषज गदहरण पाय, सरुज सुहरखायो ॥ पारस० ॥
वासर भयो धन्य आज, दुरित दूर परे भाज,
शान्तदशा देख महा, मोहतम पलायो ॥ पारस जिन० ॥
जाके गुन जानत जिम, भानन-भवकानन इम,
जान 'दौल' शरन आय, शिव सुख ललचायो ॥ पारस जिन० ॥

इन पक्तियोंमे आत्मनिवेदनकी भावना तीव्र और गम्भीर है। प्रभु-भक्तिका जलप्रवाह सारी चेतनाओको धो देता है, ज्ञानका बाँध टूट जाता है और प्रबल वेगमे जीवन प्रवाहित होने लगता है तथा अपने आराध्यके निकट पहुँचकर शान्तिलाभ करता है। कविकी यह अनुभूति ऐन्द्रियक नहीं, इन्द्रियातीत है।

गीतिकाव्यका तीसरा तत्त्व भाव और अभिव्यञ्जनाके समन्वयमे अनुभूतिकी अन्विति है। इसके बिना न तो संवेदनशीलता रहती है और न उससे उत्तेजना प्राप्त होती है। जीवनमे ऐसे कम ही क्षण आते है, जब

मानवकी वृत्ति अन्तर्मुखी होती है। मानसिक प्रतिक्रियाएँ सामाजिक आधार रखकर गतिशीलता ग्रहण करती हैं। सहसा दीप्त हो उठनेवाले क्षणोंमे सवेदनशीलता गतिमान नहीं हो सकती। जिस प्रकार रेखाचित्रमे एक रेखाके अभावमे चित्र अधूरा रह जाता है और एक रेखा अधिक होनेसे चित्र विकृत हो जाता है उसी प्रकार अनुभूतिकी अभिव्यजनामें भी हीनाधिकता होनेपर विकृति आती है, अतः अभिव्यंजनामे अत्यन्त सावधानी रखनी पड़ती है। जैनपदोंमें अनुभूतिके सकेतोंका सन्तुलन है, अतः रूपहीनता अथवा विरूपताके चित्रोंका प्रायः अभाव है। कविवर बनारसीदासके निम्न पदमे अनुभूति और सकेतोंका सन्तुलन दर्शनीय है–

समन्वित अभिव्यक्ति

चेतन तू तिहुँकाल अकेला।
नदी नाव संजोग मिलै ज्यों, त्यों कुटुम्बका मेला॥ चेतन०॥
यह संसार अपार रूप सब, ज्यों पट पेखन खेला।
सुखसम्पत्ति शरीर जल बुदबुद, विनशत नाहीं बेला॥ चेतन०॥१॥
मोहमगन आतमगुन भूलत, परी तोहि गलजेला॥
मैं मैं करत चहूँ गति डोलत, बोलत जैसे छेला॥चेतन०॥२॥
कहत 'बनारसि' मिथ्यामत तजि, होय सुगुरुका चेला।
तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला॥चेतन०॥३॥

कविवर भूधरदासजीने ससारकी असारता दिखाते हुए अपनी आन्तरिक भावनाओंको बड़े ही सुन्दर ढगसे अभिव्यक्त किया है। कवि कहता है–

जगमें जीवन थोरा, रे अज्ञानी जागि॥टेक॥
जनम ताड़ तरु तैं पड़ै, फल संसारी जीव।
मौत मही में आयहैं, और न ठौर सदीव॥जगमें०॥१॥
गिर-सिर दिवला जोइया, चहुँ दिशि बाजै पौन।
बलत अचंभा मानिया, बुझत अचम्भा कौन॥जगमें०॥२॥

जो छिन जाय सरे आयूमें, निश दिन ढूँके काल ।
बाँधि सकै तो है भला, पानी पहिली पाल ॥जगमें०॥३॥
मनुष देह दुर्लभ्य है, मति चूकै यह दाव ।
'भूधर' राजुल कंत की, शरण सिताबी आव ॥जगमें०॥४॥

कवि बनारसीदासके पद

अध्यात्म प्रेमी कवि बनारसीदासने आत्मानुभूतिके निर्झरमें प्रवेशकर काव्यकी सुरीली तान भरी है। इनके सरस और हृदयग्राही पद आत्मकल्याणमे बड़े ही सहायक हैं।

मानव अनुभूति, वासना और विचारोंसे जीवित है। जीवनकी विस्तृत भूमिकाके रूपमें अनुभूतिका आलोक है और अनुभूतियोंमे श्रेष्ठ है आत्मानुभूति। इसमें सारा ध्यान खिंचकर एक बिन्दुपर आ टिकता है, जहाँ दुःख नहीं, छिपाव नहीं, सकोच नहीं। व्यक्ति बाह्यसे विमुख हो अन्तस्‌की ओर जबतक नहीं मुड़ता है, मन इधर-उधर भटकता रहता है। मन एक बार जब आत्मोन्मुख हो जाता है तो फिर भागनेका उसे अवकाश नहीं रहता। कविवरने मनको इसी सन्तोषकी ओर ले जानेका संकेत किया है। मनके तुष्ट हो जानेपर अन्तस्तलका रस उमड़ पडता है, मनुष्य अपनी सुधबुध खो आत्माका साक्षात्कार करता है। आस्था और विश्वाससे परिपूर्ण मनकी अविचलित अवस्था कर्म-ग्रन्थिके मोचनमें बडी सहायक होती है।

तृष्णा इतनी प्रबल और उद्दाम है कि मनुष्यका इस ओर झुकाव होते ही वह इसकी प्रबल लपेटोंसे आक्रान्त हो जाता है और अपना सर्वस्व खो बैठता है। इसके विपरीत जीवनमे वही व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है जो आशाके वशवर्ती न होकर सन्तोषके मार्गका पथिक है। लोभका बीज परिग्रह है, क्योंकि परिग्रहके बढ़नेसे मोह बढता है और मोहके बढ़नेसे तृष्णा बढती है, तृष्णासे असन्तोष और असन्तोषसे दुःख होता है। कविने निम्नपदमें इसी भावनाको बड़े अनूठे ढंगसे प्रदर्शित किया है—

रे मन ! कर सदा सन्तोष।
जातैं मिटत सब दुख दोष ॥ रे मन० ॥ टेक ॥१॥
बढ़त परिग्रह मोह बढ़ावत, अधिक तृष्णा होत।
बहुत ईंधन जरत जैसैं, अगनी ऊँची ज्योति रे ॥ रे मन० ॥२॥
लोभ लालच मूढ़ जन सों, कहत कञ्चन दान।
फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धनकी हान ॥ रे मन० ॥३॥
नारकिनके पाँव सेवत, सकुच मानत संक।
ज्ञान करि बूझै 'बनारसि', को नृपति को रंक ॥ रे मन० ॥४॥

जब कवि संसारके स्वार्थोंसे ऊब गया, नाना उपचार करनेपर भी उसके मनका सशय नही हटा तो वही अपने मनकी आलोचना करता हुआ आकाक्षा व्यक्त करता है। कविकी आकाक्षा वैयक्तिक नही, अपितु सार्वजनीन है। सारग रागकी मधुरिमा हृदयको रससिक्त कर देती है तथा अन्तस्‌में आत्मबुद्धि जाग्रत करती है। कविवर कहता है—

दुविधा कब जैहै या मनकी ॥ दुवि०॥
कब जिननाथ निरंजन सुमिरों, तजि सेवा जन-जनकी ॥
दुविधा० ॥१॥
कब रुचिसौं पीवैं दृग चातक, बूँद अखयपद घनकी ॥
कब शुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूँ न ममता तनकी ॥
दुविधा० ॥२॥
कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दिढ़ता सुगुरु वचन की।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ॥
दुविधा० ॥३॥
कब घर छाँडि होहुँ एकाकी, लिये लालसा बन की।
ऐसी दसा होय कब मेरी, हौं बलि-बलि वा छन की ॥
दुविधा० ॥४॥

बुद्धि, राग और कल्पना तत्त्वका समन्वय, अनुभूतिका सन्तुलन, भाव और भाषाका एकीकरण, लय और तालकी मधुरता एवं भाव-गाम्भीर्य और कोमल-कान्त-पदावली बनारसीदासके पदोंमे वर्तमान है।

भैया भगवतीदासके पद : परिचय और समीक्षा

भैया भगवतीदासने अपने पदोंमें सहजानुभूतिकी अभिव्यंजना की है। इनके पदोंमें चिन्तनके स्थानमें आध्यात्मिक उल्लासकी अनुभूति प्रधान है। उन्होंने मानव पर्यायको प्रकृतिमे सुन्दर मंगलमय, मधुर और आत्मकल्याणमे सहायक माना है। इसी कारण अपने हृदय-कुंजमे मदिरभाव विहगोंका कूजन सुनकर इन्होने ससारके सम्बन्धोंकी अस्थिरताका साक्षात्कार कराया है। आध्यात्मिक उन्मेषसे कविका प्रत्येक पद प्रभावित है। आकाशमे घुमडनेवाले बादलोंके समान क्षणभंगुर वासनाओं, जो कि प्रत्येक व्यक्तिके मानसको आन्दोलित करती रहती है, का कविने पदोंमें सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अतः चिन्तनशील होकर कवि जीवनके मूलभूत तत्त्वोंका उद्घाटन करता हुआ कहता है—

छाँडि दे अभिमान जिय रे, छाँडि दे अभि० ॥टेक॥
काको तू अरु कौन तेरे, सब ही हैं महिमान ।
देख राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान ॥जिय रे०॥१॥
जगत देखत तोरि चलवो, तू भी देखत आन ।
घरी पलकी खबर नाहीं, कहा होय विहान ॥जिय रे०॥२॥
त्याग क्रोध रु लोभ माया, मोह मदिरा पान ।
राग दोषहिं टार अन्तर, दूर कर अज्ञान ॥जिय रे०॥३॥
भयो सुरपुर देव कबहूँ, कबहूँ नरक निदान ।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान ॥जिय रे०॥४॥

इनके पदोंका सग्रह ब्रह्मविलास तथा फुटकर सकलनके रूपमें प्रकाशित हुआ है। प्रभाती, स्तवन, अध्यात्म, वस्तुस्थितिनिरूपण,

आत्मालोचन एवं आराध्यके प्रति दृढतर विश्वास विषयोंमे इनके पदोंको विभाजित किया जा सकता है। वस्तुस्थितिका चित्रण करते हुए बताया है कि यह जीव विश्वकी वास्तविकता और जीवनके रहस्योंसे सदा आँखें बन्द किये रहा। इसने व्यापक विश्वजनीन और चिरन्तन सत्यको पानेका प्रयास ही नहीं किया। पार्थिव सौन्दर्यके प्रति मानव नैसर्गिक आस्था रखता है, राग-द्वेषोंकी ओर इसका झुकाव निरन्तर होता रहता है; परन्तु सत्य इससे परे है। विविध नाम-रूपात्मक इस जगत्से पृथक् होकर प्रकृत भावनाओंका संयम, दमन और परिष्करण करना ही प्रत्येक व्यक्तिका जीवन लक्ष्य होना चाहिए। इसी कारण पश्चात्तापके साथ सजग करते हुए वैयक्तिक चेतनामें सामूहिक चेतनाका अध्यारोप कर कवि कहता है—

अरे तैं जु यह जन्म गमायो रे, अरे तैं ॥टेक॥
पूरब पुण्य किये कहुँ अतिही, तातैं नरभव पायो रे।
देव धरम गुरु ग्रन्थ न परसे, भटकि भटकि भरमायो रे ॥अरे०॥१॥
फिर तोको मिलिबो यह दुरलभ, दश दृष्टान्त बतायो रे।
जो चेतै तो चेत रे भैया, तोको कहि समुझायो रे ॥अरे०॥२॥

आत्मालोचन-सम्बन्धी पदोंमे कविने राग-द्वेष, ईर्षा-घृणा, मद-मत्सर आदि विकारोंसे अभिभूत हृदयकी आलोचना करते हुए गूढ़ अध्यात्मकी अभिव्यंजना की है। यह आलोचना केवल कविहृदयकी नहीं बल्कि समस्त मानव समाजकी है। मानव मात्र अपने विकारी मनका परिशोधनकर मंगल प्रभातके दर्शन करनेकी क्षमता प्राप्त कर सकता है।

विनाशीक ससारके स्वार्थमयी सम्बन्धोंकी सारहीनता दिखलाता हुआ कवि राग-द्वेषादि विकारोंको दूर करनेकी बात कहता है। जब वह इस ससारके भ्रम-जालकी वास्तविकतासे परिचित हो जाता है तो दृढ़ आत्म-निष्ठा प्रकट करता हुआ देव गन्धार रागमे अलापने लगता है—

अब मैं छाँड्यो पर-जंजाल, अब मैं ॥टेक॥
लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी, तज्यो ताहि तत्काल। अब मैं०॥१॥

आतमरस चख्यो मैं अद्‌भुत, पायो परम दयाल । अब मैं०॥२॥
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, सोमरूप सुविशाल । अब मैं०॥३॥

भैया भगवतीदासके पदोंमें जितनी सुन्दर अध्यात्म तत्त्वकी अभिव्यंजना हुई है उतनी मानवीय राग-द्वेषकी नहीं । शृ गारिक भावनाके अरुण रूपोंका प्रायः अभाव है । भाषामें नाद-साम्य और अनुप्रासोंकी बहुलता श्रवण-सुखद है ।

आनन्दघनके पद : परिचय और समीक्षा

आनन्दघनके पद कबीरदासके समान आध्यात्मिकतासे ओतप्रोत हैं । यह पहुँचे हुए महात्मा और आत्मरसिक कवि थे । इस कारण इनके पदोंमें सच्ची अनुभूति विद्यमान है । प्रेत-आत्माके रूप-माधुर्यका दर्शन सर्वत्र कवि करता है । वातावरणके प्रत्येक कणसे उसे आत्मानुभूतिकी झलक मिलती है । यद्यपि कविने आत्माको सर्वत्र व्यापक रूपमें नहीं देखा है, शरीर-प्रमाण ही माना है, फिर भी उसे पानेके लिए सच्ची प्रेयसीके समान आकुल है । प्रातः-समीर अपनी नवीन सुरभिसे प्रत्येक अग-प्रत्यगको सुरभित करता हुआ कविको आत्मानुभूतिमें प्रेरक प्रतीत होता है ।

स्वानुभूतिका प्रादुर्भाव होते ही कवि अनुभव करता है कि जन्म-मरणके कारण राग-द्वेषके भस्म हो जानेपर ही आवागमनके दुखसे छुटकारा मिल सकता है: आत्मा अजर है, अमर है, इसकी उपलब्धि रत्नत्रयके द्वारा ही सम्भव है । अतएव सत्यद्रष्टा कविकी पारदर्शिका ऑखे जगके भौतिक आवरणको भेदती हुई अन्तस्तत्त्वोंपर स्थित होती है । आप्त-वाणीके द्वारा पार्थिकताको ललकारते हुए शाश्वत आनन्दकी बात कहता है । इसलिए इनके पदोंमें प्रधानतः आशा, उल्लास और चेतनाका अभि-नन्दन विद्यमान है । कवि अपने अन्तस्में आत्मतत्त्वकी महत्ताका अनुभव कर आध्यात्मिक धरातल पर मानव मात्रका उत्कर्ष दिखलाता है तथा

ऐन्द्रियिक आनन्दको निकृष्ट और हीन बतलाकर इन्द्रियातीत अलौकिक आनन्दकी अभिव्यञ्जना करता है।

कविने निम्न पदमें अपनी अमरताका भाव सत्य और वस्तु सत्यसे भिन्न कितना सुन्दर विवेचन किया है—

अब हम अमर भये न मरेंगे ॥टेक॥
या कारन मिथ्यात दियौ तज, क्यौंकर देह धरैंगे ॥ १ ॥
राग-दोष जग बन्ध करत हैं इनको नाश करैंगे।
मर्यो अनंत काल तैं प्राणी, सो हम काल हरैंगे ॥ २ ॥
देह विनाशी हूँ अविनाशी, अपनी गति पकरैंगे।
नासी नासी हम थिरवासी, चोखे ह्वै निखरैंगे ॥ ३ ॥
मर्यो अनन्त बार बिन समझें, अबसो सुख बिसरैंगे।
'आनन्द घन' निपट-निकट अक्षर दो, नहिं सुमरै सो मरैंगे ॥४॥

यद्यपि इसी आशयका एक पद कवि द्यानतरायका भी मिलता है, तो भी इस पद्यका माधुर्य विचित्र है। कविने वैज्ञानिक तथ्योंके आधारपर आत्मानन्दको व्यक्त किया है। इनके समस्त पद तीन वर्गोंमें विभक्त किये जा सकते हैं।

प्रथम वर्गमें उन पदोको रक्खा जा सकता है, जिनमें रूपकों-द्वारा आत्मतत्त्वका विश्लेषण एक सहृदय और भावुक कविके समान किया गया है। कविने इन पदोमे मधुर रागात्मक सम्बन्धोको उद्घाटित करते हुए मिथ्यात्वके निष्कासनपर अधिक जोर दिया है। आत्मानुभूति या स्वानुभूतिमे प्रबल बाधक कारण यह मिथ्यात्व ही है, अतः अनेक रूपको-द्वारा इस आत्म-अशुद्धिके कारणका विश्लेषण किया गया है।

दूसरी श्रेणीमे वे पद हैं जिनमें घरेलू दैनिक व्यवहारमे आनेवाली वस्तुओंके प्रतीकों-द्वारा संसारकी क्षणभगुरता दिखलाकर आत्म-तत्त्वका सश्लिष्ट चित्र प्रकट किया है। विनय और बन्दना-सम्बन्धी पद इस कोटिमें आते हैं।

तीसरे वर्गमें उन मिश्रित पदोंको रक्खा जा सकता है जिनमे तन्मयता के साथ भाव-गाम्भीर्य भी विद्यमान है। समता-रसका वासन्ती समीर मनकी राशि-राशि अभिलाषाओ और हृदयकी कोमल कमनीय ऐन्द्रियिक भावनाओको विकसित पुष्पके परागकी तरह धूलिसात् कर देता है तथा समता-पीयूषकी खुमारी आत्मविभोर बना देती है। कवि उपर्युक्त भावना का विश्लेषण करता हुआ कहता है—

मेरे घट ज्ञान भाम भयौ भोर।
चेतन चकवा चेतन चकवी, भागौ विरहकौ सोर ॥ १ ॥
फैली चहुँदिशि चतुरभाव रुचि, मिट्यो भरम-तम जोर।
आपकी चोरी आपही जानत और कहत न चोर ॥ २ ॥
अमल-कमल विकसित भये भूतलमन्द विषय शशिकोर।
'आनन्दघन' इक वल्लभ लागत, और न लाख किरोर ॥ ३ ॥

'जसविलास सग्रह' नामसे इनके पदोका सग्रह प्रकाशित हुआ है। इनके पदोंमें भावनाएँ तीव्र आवेशमयी और सगीतात्मक प्रवाहमे प्रस्फुटित हुई है। भाषामे लाक्षणिक वैचित्र्यके स्थानपर सरसता और सरलता है। पदोंमे प्रधान रूपसे—आध्यात्मिक भावोंकी अभिव्यजना है। अपने आराध्यके प्रति आत्मनिवेदनकी भावना भी तीव्र रूपमे पायी जाती है।

यशोविजयके पद : परिचय ओर समीक्षा

आत्माकी अभिरुचि उत्पन्न होते ही अज्ञान, असस्कार, मिथ्यात्व आदि भस्म हो जाते हैं, जिससे स्वानुभूति होनेमें विलम्ब नही होता। कविके अनेक पदोंमें बौद्धिक शान्तिके स्थानमे आध्यात्मिक शान्ति शुद्धानुभूतिका निरूपण है। आध्यात्मिक विश्वासोकी भूमि कितनी दृढ है तथा स्वानुभूति उत्पन्न हो जानेपर मानव आत्मानन्दमे कितना विभोर हो सकता है यह निम्न पदमे दर्शनीय है। कवि कहता है—

हम मगन भये प्रभु ध्यान में।
विसर गई दुविधा तन-मनकी, अचिरा सुत गुनगानमें ॥हम० ॥ १ ॥

हरि-हर ब्रह्म पुरन्दरकी रिधि, आवत नहिं कोउ मान में ।
चिदानन्दकी मौज मची है, समता रसके पानमें ॥ हम० ॥ २ ।

इतने दिन तूँ नाहिं पिछान्यो, जन्म गंवायौ अजान में ।
अब तो अधिकारी ह्वै बैठे, प्रभुगुन अखय खजान में ॥ हम० ॥ ३ ॥

गई दीनता सभी हमारी—प्रभु तुझ समकित दान में।
प्रभुगुन अनुभवके रस आगे, आवत नहिं कोउ ध्यान में ॥ ४ ॥

यशोविजयजीके पदोंकी भाषा बडी ही सरस है। आत्मनिष्ठा और वैयक्तिक भावना भी इनके पदोंमे विद्यमान है।

भूधरदासके पद : परिचय और समीक्षा

कवि भूधरदास कुशल कलाकार हैं। इन्होने गीति-कलाकी बारीकियॉ अपने पदोमें प्रदर्शित की है। यह स्थूलको छोड़ सूक्ष्म सौन्दर्यको व्यक्त करना चाहते है। यद्यपि बाह्य-सौन्दर्यका अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षण-द्वारा निरीक्षण किया है, किन्तु वह इन्हें स्थिरता प्रदान नहीं कर सका है। यही कारण है कि इनके पदोमे भावुकताके सहारे करुण रस और आत्मवेदनाकी भी अभिव्यजना हुई है। पदोमे शाब्दिक कोमलता, भावनाओकी मादकता और कल्पनाओका इन्द्रजाल समन्वित रूपमें विद्यमान है। इनके पदोका एक सग्रह 'भूधर-पदसग्रह' के नामसे प्रकाशित हो चुका है। इन पदोको सात वर्गोंमे विभक्त किया जा सकता है—स्तुतिपरक, जीवके अज्ञानावस्थाके परिणाम और निस्तार सूचक, आराध्यकी शरणके दृढ़ विश्वाससूचक, अध्यात्मोपदेशी, ससार और शरीरसे विरक्ति-उत्पादक, नामस्मरणके महत्त्व-द्योतक और मनुष्यत्वकी पूर्ण अभिव्यक्ति-द्योतक।

प्रथम श्रेणीके पद जिनेन्द्रप्रभु जिनवाणी और जितेन्द्रिय गुरुके स्तवनोसे सम्बद्ध हैं। इन पदोंमे कविने दास्य भावकी उपासना-द्वारा

अपनेको उज्ज्वल बनानेका प्रयास किया है। किन्तु दास्यताकी यह भावना सर्वत्र परतन्त्र बनानेवाली नहीं है।

दूसरी श्रेणीके पदोंमें जीवको अज्ञानताके कारण होनेवाले परिणामोंको दिखलाकर सावधान करनेका प्रयास किया है।

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखनकी बार भरै दग, मरहै मूरख रोय ॥ अज्ञानी० ॥ १ ॥
किञ्चित् विषयनके सुख कारण दुर्लभ देह न खोय।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस नींदड़ी न सोय ॥ अज्ञानी०॥२॥

भावुक कविने अन्तस्‌में मायाकी वञ्चकताका अनुभव कर उसके मोहक रूपका बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण किया है। कविने मायाको ठगनी-का रूपक देकर उसके घृणित रूपका, जिसे विषयी जीव मोहक समझते है, मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

सुन ठगकी माया तैं सब जग ठग खाया ॥ टेक ॥
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पिछताया ॥ सुन० ॥१॥

विकारग्रस्त मानव अहंके वशीभूत हो ससारमे असमताका व्यवहार करता है, नाना कामनाओको अन्तस्‌मे समेटे स्वप्नलोकमे विचरण करता रहता है, उसके सकल्प कच्चे धागेके समान बाधा और विघ्नोंके हल्के झोंकेसे ही टूट जाते हैं। ससारके मायावी बधन उसे जकडते जाते हैं, अतः वस्तुस्थितिका यथार्थ दर्शन कराता हुआ कवि निराशामे आशाकी किरणोंका आलोक वितरण करता है। तथा—

"एकौं के घर मंगल गावैं, पूगी मनकी आसा।
एक वियोग भरे बहु रोवैं, भरि-भरि रैन निरासा॥"

मे कितना सुन्दर यथार्थका चित्रण हुआ है। कविका यथार्थ जीवनके शाश्वत सत्यसे सयुक्त है। यद्यपि यह चित्रण संसारके वास्तविक रूपको

प्रस्तुत करता है, पर इसमें निराशा अन्वित नहीं है। विश्वका वास्तविक स्वारस्य दिखलाकर कवि आत्मानुभूतिको जगाता है। शरीरको चरखाका रूपक देकर निम्नपदकी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है—

मोटा महीं कातकर भाई, कर अपना सुरझेरा।
अन्त आगमें ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सबेरा॥

रागात्मिका वृत्ति और बोध-वृत्तिके समन्वित रूपमे पूर्ण मानवता-की अभिव्यजना करनेवाले इनके अनेक पद हैं। इनमें कविने मानवताकी प्रतिष्ठाके लिए वासना और कषायोके मधुमत्त समीरके स्पर्शसे बचानेकी आकाक्षा व्यक्त की है। कवि कहता है—**"सुनि ज्ञानी प्राणी, श्री गुरु सीख सयानी"** आदि।

राग विहागमे मनकी दुर्बलता तथा अह और इदके संघर्षसे उत्पन्न कामवासनाका नियन्त्रण करता हुआ कवि चारित्रकी शोधशालामें नैतिक मन और नैतिक बुद्धिकी आवश्यकताका निरूपण करता है—

जगत जन जुवा हारि चले॥ टेक॥
काम-कुटिल संग बाजी माँडी, उन करि कपट छले। जगत०॥ १॥
चार कषायमयी जहँ चौपरि पांसे जोग रले।
इन सरबस उत कामनिकौड़ी इहविधि झटक चले॥ जगत०॥ २॥

भूधरदासके पदोंमे राग-विरागका गगा-यमुनीसगम होनेपर भी शृगारिकता नहीं है। विरहकी विविध अवस्थाओका निरूपण भी इनके पदोंमे नही हुआ है। भाषाकी लाक्षणिकता और काव्योक्तियोकी विदग्धता यत्र-तत्र रूपकोंमे विद्यमान है।

गीति-काव्यके मर्मज्ञ कवि द्यानतरायके पदोमे अन्तर्दर्शनकी प्रवृत्ति प्रधान रूपसे वर्त्तमान है। शब्द सौन्दर्य और शब्द-सगीतकी झंकार सभी पदोमे सुनाई पड़ती है। इनके पदोमे अतृप्ति नही, सतोष है; उन्माद

नहीं, मस्ती है; अवसाद नहीं, औत्सुक्य है; कर्कशता नहीं, तीव्रता है और उच्छृङ्खलता नहीं, आस्था है। इन्होने अपने भक्ति-सूचक पदोंमे जीवनकी अन्तर्वृत्तिकी ऐसी सुन्दर अभिव्यजना की है, जिससे बोध-वृत्ति जाग्रत हुए बिना नहीं रहती। इनकी भावुकता सरस, सरल और सहज है। पदोंमे तथ्योंका विवेचन दार्शनिक शैलीमे नहीं किया गया है, किन्तु काव्य-शैलीका प्रयोग कर कविने मानवप्रवृत्तियोंके उद्घाटनमे अपूर्व सफलता प्राप्त की है। तीव्र आलोक और प्रखर प्रवाह दो चार पदोंमे ही उपलब्ध है, अधिकाश पदोंमे वैयक्तिकता या अधि-करणनिष्ठताका आधार ही प्रधान है। कविने अपनी आनन्दानुभूतिको प्रत्येक पदमे व्यक्त करनेका प्रयास किया है। इनके सकलित पदोंको छः श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है—बधाई, स्तवन, आत्मसमर्पण, आश्वासन, परत्वबोधक एव सहज समाधिकी आकाक्षा।

द्यानतरायके पदः परिचय और समीक्षा

बधाई-सूचक पदोंमे तीर्थंकर ऋषभनाथके जन्म-समयका आनन्द व्यक्त किया है। प्रसगवश प्रभुके नखशिखका वर्णन भी जहाँ-तहाँ उप-लब्ध है। अपने इष्टदेवके जन्म-समयका वातावरण और उस कालकी समस्त परिस्थितियोंको स्मरण कर कवि आनन्द-विभोर हो जाता है और हर्षोन्मत्त हो गा उठता है—

माई आज आनंद या नगरी ॥ टेक ॥
गजगमनी शशिवदनी तरुनी, मंगल गावति हैं सगरी ॥ माई० ॥
नाभिराय घर पुत्र भयो है,किये हैं अजाचक जाचक री ॥ माई० ॥
'द्यानत' धन्य कूख मरुदेवी, सुर सेवत जाके पगरी ॥ माई० ॥

द्वितीय श्रेणीके पदोंमे अपने आराध्य पचपरमेष्ठीकी नाना प्रकारसे स्तुति की है। इस श्रेणीके पदोंमे उपमानोंका आश्रय लेकर अपने इष्ट देवको प्रसन्न करनेका प्रयास कविने किया है। आरती स्तुतिका ही एक रूप है, अतः अपनी विश्वव्यापिनी आरती करता हुआ कवि कहता है—

मंगल आरती आतम राम । तन मंदिर मन उत्तम ठाम ।
समरस जल चन्दन आनंद । तन्दुल तत्त्वस्वरूप अमन्द ॥
॥ मंगल आरती० ॥
समसार फूलनकी माल । अनुभौ सुख नेवज भरि थाल ॥
मंगल आरती० ॥
दीपक ज्ञान ध्यानकी धूप । निर्मल भाव महाफल रूप ॥
मंगल आरती० ॥
सुगुन भविक जन इक रंग लीन । निहचै नौधा भगति प्रवीन ॥
मंगल आरती० ॥
धुनि उत्साह सु अनहद ग्यान । परम समाधि निरत परधान ॥
मंगल आरती० ॥
बाहज आतम भाव बहाव । अंतर ह्वै परमातमध्याव ॥
मंगल आरती० ॥
साहब सेवक भेद मिटाय । 'द्यानत' एकमेव हो जाय ॥
मंगल आरती० ॥

दौलतरामके पद : परिचय और समीक्षा

कवि दौलतराम उन गीतिकाव्य-रचयिताओंमे से हैं, जिन्होने जीवन-को खूब बारीकियोमे देखा है, उनकी विविध प्रवृत्तियोकी गहराईमे उतर कर अनुशीलन किया है। मनकी गूढ़ और विविध दशाओंका समाधान करते हुए कवि अनुभव करता है कि क्या बात है कि जिससे मानव जीवन बोझिल और त्रस्त है? कल्पना, विचार और भावनाकी त्रिवेणीमे निमज्जन कर निश्चय किया कि मानव चचल चित्तके कारण ही क्लान्त एव त्रस्त है। कभी यह दिव्य अगनाओंका आलिगन करना चाहता है, तो कभी सुन्दर नृत्य देखनेके लिए लालायित है। एक आकाक्षा तृप्त नहीं होती, कि दूसरी अनन्त आकाक्षाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। मनकी गति पवनसे भी अधिक चंचल है, इसपर अकुश रखे बिना कोई भी

सत्यको प्राप्त नहीं कर सकता है। कवि कहता है—"मन तेरी बुरी आदत क्यों पड़ गई है? तू अनादिसे इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर क्यो दौड़ता चला आ रहा है, इन्हींके अधीन रहनेसे तूने अनादिकालसे अपनी आत्मा-का निरीक्षण नही किया, अपने स्वरूपको नहीं पहचाना—

हे मन, तेरी को कुटेव यह, करन-विषय में धावै है ॥ टेक ॥
इन्हींके वश तू अनादि तैं, निज स्वरूप न लखावै है।
पराधीन छिन-छीन समाकुल, दुरगति-विपति चखावै है ॥
हे मन० ॥ १ ॥
फरस-विषयके कारण वारन, गरत परत दुख पावै है।
रसना इन्द्री-वश झष जल में, कंटक कंठ छिदावै है।
हे मन० ॥ २ ॥
गंध-लोल पंकज मुद्रितमें अलि निज प्रान खिपावै है।
नयन-विषय-वश दीपशिखामें अंग पतंग जरावै है ॥
हे मन० ॥ ३ ॥
करन-विषय-वश हिरन अरन में, खलकर प्रान लुनावै है।
'दौलत' तज इनको, जिनको भज, यह गुरु सीख सुनावै है ॥
हे मन० ॥ ४ ॥

इनके पद विषयकी दृष्टिसे रक्षाकी भावना, आत्मनिक्षेप भर्त्सना, भय-दर्शन, आश्वासन, चेतावनी, प्रभुस्मरणके प्रति आग्रह, आत्मदर्शन होनेपर अस्फुट वचन, सहज समाधिकी आकाक्षा, स्वपदकी आकाक्षा, ससार-विश्लेषण, परसत्त्वबोधक एव आत्मानन्द श्रेणीमे विभक्त किये जा सकते है। उक्त वर्गीकरणमेंसे कुछ पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। आत्मनिक्षेप-सम्बन्धी पदोंमे भगवान्‌के सम्मुख आत्मसमर्पणकी भावना प्रदर्शित की गई है। इन पदोमे अपने प्रति और अपने आराध्यके प्रति एक अखण्ड अविचलित विश्वास है। इसी कारण इस श्रेणीके पदोमे सीधे-सादे भाव पाठकके हृदयपर सीधे चोट पहुँचाते हैं—

मोहि तारोजी क्यों ना ? तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥ मोहि० ॥
मैं उदधि पर्यो दुख भोग्यौ, सो दुख जात कह्यौ ना ।
जामन मरण अनंत तनो तुम जानन माहिं छिप्यौ ना ॥ मोहि० ॥

भर्त्सना-विषयक पदोंमे कविने विषय-वासनाके कारण मलिन हुए मनको फटकारा है तथा कवि अपने विकार और कषायोंका कच्चा चिट्ठा प्रकट कर अपनी आत्माका परिष्कार करना चाहता है। नाना प्रकारकी विषयेच्छाएँ तृष्णा और सुनहली आशा-कल्पनाएँ इस प्राणीको और भी कष्ट देती हैं; अतएव विषयोको निस्सार समझ त्यागना चाहिये। यह शरीर अत्यन्त घृणित है, माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ है। इसमें अनेक अशुचि पदार्थ विद्यमान है, अतएव इससे ममता छोड़ देनी चाहिये—

मत कीजो री यारी, छिन गेह देह जड़ जानके ॥ टेक ॥
मात-पिता-रज-वीरज सों यह, उपजी मल-फुलवारी ।
अस्थि-माल-पल नसाजाल की, लाल-लाल-जल क्यारी ॥ मत०॥
कर्म-कुरंग-थली पुतली यह, मूत्र पुरीष भँडारी ।
चर्म-मढ़ी रिपु-कर्म-कढी धन-धर्म चुरावन हारी ॥ मत०॥

× × ×

हो तुम शठ अविचारी जियरा जिनवृष पाय वृथा खोवत हो ॥ टेक॥
पी अनादि मदमोह स्वगुननिधि भूल अचेत नींद सोवत हो ॥
हो तुम० ॥

भय दर्शन-सम्बन्धी पदोंमें मनको भय दिखलाकर आत्मोन्मुख किया गया है। कविने अपने अन्तस्‌में संसारकी झंझटों, बाधाओं और विघ्नोंका अनुभव कर वास्तविक परिस्थितियोका साक्षात्कार किया है। जान पड़ता है जैसे संसारके मायावी बन्धनोसे वह भयभीत है। अतः ससारके माया-जालसे उन्मुक्त होनेके लिए अत्यन्त उत्सुक है, उसकी आत्मामें सासारिक

पदार्थोंकी विभीषिका पूर्णतः विद्यमान है। अतएव कवि आत्मानुभूतिकी ओर झुकाता हुआ कहता है–

मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी ॥ टेक० ॥
भोग भुजंग भोग सम जानो, जिन इनसे रति जोरी।
ते अनन्त भव-भीम भरे दुख, परे अधोगति पोरी ;
बँधे दृढ़ पातक डोरी ॥ मान ले० ॥

इनको त्याग विरागी जे जन भये ज्ञान-वृष धोरी।
तिन सुख लह्यौ अचल अविनाशी, भवफाँसी दई तोरी,
रमै तिन संग शिव-गोरी ॥ मान ले० ॥

भोगन की अभिलाष हरन को त्रिजग संपदा थोरी।
यातें ज्ञानानंद 'दौल' अब पियौ पियूष-कटोरी।
मिटै भव व्याधि कठोरी ॥ मान ले० ॥

× × ×

छाँड़ि दे या बुधि भोरी, वृथा तनसे रति जोरी।

× × ×

भाखूँ हित तेरा, सुनिहो मन मेरा। भाखूँ० ॥

अन्तर्वृत्तियोंके विश्लेषणमें कविने अपूर्व सफलता प्राप्त की है। कविने निम्न रूपकमें किस प्रकार चेतावनी दी है—

कुमति कुनारि नहीं है भली रे, सुमति नारि सुन्दर गुनवाली ॥
कुमति०॥

वासौं विरचि रचौ नित यासौं, जो पावौ शिवधाम गली रे।
वह कुबजा दुखदा यह राधा बाधा टारन करन रली रे॥
कुमति० ॥

वह कारी परसौं रति ठानत, मानत नाहिन सीख भली रे।
यह गोरी वह गुण सहचारिनि, रमत सदा स्वसमाधि थली रे॥
कुमति०॥
वा संग कुथल कुयोनि वस्यौ नित, वहाँ महादुःख बेल फली रे।
या संग रसिक भाविन की निज में, परनति 'दौल' न चली रे॥
कुमति०॥

× × ×

गुरु कहत सीख इमि बार-बार, विषसम विषननको टार-टार॥गुरु०
इन सेवन अनादि दुख पायौ, जनम मरन बहु धार-धार॥गुरु०॥
कर्माश्रित बाधा जुत फाँसी, बंध बढ़ावन द्वन्द्वकार॥गुरु०॥
ये न इन्द्रिके तृप्ति हेतु जिमि तृषा न बुझावत क्षारवार॥गुरु०॥
इनमें सुख कल्पना अबुधके बुधजन मानत दुख प्रचार॥गुरु०॥
इन तजि ज्ञानपियूष चख्यौ तिन, 'दौल' लही भववार पार॥गुरु०॥

कवि कहता है कि प्रत्येक दिनका उषाकाल विश्वके प्राणियोंमे स्वर्ण-लक्ष्मी एव सुगन्धि प्राप्त करनेकी कामना जाग्रत कर देता है। जिस प्रकार पक्षियोंका कलरव दिग-दिगन्तको हिला देता है उसी प्रकार उषाकालके आते ही नाना प्रकारकी इच्छा और वासनाएँ हृदयमें उद्बुद्ध हो मानव-मनको विचलित कर देती हैं। सत्य यह है कि मिथ्यापरिणतिके कारण यह मानव ससारमे अनुरक्त होता है, पर जब यह मिथ्यापरिणति दूर हो जाती है, उस समय जीवन आनन्दमय हो जाता है। ससारके समस्त सम्बन्ध भ्रमजाल है, आत्मा ही एक सत्य पदार्थ है, यही शुद्ध होकर परमात्म-पदको प्राप्त कर लेती है। कवि ससारके खोखलेपनका विश्लेषण करता हुआ कहता है—

अरे जिया, जग धोखेकी टाटी॥ अरे०॥
झूठा उद्यम लोक करत हैं जिसमें निशदिन घाटी॥ अरे०॥

ज्ञान बूझ कर अन्ध बने हैं आँखन बाँधी पाटी ॥ अरे० ॥
निकल जाँयगे प्राण छिनकमें पड़ी रहेगी माटी ॥ अरे० ॥
'दौलतराम' समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥ अरे०॥

× × ×

अब मन मेरा वे सीख वचन सुन मेरा।

× × ×

जिया तुम चालो अपने देश।
मत कीजो जी यारी ये भोग भुजंग सम जानिके।

कवि चेतावनी देता हुआ कहता है—

मेरे कब ह्वै वा दिनकी सुघरी।
तन बिन बसन असन बिन बनमें, निवसौं नासा दृष्टि धरी ॥
मेरे कब० ॥
पुण्य पाप परसौं कब विरचौं, परचौं निजनिधि चिर-बिसरी।
तज उपाधि, सज सहज समाधी, सहौं घाम-हिम-मेघ-झरी।
मेरे कब० ॥
कब थिर-जोग धरौं ऐसौ मोहि, उपल जान मृग खाज हरी।
ध्यान कमान तान अनुभवशर, छेदौं किह दिन मोह अरी ॥
मेरे कब० ॥
कब तृन कंचन एक गनौं अरु, मनि-जड़ितालय शैलदरी।
'दौलत' सतगुरु चरनन सेउँ, जो पुरवौ आश यहै हमरी ॥
मेरे कब० ॥

× × ×

चेतन अब धरि सहज समाधि, जात यह विनशै भव व्याधि।
चेतन० ॥
मोह ठगौरी खायके रे, परको आपा जान।
भूल निजातमऋद्धि को हैं—पाये दुःख महान ॥ चेतन० ॥

जब आत्मानुभूति उत्पन्न हो जाती है, हृदयके समस्त कालुष्य धुल जाते हैं एव जीवनका प्रवाह अपनी दिशाको बदलकर प्रवाहित होने लगता है तो भावातिरेकके कारण अस्फुट वचन निकलते हैं। कवि कहता है—

चिन्मूरत दृग्धारीकी मोहि, रीति लगत है अटापटी॥ चिन्मूरत०॥
बाहिर नारकि कृत दुख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी॥
रमत अनेक सुरतिसंग पै तिस परनति तैं नित हटाहटी॥चिन्मूरत०॥

कवि दौलतरामकी दृष्टि आत्मनिष्ठ है, वस्तुनिष्ठ नहीं। अतः किसी वस्तुके बाह्य स्थूल सौन्दर्यकी अपेक्षा आन्तरिक-सूक्ष्म सौन्दर्यका अधिक विश्लेषण किया है। भावनाकी भव्यता और अनुभूतिकी सूक्ष्मता दर्शनीय है। इनकी भाषामें संयम, अभिव्यञ्जना-शक्ति, स्पष्टता और व्यावहारिकता पूर्णतः विद्यमान है। भाषाकी लाक्षणिकताने कोमल और माधुर्य भावनाओंको भरनेमें विलक्षण कार्य किया है। रूपकोंमे कविकी लाक्षणिक शैली दर्शनीय है—

मेरो मन ऐसी खेलत होरी।
मन मिरदंग साज करि लारी, तनको तमूरा बनो री॥
सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोऊकर जोरी।
राग पाँचौं पद कोरी, मेरो मन ऐसी खेलत होरी॥
समकृति रूप गहि भर झारी, करुना केशर घोरी।
ज्ञानमई लेकर पिचकारी दोउ कर माहिं सम्होरी॥

इस प्रकार कवि दौलतरामके पदोंमे भावावेश, उन्मुक्त प्रवाह, आन्तरिक सगीत, कल्पनाकी तूलिका-द्वारा भावचित्रोंकी कमनीयता, आनन्द-विह्वलता; रसानुभूतिकी गम्भीरता एव रमणीयताका पूरा समन्वय विद्यमान है।

कवि भागचन्दके पद : परिचय और समीक्षा

कविवर भागचन्द उन सहृदय और भावुक कवियोंमे हैं जो निरन्तर आत्मगुत्थीके सुलझानेमे मग्न रहते है। इनके पदोंमें तन्मयता अधिक पायी जाती है।

निज कारज काहे न सारे रे, भूले प्रानी ॥ टेक ॥
परिग्रह भारथकी कहा नहीं, उनरत होत तिहारे रे। निज कारज०।
रोगी नर तेरी वपु को कहा निसदिन नाहीं जारे रे॥ निज कारज०।

कवि ससारकी अवास्तविकताका चित्रण करता हुआ कहता है—

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।
संग साथी कोई नहीं तेरा।
अपना सुख दुःख आप ही भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ भयैं सब बिछुरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला॥१॥
रक्षक कोई न पूरन है जब, आयु अन्तकी बेला।
फूटत पार बँधत नहिं जैसे दुद्धर जलको ठेला॥२॥
तन-धन-जीवन विनश जात ज्यों, इन्द्रजालको खेला।
'भागचन्द' इमि लिखकर भाई, हो सतगुरुका चेला॥३॥
जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

आध्यात्मिक साधनामे सबसे बडी बाधा मोहके उदयसे उत्पन्न होती है। यह जीव भोगविलासकी रुचि भी मोहके कारण ही करता है। सुन्दर वस्त्राभूषण, अलकार, पुष्पमाला आदि-द्वारा शरीरको सज्जित करनेकी चेष्टा भी इसीके उदयसे उत्पन्न होती है। मोह वह तेज शराब है जिसका नशा जीवको सुख और शान्तिसे वचित कर देता है, मानवकी सारी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी हो जाती है जिससे वह अपने कर्मकालुष्यको दूर नही कर पाता। समता रस ही एक ऐसा आनन्द है, जिससे मानवको अद्भुत शान्ति मिलती है, कविने इस प्रसगके पदोमें भौतिकवादकी

विगर्हणा की है। यद्यपि काव्यके मूल तत्त्व हृदयकी रागात्मक विभूतिका शुद्धात्मदर्शनके साथ सामंजस्य नही बैठता है, पर कविने आध्यात्मिक चिन्तन-प्रधान पदोंमे भी अपनी भावुकताका समावेश कर अपने कविकर्मका परिचय दिया है।

कवि भागचन्दमे दौलतरामके समान हृदय-पक्षका सन्तुलन नही है। इनमे तर्क, विचार और चिन्तनकी प्रधानता है। इसी कारण इनके पदोंमे विचारोंकी सघनता रहती है। निम्नपदमे दार्शनिक तत्त्वोंको हृदयग्राहक रूप देनेकी सफल चेष्टा वर्त्तमान है।

जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥ टेक ॥
मोह वारुणी पी अनादि तैं, परपद में चिर सोये।
सुख करंड चितपिंड आपपद, गुन अनन्त नहिं जोये ॥ जे दिन० ॥
होहि बहिर्मुख हानि राग रुख, कर्मबीज बहु बोये।
तसु फल सुख-दुःख सामग्री लखि, चितमें हरषे रोये ॥ जे दिन० ॥
धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतैं, आस्रव मल नहिं धोये।
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥
अब निजमें निज जान नियत तहाँ, निज परिनाम समोये।
यह शिव-मारग समरस सागर, 'भागचंद' हित तो ये ॥ जे दिन०॥

विशुद्ध दार्शनिकके समान कविने तत्त्वार्थश्रद्धानी और ज्ञानीकी प्रशंसा की है। यद्यपि वर्णनमे कविने रूपक उत्प्रेक्षा अलंकारोका अवलम्बन लिया है, किन्तु शुष्क सैद्धान्तिकता रहनेसे भाव और रसकी कमी रह गयी है। ज्ञानी जीव किस प्रकार ससारमें निर्भय होकर विचरण करता है तथा उन्हें अपना आचार-व्यवहार किस प्रकार रखना चाहिये इत्यादि विषयका विश्लेषण करनेवाले पदोंमें कविका चिन्तन विद्यमान है; पर भावुकता नही है। हॉ, प्रार्थनापरक पदोंमें मूर्त्त-अमूर्त्तको आलम्बन लेकर कविने अपने अन्तर्जगत्को अभिव्यक्ति अनूठे ढंगसे की है। इन

पदोंमें विराट् कल्पना, अगाध दार्शनिकता और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ हैं। भावनाओंमें विवेचनकी प्रवृत्ति इनके पदोंका एक मुख्य गुण है। निम्नपद दर्शनीय है–

आनन्दाश्रु बहैं लोचनतैं, तातैं आनत न्हाया।
गद्गद स्पष्ट वचनजुत निर्मल, मिष्टज्ञान सुरगाया ॥ टेक ॥
भव वन में बहु भ्रमण कियो तहाँ, दुःखदावानल ताया।
अब तुम भक्तिसुधारसधादी मैं अवगाह कराया ॥ आनन्दाश्रु० ॥

इस प्रकार कवि भागचदके पदोमे हृदयकी तीव्रानुभूति विद्यमान है। जिस पदमे जिस भावनाको व्यक्त करना चाहते हैं उस पदमे उसे वह गहराई, सूक्ष्मता और मार्मिकताके साथ व्यक्त कर सके हैं।

भजन और पद रचनेमे इनका जैन कवियोमे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके पदोंमे अनुभूतिकी तीव्रता, लयात्मक सवेदन-शीलता और समाहित भावनाका पूरा अस्तित्व विद्यमान है। आत्मशोधनके प्रति जो जागरूकता इनमें है, वह कम कवियोंमें उपलब्ध होगी। इनकी विचारोंकी कल्पना और आत्मानुभूतिकी प्रेरणा पाठकोंके समक्ष ऐसा सुन्दर चित्र उपस्थित करती है जिससे पाठक अनुभूतिमें लीन हुए बिना नहीं रह सकता। तात्पर्य यह है कि इनकी अनुभूतिमे गहराई है, प्रबल वेग नहीं। अतः इनके पद पाठकोंको डूबनेका अवसर देते है, बहनेका नही। ससाररूपी मरुभूमिकी वासनारूपी वालुकासे तप्त कवि शान्ति चाहता है। वह अनुभव करता है कि मृत्युका सबध जीवनके साथ है, जीवनका शाश्वतिक सत्य मृत्यु है। यह मृत्यु हमारे सिरपर सदा वर्त्तमान है। अतः हर क्षण प्रत्येक व्यक्तिको सतर्क रहना चाहिये। कवि गुनगुनाता हुआ कहता है—

कवि बुधजनके पद : परिचय और समीक्षा

काल अचानक ही ले जायगा, गाफिल होकर रहना क्या रे ॥ टेक ॥
छिनहूँ तोकूँ नाहिं बचावैं, तो सुभटन का रखना क्या रे ॥ काल० ॥

रंच सवाद करन के काजै, नरकन में दुख भरना क्या रे ॥ काल० ॥
कुलजन पथिकन के काजै, नरकन में दुख भरना क्या रे ॥ काल० ॥

आज दर्शन हो जाने पर कविने आत्माका विश्लेषण एक भावुकके नाते बड़ा ही सरस और रमणीय किया है। कवि कहता है—

मैं देखा आतम रामा ॥ टेक० ॥
रूप, फरस, रस, गंध तैं न्यारा, दरस-ज्ञान-गुन धामा।
नित्य निरंजन जाकै नाहीं, क्रोध, लोभ-मद कामा ॥ मैं देखा० ॥
भूख-प्यास सुख-दुख नहिं जाके, नाहीं वनपुर गामा।
नहिं साहब नहिं चाकर भाई, नहीं तात नहिं मामा ॥ मैं देखा० ॥
भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुद्गलका जामा।
'बुधजन' संगति जिनगुरुकी तैं, मैं पाया मुझ ठामा ॥ मैं देखा० ॥

इनके पदोको भी दो भागोंमे विभक्त किया जा सकता है—भक्ति या प्रार्थनापरक और तथ्यनिरूपक या दार्शनिक। दोनों प्रकारके पदोंका वर्ण्य विषय भी प्रायः वही है। जिसका निरूपण पूर्वमे किया जा चुका है।

भगवद्भक्तिके बिना जीवन किस प्रकार विषयोंमें व्यतीत हो जाता है। विषयी प्राणी तप, ध्यान, भक्ति, पूजा आदिमे अपना चित्त नहीं लगाते। उन्हे परपरिणति ही श्रेयस्कर प्रतीत होती है। पर भक्ति-द्वारा सहजमे मानवको आत्मबोध प्राप्त हो जाता, जिससे वह चैतन्याभिराम गुणग्राम आत्माभिरामको प्राप्त कर लेता है। जबतक शरीरमे बल है, शक्ति है, तभी तक प्रभु-भजन या प्रभु-ध्यानकी क्रियाको सम्पन्न किया जा सकता है, परन्तु शरीरके शिथिल हो जानेपर भक्ति-भावनाको सम्पन्न नहीं किया जा सकता। अतएव शरीरके स्वस्थ रहनेपर अवश्य ही प्रभु-भजन करना चाहिये। कवि इसी तथ्यका निरूपण करता हुआ मानव जीवनका विश्लेषण करता है—

भजन बिन यौं ही जनम गमायो ।
पानी पै ल्या पाल न बांधी, फिर पीछे पछतायो । भजन० ॥
रामा-मोह भये दिन खोवत, आशापाश बंधायो ।
जप-तप संजम दान न दीनौं, मानुष जनम हरायो ॥ भजन० ॥
देह सीस जब काँपन लागी, दसन चलाचल थायौं ।
लागी आगि बुझावन कारन, चाहत कूप खुदायो ॥ भजन० ॥

कवि बुधजनकी भाषापर राजस्थानी भाषाका प्रभाव ही नहीं है, अपितु इन्होंने राजस्थानी मिश्रित व्रज भाषाका प्रयोग किया है। पदोंमें प्रवाह और प्रभाव दोनों ही विद्यमान है। रूपकोंमे भाषाकी लाक्षणिकता और वर्णोंका विचित्र विन्यास भी है।

कवि वृन्दावनके पद : परिचय और समीक्षा

जैन-पद-रचयिताओंमें कवि वृन्दावनका भी प्रतिष्ठित स्थान है। इनके पदोंमें भक्तिकी उच्च भावना, धार्मिक सजगता और आत्म-निवेदन विद्यमान है। आत्म-परितोषके साथ लोक हित सम्पन्न करना ही इनके काव्यका उद्देश्य है। यद्यपि इनके पदोंमें मौलिकताका अभाव है। हाँ भक्ति-विह्वलता और विनम्र आत्म-समर्पणके कारण अभिव्यंजना शक्ति पूर्णरूपेण विद्यमान है। इनकी भावनाएँ आत्म-जगत्‌की सीमासे बाहर निकलकर सर्वसामान्यके साथ सहानुभूति रखती हैं। इनकी भक्ति केवल आत्म-परितोषी ही नहीं, विश्वव्यापक भी है। सुकुमार भावनाएँ और लयात्मक संगीतने अनुभूति और कल्पनाका समन्वय प्रस्तुत किया है। निराशाके बाद आशाका सदेश और आराध्यमे अटूट विश्वास इनके पदोंका प्राण है। कवि कहता है—

निशदिन श्रीजिन मोहि अधार ॥ टेक ॥
जिनके चरन-कमलके सेवत, संकट कटत अपार ॥ निशदिन० ॥
जिनको वचन सुधारस-गर्भित, मेटत कुमति विकार ॥निशदिन०॥

भव आताप बुझावनको है, महामेघ जलधार ॥ निशदिन० ॥
जिनको भगति सहित नित सुरपत, पूजत अष्ट प्रकार ॥निशदिन०॥
जिनको विरद वेदविद वरनत, दारुण दुख-हरतार ॥ निशदिन० ॥
भविक वृन्दकी विथा निवारो, अपनी ओर निहार ॥ निशदिन० ॥

नीति-विषयक पदों और ज्ञानोपदेशक पदोंमें कविने जैनागमके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए नीति और ज्ञानकी बातें बतायी हैं। यद्यपि वर्णनकी प्रणाली अत्यन्त सरल है, भाषामें माधुर्य गुण है।

धन धन श्री गुरु दीन दयाल ॥ टेक० ॥
परम दिगम्बर सेवाधारी, जगजीवन प्रतिपाल।
मूल अठाइस चौरासी लख, उत्तर गुण मनिमाल ॥ धन० ॥
देह भोग भवसों विरकत नित, परिसह सहत त्रिकाल ॥ धन० ॥
शुद्ध उपभोग जोग मुदमंडित, चाखत सुरस रसाल ॥ धन० ॥
× × × ×
सेठ सुजन बर निधि भरी, दुख द्वन्द विदारे।

कवि वृन्दावनकी भाषा पर पूर्वी भाषाका प्रभाव है। सुकुमार शब्दावलीमें स्वरकी साधना और तन्मयताका लयकारी संगीत है।

पदोंका तुलनात्मक विवेचन

अखण्ड सौन्दर्यात्मक सत्यके क्षणिक स्पर्शमात्रसे मानव-हृदय परिस्पन्दित हो भावना-लहरियोंसे उद्वेल्लित होने लगता है। इसी हृदयालोडनका परिणाम गीति-काव्य है, जिसमें संगीतका माध्यम सर्व प्रधान स्थान रखता है। देश, काल और व्यक्तिकी सीमित परिधिसे आवेष्टित हो आन्तरिक संगीतका यह व्यक्तरूप अनेक रूप धारण कर सकता है। परन्तु प्रेरणाका प्रधान उत्स अखिल सत्य वास्तवमें अखण्ड और एक है। अतः बाह्य रूपरेखामें महान् अन्तर होते हुए भी यदि विभिन्न गीतिकारोंने एक ही मौलिक तत्त्व व्यक्त किये हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। जो कुछ विभिन्नता मिलती है वह तो स्थूल

जगत्‌के प्रभावका परिणाम है। सूक्ष्म भावजगत्‌मे तो अनेकताका कोई स्थान ही नही। इसलिए यह आवश्यक है कि हम विभिन्न देश और कालके तथा विभिन्न दार्शनिक विचारोंसे प्रभावित गीतकारोंके मौलिक तत्त्वों तथा उनकी कलात्मक विशेषताओंका तुलनात्मक विचार करे।

हम देख चुके हैं कि जनपद-साहित्यमे सगीतमय भावात्मक आत्माभिव्यक्तिके साथ दार्शनिक विचारोंकी अभिव्यजना भी अन्तर्निहित है। यद्यपि पदोंका अन्तरङ्ग—वस्तुतत्त्व हृदयके अनुरूप ही सुकोमल, तरल और भावनापूर्ण है; पर मस्तिष्ककी ऊहापोही और दार्शनिक विचारोकी गहनता भी है। जैन-पद-रचयिताओंकी प्रेरणाका स्रोत जिनेश्वर भक्ति या आत्मरति है। जैन दर्शनमें भक्तिका रूप दास्य, सख्य और माधुर्य भावकी भक्तिसे भिन्न है, अतः कोई भी साधक अनेक चिकनी-चुपडी प्रशसात्मक बातों-द्वारा वीतरागी प्रभुको प्रसन्न कर उनकी प्रसन्नता-द्वारा अपने किसी लौकिक या अलौकिक कार्यको सिद्ध करनेका उद्देश्य नही रखता है और न परम वीतरागी देवके साथ यह घटित ही हो सकता है; क्योंकि सच्चिदानन्दमय प्रभुमे रागांशका अभाव होनेसे पूजा, स्तुति या भक्ति-द्वारा प्रसन्नताका संचार होना असम्भव है; अतएव वह भक्ति करनेवालोंको कुछ देता, दिलाता नही है। इसी तरह द्वेषांशका अभाव होनेसे वीतरागी किसीकी निन्दामे अप्रसन्न या कुपित भी नही होते है और न दण्ड देने, दिलानेकी ही कोई व्यवस्था निर्धारित करते है। निन्दा और स्तुति, भक्ति और ईर्ष्या उनके लिए समान है, वह दोनोंके प्रति उदासीन है। परन्तु विचित्रता यह है कि स्तुति और निन्दा करनेवाला स्वतः अभ्युदय या दण्डको प्राप्त कर लेता है।[१]

१—सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते, द्विषंस्त्वयि प्रत्यय-वत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि, प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥६९॥

अर्थ—हे भगवन्! आपका मित्रसे न अनुराग है और न शत्रुसे द्वेष है; अतः आप किसीसे प्रसन्न और अप्रसन्न नहीं होते हैं; फिर भी

शुद्धात्माओंकी उपासना या भक्तिका आलम्बन पाकर मानवका चंचल चित्त क्षण भरके लिए स्थिर हो जाता है, आलम्बनके गुणोंका स्मरण कर अपने भीतर भी उन्हीं गुणोंको विकसित करनेकी प्रेरणा पाता है तथा उनके गुणोंसे अनुप्राणित हो मिथ्या परिणतिको दूर करनेके पुरुषार्थमे रत हो जाता है। जैन दर्शनमे शुद्ध आत्माका नाम ही परमात्मा है; प्रत्येक जीवात्मा कर्मबन्धनोंके विलग हो जाने पर परमात्मा बन जाती है। अतः अपने उत्थान और पतनका दायित्व स्वय अपना है। अपने कार्योंसे ही यह जीव बँधता है और अपने कार्योंसे ही बन्धन-मुक्त होता है।

कर्मोंका कर्त्ता और भोक्ता भी यह जीव ही है। अपने किये कर्मों का फल इसको स्वय भोगना पड़ता है। ईश्वर या परमात्मा किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका फल नहीं देता है। इस प्रकारके ईश्वरकी उपासना करनेसे साधककी परिणति स्वतः शुद्ध हो जाती है, जिससे अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। अतः जैन दर्शनानुसार उपासना या भक्ति अकिंचन या नैराग्यकी भावना नहीं है। साधक उन शुद्धात्माओंकी, जिन्होंने आत्म-सयम, तपस्या, योग, ध्यान प्रभृतिके द्वारा कर्म-बन्धनको नष्टकर जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त कर लिया है। पूर्ण ज्ञान-ज्योतिके प्रज्वलित हो जानेसे जिन्होने ससारके समस्त पदार्थों एव उनके समस्त गुण और अवस्थाओको भली भाँति अवगत कर लिया है, उपासना करता है। इस प्रकारकी उपासना या भक्तिसे आराधककी आत्मा स्वच्छ या निर्मल होती है।

जैन-पद-रचयिताओने इसी भक्तिभावनासे प्रेरणा प्राप्त कर भावात्मक पदोकी रचना की है। यद्यपि कतिपय पद, जिन्हे प्रभाती या बधाईकी

आपकी भक्ति करनेवाला श्रीसमृद्धिको और निन्दा करनेवाला पाप-बुद्धि को प्राप्त होता है, यही आश्चर्यकी बात है। —स्तुतिविद्या।

संज्ञा दी गयी है, में दास्यभाव वर्तमान मिलेगा, परन्तु प्रधानतः साधक अपनेको शुद्ध करनेके लिए इस प्रकार शुद्धात्माओका आश्रय लेता है, जिस प्रकार दीपकको प्रज्वलित करनेके लिए अन्य दीपकोंकी लौका सहारा लेना पड़ता है। लौका अवलम्बन देनेवाला दीपक अपने भीतरसे किसी वस्तुको प्रदान नही करता है; पर अपने तेज-द्वारा अन्यको प्रकाशित या प्रज्वलित करनेमे सहायक होता है। जैन पद-रचयिताओंने भी इसी भक्ति-भावनाकी अभिव्यजना की है। अवतारवाद इन्होंने नही माना है और न निर्गुण या सगुण सिद्धान्तके विवादमें पड़नेका प्रयास किया है। जैन-दर्शनमें अनेकान्तवादकी विवेचना—परस्पर आपेक्षिक अनेक धर्मात्मक वस्तुकी विवेचना की गयी है; जिससे आराध्य वीतरागी प्रभु एककी अपेक्षा सुनिश्चित दृष्टिकोणसे सगुण और अन्य आपेक्षिक धर्मकी अपेक्षा निर्गुण हैं।

यद्यपि आराध्यको शील, ज्ञान, शक्तिका भाण्डार माना है, जिससे कोई भी साधक अपनी मनोरम, गुप्तशक्तियोंका उद्घाटन करनेमे प्रगतिशील बनता है। लोकरजन और लोकरक्षण करना भगवान्का कार्य नहीं है, किन्तु उनके पूत गुणोकी स्मृति करनेसे लोकरजनके कार्य सहजमे सम्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण जैन-पद-रचयिताओको ससारका विश्लेषण करते समय माया, मिथ्यात्व, शरीर, विकार आदिका विवेचन भी करना पड़ा है। ससार और प्रलोभनोंसे बचनेके लिए जैन-पद-रचयिताओने मानव प्रवृत्तियोंका सुन्दर विश्लेषण किया है। इनके मूलस्रोत एव प्रेरणा दोनोंका स्थान हृदय है। जैन सन्तोका भगवत्प्रेम शुष्क सिद्धान्त नहीं, अपितु स्थायी प्रवृत्ति है। यह आत्माकी अशुभ प्रवृत्तिका निरोध कर शुभ प्रवृत्ति-का उदय करता है, जिसमे दया, क्षमा, शान्ति आदि श्रेयस्कर परिणाम उत्पन्न होते हैं।

जैन पदोंका वर्ण्य विषय भक्ति और प्रार्थनाके अतिरिक्त मन, शरीर, इन्द्रिय आदिकी प्रवृत्तियोंका अत्यन्त सूक्ष्मता और मार्मिकताके साथ

विवेचन करना एवं आध्यात्मिक भूमियोंका स्पर्श करते हुए सहज समाधि-को प्राप्त करना है। साधक अपने इस शरीरका उपयोग मोक्षप्राप्तिके लिए करता है, वह विश्वके भौतिकवादकी चकाचौंधसे अविचलित रहकर स्वानुभूति-द्वारा आत्माकी विभाव परिणतिको स्वभाव परिणतिके रूपमें परिवर्तित करता है। जैनपदोंमें यद्यपि ऊँचे दार्शनिक सिद्धान्तोंका भी विश्लेषण है, परन्तु जीवनकी व्याख्या अपनी प्रवृत्तियोंका परिष्कार कर जीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त करनेका संकेत भी निहित है।

हिन्दी साहित्यमें गीत और पद-रचयिताओंमें निर्गुण सन्त कबीर रविदास, दादू, मलूकदास और सगुण सम्प्रदायमें सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियोंका नाम आदरके साथ लिया जाता है। इन सन्त और भक्तोंने पदोंकी रचना कर हिन्दी साहित्यमें भक्ति और अध्यात्म-सम्बन्धी अपूर्व व्याख्याएँ प्रस्तुत की है। निर्गुण सन्तोंके तात्त्विक सिद्धान्त उप-निषदोंके वेदान्तवाद तथा जैनोंके शुद्धात्मवादसे बहुत साम्य रखते हैं। इन सबोंकी भक्तिकी मूलप्रेरणा वेदान्त या शुद्धात्मवादसे मिली, इसी कारण कबीरने बताया—"सबके हृदयमें परमात्माका निवास है। उसे बाहर न ढूँढकर भीतर ही ढूँढना चाहिये। आत्मा ही परमात्मा है, दोनोंमें एकत्वभाव है। इस प्रकार प्रत्येक जीव परमात्मा है। यही नहीं, एक अर्थमें जो कुछ है सब परमात्मा है।" निर्गुण सन्तोंने अवतारवादका खण्डन किया। पूजा-अर्चा जिसका सम्बन्ध दृश्य पदार्थोंसे है, इनके विचारोंके प्रतिकूल है। भौतिक शरीरकी दृष्टिसे कोई भी व्यक्ति ईश्वर नहीं हो सकता है। आत्माकी दृष्टिसे सभी आत्माएँ ब्रह्म हैं। अतएव सन्तोंके मतमें जन्म-मरणसे रहित परब्रह्म ही परमात्मा हो सकता है। इसी परब्रह्मका नाम-स्मरण, भक्ति और प्रेम करनेसे कल्याण होता है। जब इसका प्रेम चरमावस्थाको प्राप्त हो जाता है तो साधककी आत्मा उसी ब्रह्ममें मिल जाती है। इसी भक्ति-भावनाको लेकर कबीर, रविदास आदि सन्तोंने अध्यात्म-पद रचे। इन पदोंकी तुलना अनेक जैन पदोंसे की जा सकती

है। कबीरके रहस्यवाद-सम्बन्धी अनेक पद बनारसीदासके पदोंके समकक्ष हैं। कबीरका मानवीय विकारों और प्रवृत्तियोंका विश्लेषण तो अनेक अशोंमें जैन-पद-रचयिताओंसे समानता रखता है।

मोक्षप्राप्तिका मूलसाधन ब्रह्म या शुद्धात्माकी स्मृति है। मनुष्य सासारिक स्वार्थपरक कार्योंमें जैसे-जैसे रत होता जाता है, वैसे-वैसे यह स्मृति भी क्षीण होती जाती है। कबीरने बताया है कि इस सासारिक द्वन्दमें रहते हुए भी कभी-कभी ब्रह्मकी स्मृतिकी झलक प्राप्त हो सकती है। मनुष्य अपने स्वरूपको भूल जानेसे ही ससारमें परिभ्रमण कर रहा है। भ्रान्तिसे जैसे सिह जलमे पडनेवाले प्रतिबिम्बको अपना शत्रु समझ क्रुद्ध हो उससे युद्ध करने लगता है और अनेक विपत्तियोंको सहन करता है, अथवा शुक जैसे अपने उडनेकी चालको भूलकर व्याधकी नलिनीपर बैठते ही, उसके घूम जानेसे उलटा लटक जाता है और समझने लगता है कि नलिनीने उसे पकड़ लिया है; इसी प्रकार यह आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर नाना प्रकारके कष्टोंको उठा रहा है—

अपनपौ आप ही बिसरौ।

जैसे सोनहा काँच-मन्दिर में भरमत भूँकि मरो ॥
जो केहरि बपु निरखि कूपजल प्रतिमा देखि परो।
ऐसेहिं मदगज फटिकशिला पर दसननि आनि अरो ॥
मरकट मुठी स्वाद ना बिसरै घर घर नटत फिरो।
कह 'कबीर' नलनी कै सुवना तोहि कौने पकरो ॥

कवि दौलतरामने इसी आशयका विवेचन किया है। आत्मस्वरूपकी विस्मृतिके कारण ही ससारमें अनेक कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। भ्रमवश ही यह जीव अपनेमे भिन्न पर-पदार्थोंको अपना समझ गया है। कवि कहता है—

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ।
ज्यों शुक नभचाल बिसरि नलिनी लटकायौ ॥
चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरशबोधमय विशुद्ध,
तजि जड़रस-फरस-रूप, पुद्गल अपनायौ ॥
इन्द्रिय सुख दुख में नित्त, पाग राग रुख में चित्त,
दायक भव-विपत्ति-वृन्द बन्धको बढ़ायौ ॥
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥

× × ×

आपा नहिं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे।
देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिवमगचारी रे ॥

× × ×

आप भ्रमविनाश आप आप जान पायौ,
कर्णधृत सुवर्ण जिमि चितार चैन थायौ।
मेरो तन तनमय तन, मेरो मैं तनको त्रिकाल,
यौं कुबोध नश सुबोध मान जायौ ॥ आप० ॥
यह सुजैनबैन ऐन, चिन्तत पुनि पुनि सुनैन,
प्रगटौ अब भेद निज, निवेद गुन बढ़ायौ ॥ आप० ॥
यौं ही चित अचित मिश्र, ज्ञेय न अहेय हेय,
इंधन धनंजय जैसे, स्वामि योग गायौ ॥ आप० ॥
भँमर पोत छुटत झटति, बाछित तट निकटत जिमि,
मोह राग रुख हरजिय, शिवतट निकटायौ ॥ आप० ॥
विमल सौख्यमय सदीव, मैं हूँ मैं नहिं अजीव,
जोत होत रज्जुमय, भुजंग भय भगायौ ॥ आप० ॥
यौं ही जिनचंद सुगुन, चिंतत परमारथ चुन,
'दौल' भाग जागो जब, अल्प पूर्व आयौ ॥ आप० ॥

तुलनात्मक दृष्टिसे कबीर और दौलतरामके उपर्युक्त पदोंमें उपमान प्रायः समान हैं। भ्रमको व्यक्त करनेके लिए कबीरने सुआकी नलिनी, कर्णधृत स्वर्ण, सिंहका प्रतिबिम्ब, स्फटिकशिलामें गजके दांतोका प्रतिबिम्ब और बन्दरका घर-घर नाचना आदि दृष्टान्त दिये है। कवि दौलतराम ने सुआकी नलिनी, कर्णधृत स्वर्ण आदि उदाहरणोंको ही लेकर भ्रम-का सुन्दर विश्लेषण किया है। कबीरदासने जहाँ उदाहरणोंके द्वारा ही भ्रमकी अभिव्यक्ति की है, वहाँ दौलतरामने भ्रमकी अभिव्यक्तिमें भ्रम क्या है, किस प्रकार हो रहा है तथा उसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है, आदि विवेचन भी किया है। अर्थात् उनकी दार्शनिक भूमि अपेक्षाकृत विशद है।

कबीरने मायाका विवेचन करते हुए बतलाया है कि इस मोहिनी मायाने सारे संसारको ठग लिया है। मायाके कारण ही विष्णु, शिव आदि देव भी लक्ष्मी और भवानीके आधीन है। मायाकी व्यापकताका विवेचन करता हुआ कवि कहता है—

> **माया महा ठगिनी हम जानी।**
> **तिरगुन फाँस लिये कर डोले, बोलै मधुरी बानी॥**
> **केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।**
> **पंडा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ में भइ पानी॥**
> **योगी के योगिनी ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।**
> **काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहु के कौड़ी कानी॥**
> **भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।**
> **कहै 'कबीर' सुनो हो संतो, यह सब अकथ कहानी॥**

कवि भूधरदासने भी मायाके उसी ठगिनी रूपका कबीरसे मिलता-जुलता विवेचन किया है। मायाको ठगिनीका रूपक दोनोंका समान है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ कबीरने केवल उदाहरणों-द्वारा माया

की धूर्तताका विश्लेषण किया है, वहाँ कवि भूधरदासने मायाके मोहक कार्योंका निरूपण करते हुए उसकी ठगाईका परिचय दिया है। भूधरदास-के इस पदमे व्यंग्यका पुट रहनेसे सर्व साधारणको अधिक प्रभावित करता है। कवि भूधरदास कहता है—

सुन ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछिताया॥ सुन०॥
आपा तनक दिखाय बीज ज्यों, मूढ़मती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनौं, अंत नरक पहुँचाया॥ सुन०॥
केते कंथ किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किसही सौं नहिं प्रीति निबाही, वह तजि और लुभाया॥ सुन०॥
'भूधर' ठगत फिरै यह सबकौं, भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनीको ठग बैठे, मैं तिसकों सिर नाया॥ सुन०॥

नाम-सुमिरनको सभी धर्मोंने एक विशेष स्थान दिया है। नाम-स्मरण करनेसे मन पवित्र होता है तथा आराध्यके उज्ज्वल गुणोंके प्रति सहज ही आकर्षण उत्पन्न होता है। वस्तुतः नामस्मरण बाह्य साधना नही है, किन्तु एक आध्यात्मिक साधना है, ध्यानका एक भेद है। जो विना भाव के मन्त्रवत् नाम दुहरानेको सब कुछ मानते हैं, कवीरने उनका खडन किया है। कबीर ने कहा है—"पडित व्यर्थ ही बकवाद करते है, यदि राम कहने मात्रसे ही ससारको मुक्ति मिल जाय तो 'खाँड' शब्दके कहने मात्रसे ही हमारा मुँह मीठा हो सकता है। यदि 'आग' कहनेमात्रसे ही पाँव जलने लगे अथवा 'पानी' कहनेमात्रसे ही प्यास जाती रहे तथा 'भोजन' कहने मात्रसे ही भूख मिट जाय तो सभी मुक्तिके भागी हो सकेगे। परन्तु केवल ऐसे मान्त्रिक स्मरणोसे वास्तवमे कोई लाभ नहीं।" जैन मान्यतामे भी विना हार्दिक भावके नामस्मरण या माला फेरना निरर्थक माना गया है। **"यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः"** भावरहित नामस्मरण या

भक्ति करनेसे आत्मिक विकास नहीं होता है। जैनधर्मकी उपासना साधनामय है, दीनताभरी याचना या खुशामद नहीं है। शुद्धात्मानुभूतिके गौरवसे ओत-प्रोत है, दीनता, क्षुद्रता और स्वार्थपरताको इसमें तनिक भी स्थान प्राप्त नहीं है। नामस्मरण और भगवद्भजनको जैन साहित्यकारोंने शुभपरिणति रूप मानते हुए भी शुद्ध परिणतिका प्रबल साधन माना है। उक्त दोनों साधन आत्माको ध्यान या समाधिकी ओर प्रेरित करते हैं। जो केवल शब्दोच्चारण कर जाप कर लेनेमें अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री मानते हैं, वे वस्तुतः अन्धेरेमें हैं। हार्दिक भावनाओंका उपयोग—प्रभु-गुणोंका ध्यान रहना परमावश्यक है। अतः कबीरके नामस्मरण-विषयक पद जैन पदोंसे समता रखते है। कबीरने भी शब्दोच्चारणकी अपेक्षा भावको प्रधानता दी है। ससारके बाह्य द्वन्दोंमें सलग्न रहनेपर भी साधक आराध्यके स्मरणसे अपने स्वरूपको उपलब्ध करनेमें समर्थ होता है। धीरे-धीरे वह 'सोऽहं' का अनुभव करने लगता है और आगे चलकर "शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, निरंजनोऽहं" की अनुभूति करता हुआ अपनेमें विचरण करता है। कबीर कहता है—

भजु मन जीवन नाम सबेरा।
सुन्दर देह देख जिन भूलो, झपट लेत जस बाज बटेरा।
यह देही को गरब न कीजै, उड़ पंछी जस लेत बसेरा॥
या नगरी में रहन न पैहो, कोइ रहि जाय न दुख घनेरा।
कहैं 'कबीर' सुनो भाई साधो, मानुष जनम न पैहो फेरा॥

× × ×

नाम सुमिर पछतायेगा।
पापी जियरा लोभ करत है, आज काल उठि जायेगा॥
लालच लागी जनम गँवाया, माया भरम भुलायेगा।
धन जोबन का गरब न कीजै, कागद ज्यों गलि जायेगा॥

जब जम आइ केस गहि पटकैं, ता दिन कछु न बसायेगा।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं, तो मुख चोटा खायेगा॥
धरमराय जब लेखा माँगे, क्या मुख लेके जायेगा।
कहत 'कबीर' सुनो भई साधो, साध संग तरि जायेगा॥

कवि दौलतरामने इसी आशयके अनेक पदोकी रचना की है। निम्न-पद तो बहुत अशोमें मिलते-जुलते है। पाठक देखेंगे कि दोनों ही भक्त कलाकारोमे कितना साम्य है—

भगवन्त भजन क्यों भूला रे।
यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि-बबूला रे॥ भगवन्त०॥
इस जोबन का कौन भरोसा, पावक में तृण-पूला रे।
काल कुदाल लिये सिर ठाड़ा, क्या समझै मन फूला रे॥ भगवन्त०॥
स्वारथ साधैं पाँच पाँव तू, परमारथ कौं लूला रे।
कहु कैसे सुख पैहै प्राणी, काम करै दुखमूला रे॥ भगवन्त०॥
मोह पिशाच छल्यो मति मारै, निज कर कंध बसूला रे।
भज श्रीराज मतीवर 'भूधर', दो दुरमति सिर धूला रे॥भगवन्त०॥

× × ×

जिनराज ना विसारो, मति जन्म वादि हारो।
नर भौ आसान नाहिं, देखो सोच समझ वारो॥ जिनराज०॥
सुत मात तात तरुनी, इनसौं ममत निवारो।
सबही सगे गरज के, दुखसीर नहिं निहारो॥ जिनराज०॥

नामस्मरण और भगवत् भजन करनेपर ज़ोर देते हुए बुधजन, आनन्दघन, भागचन्द आदिने भी अनेक सरस पदोंकी रचना की है।

मोह, अहंकार, कपट, आशा, तृष्णा, निद्रा, निन्दा, कनक-कामिनी, सन्तोष, धैर्य, दीनता, दया, सत्य, अहिंसा, मानसिक विकार, भौतिक जगत्की निस्सारता आदि-विषयक पदोमे कबीर और जैनपद रचयिताओं-

के भावोंमें साम्य-सा है। अनेक पदोंमें तो केवल शब्दोंका अन्तर है। कहीं-कहीं कबीरके दो-तीन पदोंके भाव दौलतराम, भूधर, बुधजनके एक पदमें आ गये है और एकाध स्थलपर जैन-पद-रचयिताओंके दो-तीन पदों-के भाव कबीरके एक ही पदमे अभिव्यक्त हुए है। कबीरका चरखा और तँबूरेका रूपक भूधरदासके चरखाके रूपकसे कितना साम्य रखता है—

चरखा चलै सुरत बिरहिन का।
काया नगरी बनी अति सुन्दर, महल बना चेतन का।
सुरत भाँवरी होत गगन में, पीढ़ा ज्ञान-रतन का॥
मिहीन सूत बिरहिन कातैं, माँझा प्रेम भगति का।
कहैं 'कबीर' सुनो भई साधो, माला गूँथो दिन रैन का॥

× × ×

साधो यह तन ठाठ तँबूरे का।
खेंचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजूरे का।
टूटे तार बिखरि गई खूँटी, हो गया धूरम धूरे का॥
या देही का गरब न कीजै, उड़ि गया हंस तँबूरे का।
कहत कबीर सुनो भई साधो, अगम पंथ कोइ सूरे का॥

भूधरदास कहते हैं—

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना।
पग खूँटे द्वय हालन लागे, उर मदरा खखराना।
छीदीं हुई पाँखड़ी पसली, फिरे नहीं मनमाना॥ चरखा०॥
रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसे खूँटै।
सबद सूत सूधा नहिं निकसै, घड़ी घड़ी पल टूटै॥ चरखा०॥
आयु माल का नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, वैद बाढ़ई हारे॥ चरखा०॥

नया चरखला रंगा रंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखें नहिं भावै॥ चरखा०॥
मोटा महीं कात कर भाई, कर अपना सुरझेरा।
अन्त आग में ईंधन होगा "भूधर" समझ सबेरा॥ चरखा०॥

रूपकोंमें जैन-पद-रचयिताओंने निर्गुण सन्तोंके समान आध्यात्मिक रहस्योंकी अभिव्यक्ति अपूर्व ढगसे की है। आध्यात्मिक जीवनके बीज आत्मनिरीक्षण और पश्चात्तापकी भावनापर जैन कवियोंने विशेष जोर दिया है।

उपासनाके लिए उपास्यके विशिष्ट व्यक्तित्वकी आवश्यकता-समक्ष सगुण भक्तिका आविर्भाव हुआ। सगुण उपासकोंमें कृष्णभक्ति-शाखा और रामभक्ति-शाखामें श्रेष्ठ कलाकार हुए, जिन्होंने पद और गीतोंकी रचनाकर हिन्दीके भण्डारकी वृद्धि की। महाकवि सूरदासने पद-साहित्यमें नवीन उद्भावनाएँ, कोमल कल्पनाएँ और वैदग्ध्यपूर्ण व्यञ्जनाएँ की। वस्तुतः सूर भाव-जगत्के सम्राट् माने गये है। हृदयकी जितनी गहरी थाह सूरने ली, उतनी शायद ही किसी अन्य कविने ली हो। यद्यपि सूरने अपने पदोंकी रचना जयदेव और विद्यापतिकी गीत-पद्धतिपर की है; फिर भी सजीवता, चित्रमयता, मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकताके कारण इनके पदोंमें मौलिकता पूर्णरूपसे विद्यमान है। जैन-पद-रचयिताओंसे सूरके पद कलापक्ष और भावपक्षकी दृष्टिसे अनेक अशोंमें साम्य रखते हैं।

जिस प्रकार सूरने गौरी, सारंग, आसावरी, सोरठ, भैरवी, धनाश्री, ध्रुपद, विलावल, मलार, जैतिश्री, विहाग, झंझोरी, सोहनी, कान्हरा, केदारा, ईमन आदि राग-रागनियोंमें पदोंकी रचना की है, उसी प्रकार प्रभाती, बिलावल कनड़ी, रामकली, अलहिया, आसावरी, जोगिया, माझ, टोडी, सारग, लूहरि सारंग, पूरवी, गौड़ी, काफी कनड़ी, ईमन, झझोरी, खंमाच, अहिंग, गारो कान्हरो, केदारा, सोरठ, विहाग, माल-

कोस, परज, कालिंगड़ो, गजल, मल्हार, रेखता, बिलावल, वरवा, सिंधड़ा, ध्रुपद, आदि अनेक राग-रागिनियोंमें जैन-पद-रचयिताओंने पदों-की रचना की है। संगीतका माधुर्य सूरके पदोके समान ही जैनपदोंमें भी विद्यमान है।

अन्तर्जगत्के चित्रणकी दृष्टिसे सूरके अनेक पद जैन-पदोके समान भावपूर्ण हैं। वात्सल्य, शृगार और शान्त इन तीनों रसोंका परिपाक सूरके पदोंमे विद्यमान है। वात्सल्य रसके चित्रणमें बालमनोविज्ञान, शृङ्गार-विषयक पदोंमें प्रेमकी वृत्तिका व्यापक दिग्दर्शन एव भक्ति-विषयक पदोंमें आत्माभिव्यक्ति पूर्ण रूपसे हुई है। विनयके पदोके आरम्भमे आराध्य श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कवि कहता है—

चरनकमल बन्दौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धेको सब कुछ दरसाइ॥
बहिरो सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराइ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बार-बार बन्दौं तिहि पाई॥

जैनपदोमें इस आशयके अनेक पद है। यहाँ तुलनाके लिए कवि बुधजनका एक पद उद्धृत किया जाता है। पाठक देखेगे कि दोनोमें कितनी समानता है—

तुम चरननकी शरन, आय सुख पायौ।
अबलौं चिर भव वन मैं डोल्यो, जन्म जन्म दुख पायौ॥ तुम०॥
ऐसो सुख सुरपति कै नाहीं, सौ मुख जात न गायौ।
अब सब सम्पति मो उर आई, आज परम पद लायौ॥ तुम०॥
मन वच तन तैं दृढ़ करि राखौं, कबहुँ न ज्या बिसरायौ।
बारम्बार बीनवै 'बुधजन', कीजै मनको भायौ॥ तुम०॥

सूरदासने अपने मनका परिष्कार करते हुए अपनी दूषित प्रवृत्तियोंकी निन्दा की है। तथा अपने आराध्यके समक्ष अपनी आत्मालोचना करते

हुए अपनी कमजोरियों और त्रुटियोंका यथार्थ प्रतिपादन किया है। जैन-पद-रचयिताओंमे कवि भागचन्दके पद सूरदासके इन पदोंसे बहुत कुछ साम्य रखते हैं। आत्मालोचन और पश्चात्ताप-सम्बन्धी एक-दो पद तुलनाके लिए उद्धृत किये जाते हैं। सूरदास कहते हैं—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
तुम सौं कहाँ छिपी करुनामय, सबके अन्तरजामी॥
जो तन दियो ताहि बिसरायौं, ऐसौ नोन-हरामी।
भरि-भरि द्रोह विषै को धावत, जैसे सूकर ग्रामी॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयनि संग बिसरामी।
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की, निसदिन करत गुलामी॥
पापी परम, अधम अपराधी, सब पतितनि में नामी।
'सूरदास' प्रभु अधम-उधारन, सुनियै श्रीपति स्वामी॥

कवि भागचन्द भी पश्चात्ताप करते हुए कहते है—

मो सम कौन कुटिल खल कामी,
तुम सम कलिमल दलन न नामी।
हिंसक झूठ वाद मति विचरत, परधन-हर परवनितागामी।
लोभित चित नित चाहत धावत, दशदिश करत न खामी॥मो सम०॥
रागी देव बहुत हम जाँचे, राचे नहिं, तुम साँचे स्वामी।
बाँचे श्रुत कामादिक-पोषक, सेये कुगुरु सहित धन धामी॥ मो सम०॥
भाग उदय से मैं प्रभु पाये, वीतराग तुम अन्तरजामी।
तुम धुनि सुनि परजय में परगुण, जाने निजगुण चित बिसरामी॥मो सम०॥
तुमने पशु पक्षी सब तारे, तारे अंजन चोर सुनामी।
'भागचंद' करुणाकर सुखकर, हरना यह भवसन्तति छामी॥मो सम०॥

कवि सूरदासने विषयोकी ओर जाते हुए मनको रोका है और

उसे नाना प्रकारसे फटकारते हुए आत्माकी ओर उन्मुख किया है। नाना प्रकारकी आकांक्षाएँ और तृष्णाएँ ही इस मनको आकृष्ट कर विषयोंमे सलग्न कर देती हैं, जिससे भोला असहाय मानव विषयेच्छाओं की अग्निमे जलता रहता है। अनादिकालसे मानव विकार और वासनाओंके आधीन चला आ रहा है, जिससे इसे जीवनकी विविध प्रवृत्तियों-के अनुशीलनका अवसर ही नही मिला है। कवि सूरदासने मनको समझाते हुए अहकार और ममकारकी भावनासे मनको दूर रखनेकी बात कही है। वास्तवमे अध्यात्म-आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है, जब मन और हृदयका परिष्कार कर लिया जाय। इस स्वार्थी ससारके बाह्य रूपको देखकर मनुष्य अपनेको भूल जाता है, इसी कारण वह क्षणिक इन्द्रिय-जन्य सुखोंमे आनन्दका अनुभव करता है। चिरन्तन आनन्द काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि विकारोंके परास्त करने पर ही प्राप्त हो सकता है। सत्य, सन्तोष और पवित्रता तभी आ सकती है, जब मानव अपनी आत्मामें ज्ञान और ध्यानकी अग्निको प्रज्वलित करें। ममत्व भाव ही वस्तुतः अनेक दुःखों की जड है। ममता के कारण ही पर-वस्तुओंको मानव अपनी समझता है। निज प्रकृतिमे दोष उत्पन्न कर अपनेको दुःखी बनाता है। प्रयोजनीभूत तत्त्वोंका चिन्तन और मनन न कर शरीरको ही अपना समझ लेता है। कवि सूरदास मानवके अज्ञान भ्रमको दूर करता हुआ कहता है—

रे मन मूरख, जन्म गँवायो।
कर अभिमान विषय-रस राँच्यो, स्याम सरन नहिं आयो॥
यह संसार फूल संमर कौ, सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कछु नहिं आयो॥
कहा भयो अब के मन सोचे, पहले नाहिं कमायो।
कहत 'सूर' भगवन्त-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायो॥

× × ×

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवरके, सबै पात झरि जैहैं॥
घरके कहैं, बेगि ही काढ़ो, भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतम सों प्रीत घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं॥

× × ×

रे मन जन्म अकारथ जात।
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यों तरुवरके पात॥
सन्निपात कफ कण्ठ-विरोधी, रसना टूटी बात।
प्रान लिये जम जात मूढ़मति, देखत जननी तात॥

कवि सूरदासने ऊपर जिस प्रकारका संसार, शरीर और विषयोंके सम्बन्धमें चित्रण किया है, ठीक वैसी ही भावाभिव्यञ्जना जैन कवियोंने की है। जैन-पद-रचयिताओंने बताया है कि हम स्वभावसे सुखी, ज्ञानी तथा सहज आनन्द रूप चेतन है। अपने इस स्वभावके भूल जानेके कारण ही हम दुःखी हो रहे हैं। शरीर जड़ है, विश्वके अन्य पदार्थ भी जड़ हैं। यद्यपि चैतन्य आत्माके गुणोंकी अभिव्यक्ति शरीर आदि निमित्तोंके आधीन है, पर स्वरूपतः आत्मा इनमें भिन्न है। मानवको दुःख कर्म-बन्धके कारण आत्माके विकृत हो जानेसे है। आत्माकी राग-द्वेष रूप परिणति ही कर्मबन्धका कारण है, अतः इस शरीरको परपदार्थ समझ कर शुद्धात्म-तत्त्वको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। व्यर्थ ही मानव राग-द्वेष रूप परिणतिमें आसक्त रहता है तथा इसी आसक्तिमें इस अमूल्य जीवनको व्यतीत कर देता है। सभी जैन कलाकारोंने जीवन और जगत्‌के विविध रहस्योंका उद्घाटन सहृदय सरस कविके रूपमें किया है, केवल दार्शनिक बनकर नहीं, यद्यपि दर्शनकी सबसे बड़ी थाती उनके पास थी। इसी कारण इनके जीवन-सम्बन्धी इन विश्लेषणोंमें ठोस संसारकी वास्तविकता कल्पना और भावनाके मनोरम आवरणमें निहित है। जीवनके

प्रति इनका एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है, जिससे जगत्‌के विभिन्न सत्योंका विश्लेषण बड़े ही सुन्दर ढगसे किया है। अहकार और ममकार जो कि जीवनके सबसे प्रबल विकार है, जिनके कारण हमारा जीवन निरन्तर विचलित रहता है, का स्पष्ट और भावनात्मक निरूपण किया गया है। सूरदासके ही समान कवि बनारसीदास भी कहते हैं—

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्रानी।
जैसैं निरख मीरिचिका, मृग मानत पानी॥
ज्यो पकवान चुरैलका, विषयरस त्यो ही।
ताके लालच तू फिरे, भ्रम भूलत यों ही॥
देह अपावन खेटकी, अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करम की, तैं अपनी करि जानी॥

कवि भूधरदास भी ससारके विषयोंसे सावधान करते हुए कहते हैं—

मेरे मन सुवा, जिनपद पींजरे बसि, यार लाव न बार रे।
संसार मे बलबच्छ सेवत, गयो काल अपार रे।
विषय फल तिस तोड़ि चाखे, कहा देख्यो सार रे।

× × ×

कवि बुधजन कहते हैं—

रे मन मूरख बावरे मति ढील लावै।
अपरे श्री अरहन्तकौं, यौ औसर आवै॥
नर-भव पाना कठिन है, यौ सुरपति चाहै।
को आने गति काल की, यौ अचानक आवै॥
छूट गये अब छूटते, जो छूटा चावै।
सब छूटैं या जालतैं, यौ आगम गावै॥

भोग रोग को करत हैं, इनकौं मत लावै ।
ममता तजि समता गहौ, 'बुधजन' सुख पावै ॥

× × ×

क्यों रे मन तिरपत नहिं कोय ।
अनादि काल का विषयन राच्या, अपना सरबस खोय ॥
नेकु चाख कै फिर न बाहुड़े, अधिका लपटै जोय ।
ज्यों ज्यों भोग मिलै त्यों तृष्णा, अधिकी अधिकी होय ॥

× × ×

मन रे तेने जन्म अकारथ खोयो ।
तू डोलत नित जगत धंध में, ले विषयन रस लुब्धो ॥

× × ×

इस प्रकार जैन कवियोने आशाके निन्द्य रूपकी विवेचना सूरदास के समान ही की है। वस्तुतः आशा इतनी प्रचण्ड अग्नि है कि इसमें जीवनका सर्वस्व स्वाहा हो जाता है। जैन कवियोने इसी कारण मनकी विविध दशाओंका विवेचन सूक्ष्म रूपसे किया है।

महाकवि तुलसीदासके पदोंकी प्रसिद्धि भी हिन्दी-साहित्यमें अत्यधिक है। इन्होंने बुद्धिवादके साथ हृदयवादका भी समन्वय किया है। इनके आध्यात्मिक और विनय-विषयक पदोका सकलन विनयपत्रिकामे है। इनके मतसे अन्तस्‌की शुद्धिके लिए भक्ति आवश्यक है, इसके लिए प्रभु कृपा होनी चाहिये।

भक्तिके लिए दो बातें आवश्यक है—प्रथम आराध्यकी अपार वैभवशालीनता, शक्तिपूर्णता और सर्वगुणसम्पन्नताका अनुभव और द्वितीय अपनी तुच्छता, आत्मग्लानि, दीनता और असमर्थताका प्रदर्शन सच्चे भक्त अपनी दीनता या असमर्थता प्रदर्शित करनेमे अधिक

आनन्दानुभूतिका अनुभव करते हैं। कवि तुलसीदासने अपने पदों और भजनोंमें भक्तिके सभी साधन—भजन (नाम-स्मरण), शरणागत भाव, चरित्रश्रवण-मनन-कीर्त्तन, शान्त स्वभावकी प्राप्तिका यत्न, आराध्यके स्वरूपका ध्यान, मन और शरीरके सयम-द्वारा साध्यकी प्राप्ति, आराध्यसे सम्बद्ध गंगा, चित्रकूट आदि तीर्थोंका वन्दन-स्मरण एव सत्सग, साधु-सेवा, शिवभक्ति, हनुमद्भक्ति आदिका निरूपण किया है।

दास्यभावकी भक्ति न होनेपर भी जैन-पद-रचयिताओंने तुलसीदासके समान ही अपने पद और भजनोंमें भक्त्यङ्गोंको स्थान दिया है। आत्म-शुद्धिके लिए भी रागात्मिका भक्तिको लाभदायक बतलाया है। जैन-कवियोंके द्वारा रचित पद-साहित्य अन्तःकरणमें रस उत्पन्न कर मनको सब ओरसे हटाकर उसीमें लीन करता है। इनके पद भाव, भाषा, शैली और रसकी दृष्टिसे कबीर, सूर, तुलसी आदि हिन्दीके कवियोंसे किसी भी बातमें हीन नहीं है। तुलसीने अपनी विनयपत्रिका गणेशजीकी स्तुतिसे आरम्भ की है। जैनकवि वृन्दावन भी अपने आराध्य ऋषभनाथकी वन्दनासे ही कार्यारम्भ करनेकी ओर सकेत करता है।

कवि तुलसीदासने भगवान्से प्रार्थना की है कि हे प्रभो, आपके चरणों को छोड़ और कहाँ जाऊँ ? ससारमें पतितपावन नाम किसका है ? जो दीनोंपर निष्काम प्रेम करता है वही सच्चा आराध्य हो सकता है। कविने अनेक उदाहरणों-द्वारा भगवान्की सर्व-शक्तिमत्ताका विवेचन किया है। उसने देव, दैत्य, नाग, मुनि आदिको मायाके आधीन पाया, अतएव वह सर्वव्यापक आराध्यके महत्त्वको बतलाता हुआ कहता है—

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पियारे॥ १॥
कौन देव बराइ विरद-हित, हठि-हठि अधम उधारे।
खग, मृग, व्याध पखान विटप जड़, जवन-कवन सुरतारे॥ २॥

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया बिबस बिचारे।
तिनके हाथ 'दास तुलसी' प्रभु, कहा अपनपौ हारे॥ ३॥

कवि दौलतराम भी इसी आशयका विश्लेषण करते हुए कहते हैं—

जाऊँ कहाँ तज शरन तिहारे।
चूक अनादितनी या हमरी, माफ करो करुणा गुनधारे॥ १॥
डूबत हों भवसागरमें अब, तुम बिन को मुह वार निकारो॥ २॥
तुम सम देव अवर नहिं कोई, तातैं हम यह हाथ पसारे॥ ३॥
मोसम अधम अनेक उधारे, बरनत हैं श्रुत शास्त्र अपारे॥ ४॥
'दौलत' को भवपार करो अब, आया है शरनागत थारे॥ ५॥

कवि तुलसीदासके पदोमे मनका विश्लेषण, जगत्की क्षणभगुरता एव आत्मशोधन और हरिस्मरणकी आवश्यकताका प्रतिपादन जैन-पद-रचयिताओके समान ही किया है। कवि कहता है—

मैं हरि, पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतितपावन, दोउ बानक बने।

कवि बुधजनने भी इसी आशयके अनेक पद रचे हैं—

पतित-उधारक दीनदयानिधि, सुन्यौ तोहि उपगारो।
मेरे औगुनपै मति जावो, अपनो सुजस विचारो॥

× × ×

पतित उधारक पतित रटत है, सुनिये अरज हमारी।
तुमसो देव न आन जगत मैं, जासौं करिये पुकारी॥

इसी प्रकार कवि तुलसीदासके पद जैन पदोंके साथ भाव, भाषा और शैलीकी दृष्टिसे साम्य रखते है।

प्राचीन कवियोके अतिरिक्त आधुनिक छायावादी और रहस्यवादी कवियोंके आध्यात्मिक गीत भी जैनपदोंसे अनेक अशोंमें अनुप्राणित हैं।

जिस परिस्थितिमें ससीम आत्मा विश्वके सौन्दर्यमें असीम परमात्माके चिर सुन्दर रूपका दर्शन कर उससे तादात्म्य स्थापन करनेके लिए आकुल हो उठती है, उस स्थितिका चित्रण आध्यात्मिक जैनपदोंसे ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। महादेवी वर्माके चिन्तनपरक और भक्तिपरक गीतो-की भावसरणी रूप सौन्दर्य और भावनाओंके गाम्भीर्यकी दृष्टिसे महाकवि बनारसीदासके पदोंसे प्रभावित प्रतीत होती है। दोनों कलाकारोंके अन्तस्‌में दार्शनिक सिद्धान्तकी भावधारा एक-सी ही है। महादेवी वर्मा अव्यक्त सत्ताका अपने भीतर अनुभव करती हुई बुद्धिका विकास और भावनाका परिष्कार कर कहती है—

सखी मैं हूँ अमर सुहाग भरी !
प्रियके अनन्त अनुराग भरी !
किसको त्यागूँ किसको माँगूँ ;
है एक मुझे मधुमय विषमय;
मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय।
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ,
प्रतिरोमोंमें पुलकें लहरीं।

× ×

प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।

× ×

प्रिय सांध्य गगन,
मेरा जीवन !

कवि बनारसीदास भी आत्माकी रहस्यमयी प्रवृत्तियोंका उद्घाटन करते हुए कहते हैं—

बालम हुहुँ तन चितवन गागरि फूटी।
अँचरा गौ फहराय सरम गै छूटी॥ बालम०।
हूँ तिक रहूँ जे सजनी रजनी घोर।
घर करकेउ न जानै चहुँदिसि चोर॥ बालम०।
पिउ सुधियावत वनमें पैसिउ पेलि।
छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि॥ बालम०।
सँवरौ सारददामिनि और गुरु भान।
कछु बलमा परमारथ कहों बखान॥ बालम०॥

× ×

या चेतनकी सब सुधि गई।
व्यापत मोहि विकलता भई।

× ×

पिउ निरन्तर रहत सजनि।

× ×

विषय महारस चेतन विष समतूल।
छाड़हु वेगि विचार पापतरु मूल॥

कवि प्रसादके अनेक रहस्यवादी दार्शनिक गीतोंपर जैनपदोंकी भावसरणीका प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। कवि प्रसाद कहता है कि जीव वृद्धावस्था और मृत्युके भयसे सदा दुःखी रहता है। जीवनमे जितने परिवर्त्तन होते आ रहे हैं, उनकी कोई सीमा नहीं है। जीवनमें अमरता स्वानुभूतिको प्राप्त करना ही है। विश्वका अणु-अणु परिवर्त्तनकी ओर अग्रसर हो रहा है, परिवर्त्तन ही जीवनका एक सत्य सिद्धान्त है। अमर आत्मामें भी शाश्वत परिवर्त्तन होता है। यह जीवात्मा शुद्ध होनेके लिए प्रतिक्षण प्रयत्नशील है।

मानव जीवन अनेक तृष्णा और आकाक्षाओंका केन्द्र है। हृदयमें अनेक प्रकारकी लालसाएँ बराबर उठती रहती हैं। जैसे पहाड़की चोटियोंसे बादल टकराते है, उसी प्रकार अनेक इच्छाएँ जीवनके कगारोंसे टकराती रहती हैं। बादलोंके बरसनेसे नदी प्रवाहित होती है और पहाड़ी भूमिमे हाहाकार गुरु गर्जन करती हुई तरगायित हो आगे बढ़ती है, ठीक इसी प्रकार वेदना-परिपूर्ण आँसुओंके बरसनेसे नाना प्रकारकी वृत्तियाँ जाग्रत होती हैं। कवि प्रसाद जीवनके व्यर्थ बीतने पर पश्चात्ताप करता हुआ कहता है—

सब जीवन बीता जाता है,
धूप छाँह के खेल सदृश। सब०।
समय भागता है प्रतिक्षण में,
नव-अतीत के तुषारकण में,
हमें लगाकर भविष्य रण में,
आप कहाँ छिप जाता है। सब०।

कवि द्यानतरायने भी जीवनके यों ही बीतने पर पश्चात्ताप प्रकट किया है।

जीवन यों ही जाता है।
बालपने में ज्ञान न पायो, खेलि खेलि सुख पाया है।
समय निकलता है प्रतिक्षण ही, मूरख मदमें सोया है।
धूप-चाँदनी झिलमिल करती, के आशाओं का घेरा है।
धनि चेतन तू जाग आज रे, मूरख रैन बसेरा है।

× × ×

कवि प्रसादका चिरकालीन अशान्ति-चित्रण, जिसमें जीवनके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशाकी भावनाओंका मार्मिक चित्रण

है; कवि भूधरदास और कवि बुधजनके पदोंसे अनुप्राणित-सा प्रतीत होता है। कवि प्रसाद कहता है—

तुम जरा-मरणमें चिर अशान्त।
जिसको अबतक समझे थे सब जीवनमें परिवर्तन अनन्त,
अमरत्व वही सब भूलेगा तुम व्याकुल उसको कहो अन्त।

कवि भूधर कहता है—

आया रे बुढ़ापा मानी सुधि-बुधि बिसरानी।

× × ×

चंचल चित्त चरन थिर राखो, विषयन तैं बरजौ।
आनन तैं गुनगाय निरन्तर, पायन पाँय जजौ॥

अतएव जैनपदोंमें भावानुभूति कोमल और मधुर शब्दोंके सम्बलसे अभिव्यक्त हुई है। पदोंमें भावशृङ्खला सुलझी हुई है। कवि बनारसीदास, भूधरदास, भागचन्द, दौलतराम, बुधजन, आनन्दघनके पद हिन्दी साहित्यके लिए स्थायी निधि है। इनमें कबीर, सूर और तुलसी जैसे कवियोंसे अधिक ही आत्मानुभूति विद्यमान है।

तृतीयाध्याय

ऐतिहासिक गीतिकाव्य

अतीतसे सदा मानवका मोह रहा है। यह अतीत चाहे सुनहला हो अथवा मटमैला, पर उससे स्नेह करना मानवका स्वाभाविक गुण है। अतीतके प्रति इस प्रकार आकर्षित होनेका प्रधान कारण यह है कि भूतकालीन घटनाओंकी मधुर स्मृति वर्तमानकालीन कठिनाइयोंको विस्मृत करा सरस आनन्दानुभूति प्रदान करती है। बीती बातोंके चिन्तनमें अपूर्व रसानुभूति होती है, हृदय गौरव-रससे लबालब भर जाता है। मानवका आदिकालसे ही कुछ ऐसा अभ्यास है, जिससे वह यथार्थ जीवनके सकल्पोंसे ऊपर उठ कल्पना-लोकोंमे विचरण कर स्वर्णिम अतीतकी सजीव प्रतिमा गढ़ता है। पूर्वजोंका ज्वलन्त आदर्श नस-नसमे उष्ण रक्त प्रवाहित कर देता है। उज्ज्वल अतीतका प्रखर प्रकाश मानवके वर्त्तमान अन्धकारको विच्छिन्न कर उसे आलोकित करता है; और प्रस्तुत करता है उसे दानवतासे उठा मानवतामें।

भूतकालसे पृथक् रहकर मनुष्य अपने वर्त्तमानसे अभिज्ञ नहीं हो सकता है; क्योंकि वर्त्तमानके साथ भूतकाल इस प्रकार लिपटा हुआ है, जिससे प्रत्येक वर्त्तमान क्षण अतीत बनता जा रहा है। प्रत्येक क्षणका क्रिया-व्यापार अतीतके कोषमें सञ्चित होता जा रहा है तथा कालान्तरमे यही इतिहासका प्रतिपाद्य विषय बननेका उम्मेदवार है। यही कारण है कि ऐतिहासिक स्थलों एवं महापुरुषोंके नामोंके साथ हमारे हृदयका घनिष्ठ सम्बन्ध है और इसी कारण हम इतिहास-प्रेमी बनते है। मानव-ज्ञान-कोषका प्रत्येक कण इस बातका साक्षी है कि इतिहासका कलेवर साहित्यसे ही निर्मित होता है। प्रत्येक देश, प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक जाति

अपनी आदर्शमयी यशस्वी गौरव-गाथाओंके मौलिक उपादानोंको लेकर ऐतिहासिक काव्योंका सृजन करती हैं। क्योंकि इतिहास ही राष्ट्र और व्यक्तिके जीवनमे चैतन्य, स्फूर्त्ति, स्वाभिमान, आशा और गौरवकी भावना उत्पन्नकर मानवको गतिशील जीवनकी ओर अग्रसर करता है। जबतक हमें अपनी पुरातन सस्कृति और आचार-व्यवहारोंकी अभिज्ञता नही रहती, हम वास्तविक उन्नति करनेका अभ्यास नहीं कर पाते। महाभारतमें कृष्ण द्वैपायनने इसी कारण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और पुरावृत्त कथाओंका मिश्रित रूप इतिहासको कहा है। इतिहासमे अतीतके सभी चलचित्र चित्रित किये जाते है, जिससे आगामी परम्परा जागरण प्राप्त करती है। कवि या साहित्यकारोने मानवताको अक्षुण्ण रखनेके लिए सरस, रागात्मक, मर्मस्पर्शी और कोमल-कमनीय भावनाओकी अभिव्यञ्जनाके साथ ऐतिहासिक व्यक्तियोंके चरित्र, सास्कृतिक स्थलोंकी गौरवगाथा, धर्म और सस्कृति-प्रतिष्ठापकोंके त्याग-बलिदान एव सत्साहित्य निर्माताओंकी जीवनगाथा भी अभिव्यक्त की है। महाभारतके रचयिताने इसी कारण इतिहासको मोहान्धकारनाशक दीपक कहा है—

> धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
> पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥
> इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना ।
> लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् संप्रकाशितम् ॥

कौटिल्य अर्थशास्त्रके रचयिता चाणक्यने भी इतिहासके विषयका प्रतिपादन करते हुए पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रको अन्वितिका निरूपण करना इतिहासका विषय बताया है। वस्तुतः अतीत-चित्रणमे हमारा चित्त रमता है, सौन्दर्यका साक्षात्कार होता है और पुरातन उदात्त भावनाओका अवलम्बन पा हम सर्वतोमुखी विकासकी सीढीपर चढ़ते है। 'अहं' और 'मम' की भावनामें परिष्कार होता है, जिससे अन्तःविश्वासकी धारा अपनी प्रखरताके कारण ऊपरी

सतहपर लगे विकारोंको ही नहीं, अपितु आन्तरिक जगत्में प्रविष्ट हो प्रमाद और बुराइयोंको भी प्रक्षालित कर देती है। कला-सौन्दर्यके मर्मज्ञोंने जनोद्बोधनके लिए ऐतिहासिक काव्योंकी आवश्यकता इसीलिए प्रतिपादित की है, जिससे जीवनकी पलायन और दैन्यवृत्ति छूट जाय तथा भाव-वीचियाँ एक लयसे तरंगित हो पाठकको रसमग्न बना सकें। पूर्वजोंके बल, वैभव और विक्रमसे अनुप्राणित हो मानव जीवन-संग्राममें आन्तरिक और बाह्य द्वन्द्वोंके मध्य लडखडाता हुआ लोकमंगलके दीप प्रज्वलित कर सके तथा जीवनके चरम लक्ष्य आनन्दानुभूतिको पा सके।

भक्ति-विभोर हो जैन कवियोंने अपने धर्माचार्योंका जीवनवृत्त भी काव्योंमें अंकित किया है। इस आम्नायमें गुरुका स्थान देवके तुल्य माना गया है, अतः देवतुल्य उनकी भक्ति करना और अपनी श्रद्धा भावनाको उनके चरणोंमें उडेलना जीवनोत्थानके लिए परम आवश्यक है। हिन्दी भाषाके जैन कवियोंने सहस्रों गीत महापुरुषोंके कीर्त्ति-स्मरणमें रचे है, जिनमें सूक्ष्म और व्यापक धार्मिक भावनाएँ व्यक्त हुई है। सरस और मनोहर राग-रागनियोंमें रचे जानेके कारण इन गीतोंमे अपूर्व माधुर्य और लालित्य है। ये गीत शृंगार-भावनाके स्थानमें हृदयकी सात्त्विक और उदात्त भावनाओंको उत्तेजित करते हैं। जैन गुरु और मुनियोंने अपने धर्म-प्रचारके लिए जो त्याग या चमत्कार दिखलाया है, उसका स्मरण इन गीतोंमें किया गया है। गीतोंकी ओर लोकरुचि विशेष रहनेके कारण तथा अपनी भावानुभूतिको व्यक्त करनेकी सुविधा अधिक होनेके कारण जैन कवियोंने गीतिकाव्यका प्रणयन अधिक किया है।

तीर्थयात्रा या अन्य धार्मिक उत्सवोंके अवसरपर ऐतिहासिक गीत गाये जाते है, इन गीतोंमें पुरातन गौरव-गाथाएँ निहित रहती हैं। जिससे साधारण व्यक्तिमें धार्मिक भावना उमड जाती है और वह अपने धर्म-प्रचारके महत्त्वका मूल्याङ्कन कर लेता है। महापुरुषोंका कीर्त्ति-स्मरण करनेसे धृति और साहसकी भावना जागृत हो जाती है। दानवीरोंकी

यशोगाथाएँ दान देनेकी प्रेरणा तो देती ही हैं, पर साथ ही धर्मोत्कर्षके लिए आनन्दपूर्वक समस्त कष्टोको सहन करनेका संदेश भी हृदय-पटल पर अंकित कर देती है। वैयक्तिक विकासके बीज भी इनमें व्याप्त हैं।

ऐतिहासिक गीतोमे जैन कवियोंने ऐतिहासिक तथ्योंके साथ अनुभूति और कल्पनाका प्रदर्शन भी किया है। महत् अनुभूतिके बिना न तो ऐतिहासिक तथ्य ही प्रभावोत्पादक हो सकते है और न कल्पना ही ठहर सकती है। जिन गीतोंमें अनुभूतिका अभाव है, वे निष्प्राण हैं; उनमे मानव हृदयको रमानेवाले तत्त्व नहीं है। अनुभूतिहीन कल्पना और तथ्य-विवेचन जीवन-तत्त्वोको छोड़कर गतिशील होनेके कारण हृदयको अपने साथ नही ले जा सकते है, अतः हृदय-तत्त्वका अभाव होनेसे वे लोक-प्रिय नही बन सकते है। जिन गीतोंमें लोकानुरजनकी क्षमता होती है, वे ही जनताके हृदयमे रसानुभूति उत्पन्न कर सकते है तथा मानव इसी प्रकारके गीतोको अपना कण्ठहार बनाता है। कल्पना और वैचित्र्यकी प्रधानता रहने पर भी लोकानुरजनके अभावमे गीत जीवनको अनुप्राणित कर सकेंगे, इसमे सन्देह है। अतएव जैन कवियोंने ऐतिहासिक गीतोंमे जीवन-तत्त्वोका पूरा समावेश किया है, उन्होंने लोकानुरंजन और अनुभूति को पूरा अवकाश दिया है। यही कारण है कि ऐतिहासिक होनेपर भी जैन-गीत लोकप्रिय हैं।

यद्यपि समयके प्रभावसे अब अधिकाश पुराने गीतोंको जैन जनता भूल रही है, फिर भी इन गीतोंका महत्त्व सदा अक्षुण्ण रहेगा। गीति-काव्यके विकास-क्रमको अवगत करनेके लिए तथा जीवनकी भावधारासे परिचित होनेके लिए जैन ऐतिहासिक गीतिकाव्योंका विशेष महत्त्व है। भाषाके पारखियोके लिए तो ऐतिहासिक जैन गीतोंका अत्यधिक महत्त्व है ही, पर कलापारखियोके लिए भी जीवन-तत्त्वोका अभाव नहीं है। बाह्य सौन्दर्यानुभूतिके साथ अन्तःसौन्दर्यका इतना सुस्पष्ट वर्णन कम ही स्थलोंमे मिलेगा। अन्तः साधनके रूपमें ज्ञान, दर्शन और चारित्रको महत्ता दी

गयी है, किन्तु हृदय-पद्मको विकसित होनेकी पूरी गुंजाइश है। यद्यपि इन ऐतिहासिक गीतिकाव्योंमे रागात्मक तत्त्वोकी अनुभूति अधिक गहरी नहीं है; जिससे शायद कतिपय समालोचक हृदय-रमण-वृत्तिका अभाव अनुभव करेगे; परन्तु दार्शनिक पृष्ठभूमिपर भक्ति-भावनाका पुट इतना अधिक है जिससे चराचर जगत्‌के साथ मानवका सौहार्द स्थापित हो जाता है। अहिंसाकी सूक्ष्म और सरस व्याख्याएँ रहनेके कारण मानव सहानुभूति-सूत्रमे आबद्ध हो, विश्वबन्धुत्वकी ओर अग्रसर होता है और जीवनमे प्रेम, करुणा एव दयाकी यथार्थताको अवगत करता है। मानव-का मानवके साथ ही नहीं, अन्य समस्त प्राणि-जगत्‌के साथ जो सौहार्द-सम्बन्ध है, उसकी अभिव्यजना इन काव्योंमे मुख्य रूपसे हुई है। जगत् और जीवनके नाना रूपोकी मार्मिक अनुभूति कई गीतोंमे विद्यमान है।

जैन ऐतिहासिक गीतोका प्रधान वर्ण्य विषय जैन साधुओं और गुरुओंकी कीर्त्तिगाथा, राजा-महाराजाओ और सम्राटोको प्रभावित कर धार्मिक अधिकार प्राप्त करनेकी चर्चा, जैनधर्मके व्यापक प्रभाव एव धार्मिक भावनाओंको उभाडनेके तत्त्व है। अनेक सूरि और आचार्योंने मुसलिम बादशाहोको प्रभावित कर अपने धर्मकी धाक जमाई थी तथा सनदे प्राप्त कर जिनालय निर्माण करनेकी स्वीकृति प्राप्त की थी। जिनप्रभ सूरिकी प्रशसा करते हुए एक गीतमे बताया गया है कि अश्वपति कुतुबुद्दीनके चित्तको प्रसन्न कर इन्होंने अनेक प्रकारमे सम्मान प्राप्त किया था। सवत् १३८५ पौष सुदी ८ शनिवारको इन्होने दिल्लीमे अश्वपति मुहम्मदशाहसे भेट की थी। सुल्तानने इन्हे उच्चासन दिया। इनकी भाषण शक्ति विलक्षण थी, अतः इन्होने अपने व्याख्यान-द्वारा सुल्तान का मन मोह लिया। सुल्तानने भी ग्राम, हाथी, घोडे, धन तथा यथेच्छ वस्तुएँ देकर सूरीश्वरका सम्मान करना चाहा, पर इन्होने स्वीकार नहीं किया। इनके इस त्यागको देखकर सुल्तानको इनके प्रति भारी भक्ति हो गई, जिससे उन्होने इनका जुलूस निकाला, रहने के लिए 'वसति'

निर्माण करायी। गीतमें अनेक राष्ट्रिय और अहिंसक भावनाओंके साथ उक्त ऐतिहासिक तथ्य व्यंजित किया है—[1]

उदय ले खरतरगच्छ गयणि, अभिनउ सहस करो।
सिरी जिणप्रभुसूरि गणहरों, जंगम कल्पतरो॥

× × ×

हरखितु देइ राय गय तुरय, धण कणय देस गामा।
भणइ अनेवि जे चाह हो, ते तुह दिउ इमा॥
लेइ णहु किंपि जिणप्रभसूरि, मुणिवरो अतिनिरीहो।
श्रीमुख सलहिउ पातसाहि, विविहपरि मुणि सीहो॥

× × ×

'असपति' 'कुतुबदीनु' मनरंजेउ, दीठेलि जिणप्रभ सूरी ए।
एकन्तिहि मन सासउ पूछई, राममणोरह पूरी ए॥
गाम भूरिय पटोला गजबल, तूठउ देइ सूरिताणू ए।
जिणप्रभसूरि गुरुकम्पनई छइ, तिहु अणि अमलिय माणू ए॥
ढोल दमामा अरु नीसाणा, गहिरा बाजइ तूरा ए।
इनपरि जिनप्रभसूरि गुरु आवइ, संघ मणोरह पूरा ए॥

एक दूसरे [2]गीतमे बताया गया है कि जिनदत्त सूरिने बादशाह सिकन्दरशाहको, जो बहलोल लोदीके उत्तराधिकारी थे, अपना चमत्कार दिखलाकर ५०० बन्दियोंको मुक्त कराया था। इस गीतमें अनेक उपमा और उत्प्रेक्षाओंका आश्रय लेकर अन्य ऐतिहासिक तथ्यके साथ जीवन की सरस अनुभूतियोकी भी अभिव्यंजना सुन्दर हुई है।

१. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह पृ० १३-१४।
२. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह पृ० ५३-५४।

सरसति मति दिउ अम्ह अति घणी, सरस सुकोमल वाणि।
श्रीमज्जिनहंस सूरि गुरु गाइसिउँ, मन लीणउ गुण जाणि॥

× × ×

नेति बधावइ गीत गावइ, पुण्यकलस धरइ सिरे।
सिंगारसारा सब नारी करइ, उच्छव घर घरे॥

× × ×

श्री सिकंदर चित्त मानिपउ, किरामत काइं कही।
पाँच सइ बन्दी बाखरसी, छोडव्या इण गुरु सही॥

कुछ गीतोंमें[1] बताया गया है कि मुगल-सम्राट् अकबरके मनमे जिन-चन्द्र सूरिके दर्शनकी बड़ी उत्कण्ठा थी, अतः उन्होंने सूरीश्वरको गुजरातसे बडे आग्रह और सम्मानसे बुलाया। सूरीश्वरने आकर उन्हे उपदेश दिया और सम्राट्ने उनकी बडी आवभगत की। जब बादशाह सलेमशाह 'दरसबिया' दीवान पर कुपित हो गये थे तो इन्हीं सूरीश्वरने गुजरातसे आकर बादशाहके क्रोधको शान्त किया और धर्मकी महिमा बढाई। यह सूरीश्वर मुल्तान भी गये थे, और वहाँके खानमलिक-द्वारा इनका सम्मान किये जानेका भी उल्लेख है।

इन गीतोंमे युग-चेतनाके स्पष्ट दर्शन होते है। उस युगके मानवकी विराट् व्यथा, हिंसाके ज्वार और उतार-चढ़ाव, साम्प्रदायिक सकीर्णता, ग्रामीणोंके हृदयकी झाँकी एव देशकी यथार्थ स्थितिका विश्लेषण इन गीतोंका प्राण है। साम्प्रदायिक गीतोंमे भी रचयिताओंने मानव-समाजके हितोंकी पूरी विवेचना की है। ऐसा शायद ही कोई गीत होगा, जिसमें चेतना और स्फूर्ति न विद्यमान हो। अपभ्रंशसे प्रभावित पुरानी राजस्थानी भाषा होनेके कारण आजके पाठक इन गीतोमे शायद रम न सके, परन्तु भारतीय सस्कृति और सभ्यताका परिचय पाने तथा युगविधायक

१. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह पृ० ५८, ८१, ८२, ९१।

सामाजिक घटनाओंसे अवगत होनेके लिए इन गीतोंका अत्यधिक महत्त्व है। इसी कारण इनको केवल जैनोंकी सम्पत्ति न मानकर हिन्दी-साहित्य-की अमूल्य निधि मानना चाहिये। इन गीतोंमे मुसलिम शासनके अन्याय और शोषणका विवरण भी उपस्थित किया गया है, परन्तु यह विवरण ऐतिहासिक तथ्य नही, प्रत्युत काव्यका तत्त्व है।

कतिपय गीतोंमें[१] ग्राम-बधुएँ पथिकोंसे अनुरोध कर पूछती हैं कि आप जिस रास्तेसे आ रहे हैं, क्या आपको उस मार्गमे आचार्यश्री मिले? इन सूरिजीकी वाणीमे अमृत है, अनेक चमत्कारोंके ज्ञाता और ये अपरिमित शक्तिके धारी हैं। इनके तेजका वर्णन कोई नही कर सकता है। ये परम अहिंसा धर्मके पुजारी हैं, शुद्ध आचार-विचारका पालन करते हैं, समस्त प्राणियोंके साथ इनकी मित्रता है। जो एक बार इनका दर्शन कर लेता है, इनके मिष्ट वचनोंको सुन लेता है, उसकी इनके प्रति अपार श्रद्धा हो जाती है। कचन और कामिनी, जिन्होने सारे जगतको अपने वश कर रखा है, इनके लिए तृणवत् हैं। हे पथिक! यदि तुम इनके आगमनका यथार्थ समाचार कह सको, तो तुम्हारी हमारे ऊपर बड़ी कृपा हो। हमारा मन-मयूर उनके आगमनके समाचारको सुन कर ही हर्षित हो जायगा। हमारे हृदयकी वीणाके तारोंपर सुरीले स्वरोंका आरोहण-अवरोहण स्वतः होने लगेगा। इस प्रकार अपनी भावनाको व्यक्त करती हुई ग्राम-बधुएँ उन सूरीश्वरका ऐतिहासिक परिचय भी देती हैं, जिससे उनके आगमनकी सच्ची जानकारी प्राप्त कर सके। इस ऐतिहासिक परिचयमे सन, संवत् और तिथिका उल्लेख तो है ही, साथ ही उन सूरीश्वरके गण, गच्छ, गोत्र, गुरु और प्रभावका भी ऐतिहासिक तथ्य निरूपित है।

गुरु दर्शन हो जानेपर अपूर्व आनन्दानुभूति होती है। जैन कवियोंने ऐतिहासिक गीतोमे सरसताको पर्याप्त स्थान देनेके लिए ऐसे अनेक गीतों-की रचना की है, जिनमें अपूर्व आत्म-परितोष व्यक्त किया गया है। निम्न

गोतोंमें इतिहासकी शुष्क धाराको कितना शीतल और सरस बनानेका प्रयास किया है—

आज मेरे मनकी आश फली।
श्री जिनसिंह सूरी मुख देखत, आरति दूर टली ॥१॥
श्री जिनचन्द्र सूरि सइं सत्थइ, चतुर्विध संघ मिली।
शाही हुकम आचारज पदवी, दीधी अधिक भली ॥२॥
कोडिवरिस मंत्री श्री करमचन्द्र, उत्सव करत रली ॥
'समयसुन्दर' गुरुके पदपंकज, लीनो जेम अली ॥३॥

निम्न गीतमे जिनसागर सूरिके जन्मका निरूपण करते हुए बताया गया है कि बीकानेर नगरमें बोथरा गोत्रीय शाह बच्चा निवास करते थे, इनकी भार्याका नाम मृगादे था। जब यह सूरीश्वर गर्भमें आये तो माताको 'रक्तचोल रत्नावलीका स्वप्न', आया, उसीके अनुसार इनका नाम 'चोला' रखा गया। कालान्तरमें यह श्रीजिनसिंह सूरिजीसे दीक्षा लेकर साधु बन गये और इनका नाम जिनसागर सूरि पडा। उसके चमत्कार ओर महत्त्वको प्रकट करने वाले अनेक गीत है।

सुख भरि सूती सुन्दरी, देखि सुपन मध राति।
रगत चोल रत्नावली, पिउ नै कहइ ए बात ॥
सुणी वचन निज नारि ना, मेघ घटा जिम मोर।
हरख भणइ सुत ताहरइ, थासइ चतुर चकोर ॥
आस फली माइरी मन मोरी, कूखइ कुमर निधान रे।
मनवांछित दोहला सवि पूरइ, पामइ अधिकउ मान रे ॥
संवत 'सोलबावन्ना' वरषइ 'काती सुदी' रविवार रे।
चउदसिने दिनि असिनि नक्षत्रइ जनम थयो सुखकार रे ॥

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० २४३–'सुण रे पन्थियाँ' गीत, पृ० २४५, पृ० २४६ 'जीहो पन्थी' गीत।

नित नित कुमर बाधइ बहुलक्खणि सुरतरु नउ जिमि कंद रे।
रमणी अनोपम निलवट सोहइ, वदन पूनम नउ चंद रे ॥
सहुअ सजन भगतावी भगतइ, मेलि बहु परिवार रे।
'घोलउ' नाम दियउ मन रंगइ, सुपन तणइ अनुसारि रे ॥
सहिअ समाण मिलि मात पासइ सरुह 'वच्छराज' कुल दीव रे।
'सामल' नाम धरि हुलरावइ, मुखि बोलइ चिरजीव रे ॥

गुरुओके चातुर्मासोंका वर्णन, सघका वर्णन तथा उनके धर्मोपदेश और धर्म प्रभावनाका वर्णन इन ऐतिहासिक गीतोंमें सुन्दर हुआ है। अधिकाश गीतोंका एक विशाल सग्रह 'ऐतिहासिक जैन काव्यसग्रह'के नामसे श्री अगरचद नाहटा और श्री भँवरलाल नाहटाके सम्पादकत्वमे प्रकाशित हो चुका है। इस सग्रहके सभी गीत राग-रागनियोसे युक्त है। कर्मगीतोमे ६ राग और ३६ रागनियोंका समावेश किया गया है।

चतुर्थाध्याय

आध्यात्मिक रूपक काव्य

जैन कवियोंने अपनी रचनाओंमें आत्मभाव सचाईके साथ अभिव्यक्त किया है। इनके काव्यके अन्तर्वृत्ति-मूलक विश्लेषणसे जीवनकी विभिन्न वृत्तियोका परिज्ञान सहजमें किया जा सकता है। इनके काव्यमे शुद्धात्मा और ससारी अशुद्धात्माके प्रसगको उपस्थितकर आध्यात्मिक बोधके साथ लौकिकताका अक्षुण्ण सम्बन्ध बनाये रखनेका प्रयास निहित है। जैन कवियोंने आध्यात्मिक अनुभूतिकी सचाईको अन्योक्ति और समासोक्तिमें बड़ी मार्मिकताके साथ व्यक्त किया है। इन कवियोकी आध्यात्मिक भावनाने हृदयको समतलपर लाकर भावोका सार समन्वय उपस्थित किया है। जीवनके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षणको दार्शनिक दृष्टि-कोणसे प्रस्तुत करनेमे मानव भावनाओका गहन विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत-द्वारा अप्रस्तुतका विधान साधारण छोटी-छोटी आख्यायिकाओंमे किया गया है। कवियोने इतिवृत्त भी कहीं-कहीं आध्यात्मिक ही अपनाये है; परन्तु इनमे विचारो, भावनाओं और प्रवृत्तियोके सश्लिष्ट चित्रोंका सद्भाव पूर्ण रूपेण विद्यमान है।

जैन आध्यात्मिक रूपक काव्योंमें विराट् कल्पना, अगाध दार्शनिकता तथा सूक्ष्म भावनाओंका विश्लेषण है। इन काव्योके लघु व्याख्यानों मे क्षमा, क्रोध, उत्साह एवं सहानुभूति आदि नैसर्गिक पात्रोंकी योजना कर जीवनके प्रकाश और अन्धकार पक्षकी उद्भावना मौलिक रूपमें की है। इन कलाकारोंकी कल्पनाने कभी स्वर्णकमलोंसे कलित-सुधा सरोवरके कूलोपर मलयानिल स्पन्दित पाटलोंके बीच विचरण किया है, कभी अलकापुरीके रत्नजटित प्रासादोंकी सारहीनताका सकेत करते हुए क्रोध-

मान-माया-लोभादि मनोविकारोंके परिमार्जनका प्रयास किया है एवं कभी कनकमेखलामंडित विविधवर्णमय घनपटलोंकी क्षणभगुरताका दिग्दर्शन कराते हुए ससार-आसक्त मानवको वैराग्यकी ओर ले जानेका सुन्दर प्रयत्न किया है ।

आध्यात्मिक रूपक काव्योका उद्देश्य ज्ञान और क्रिया-द्वारा दुःखकी निवृत्ति दिखलाकर लोककल्याणकी प्रतिष्ठा करना है । लोकमगलाशासे जैन कवियोका हृदय परिपूर्ण और प्रफुल्ल था । अतः सच्चिदानन्द स्वरूप आत्माका आभास करा देना ही इन्हे अभीष्ट है और इसीमें इन्होंने सच्चा लोककल्याण भी समझा है । मनोविकारोके आधीन रहनेसे मानव-जीवनमें 'शिव'की उपलब्धिमे बाधाएँ आती हैं, जीवनव्यापी आदर्शों और धर्मोंकी अनुभूति भी नही हो पाती है तथा सात्त्विक, राजस और तामस प्रवृत्तियों-मेसे राजस और तामस प्रवृत्तियोका परिष्कार भी नही हो पाता है ; जिससे जीवनकी सात्त्विक, उदात्त भावनाएँ आच्छादित ही पड़ी रहती हैं । भौतिकवादकी निस्सारता और आध्यात्मिकवादकी श्रेयताका मार्मिक विवेचन—**"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"** अहिंसा वाक्यको मूलमे रखकर किया है । आत्माकी प्रेयता तथा इसका शोधन भी अहिंसाकी भावनापर ही अवलम्बित है । इसी कारण रूपक काव्य-निर्माताओंने आत्मतत्त्वकी उपलब्धिके लिए निवृत्ति मार्गको विशेषता या महत्त्व प्रदान किया है । यद्यपि प्रवृत्ति-मार्ग आकर्षक है, पर पूर्ण दुःखकी निवृत्ति नहीं करा सकता है तथा इस मार्गमे प्राप्त होनेवाली भोगसामग्रियाँ क्षणभगुर होनेसे अन्तमे वेदनाप्रद होती हैं । अतः जैन कलाकारोंने जैन दर्शनके सूक्ष्म तत्त्वोके विश्लेषणके साथ शुद्धात्माकी उपलब्धिका विधान बतलाया है । इस विधानमे आत्माकी विभिन्न अवस्थाओं और उसके विभिन्न परिणामोका बड़े ही स्पष्ट और मार्मिक ढगसे विवेचन हुआ है । आध्यात्मिकताके विकृत रूपके प्रति विद्रोहकर आत्माकी विशाल अतुलित शक्तिका उद्घाटन भव्य और आकर्षक रूपमे विद्यमान है । इस विवेचनमें

उदात्त भावनाके चित्र बड़े ही सयत, गम्भीर और आदर्श उतरे है। दार्शनिक भाव-भूमिपर आत्मा और जड़-बन्धनके विश्लेषणको जिस प्रकार सजाया-सँवारा है, वह महान् है। मानव हृदयकी दुर्बलताओं और शक्तियोंको इतना टटोला और परखा है, जिससे रूपकोंमे तात्त्विक अभिव्यजनाने नीरसता नही आने दी है। आत्मिक विधान स्वस्थ और सन्तुलित रूपमे मानस सशोधनके लिए प्रेरणा तो देता ही है, साथ ही जीवनको कर्त्तव्य-मार्ग—रचनात्मक मार्गकी ओर गतिशील करता है।

आध्यात्मिक रूपक जैन काव्य-निर्माताओंमे महाकवि बनारसीदास और भैया भगवतीदासका नाम विशेष गौरवके साथ लिया जाता है। कवि बनारसीदासने नाटक समयसार, बरवै, सोलह तिथि, तेरह काठिया, ज्ञानपच्चीसी, अध्यात्मबत्तीसी, मोक्षपैडी, शिवपच्चीसी, भवसिन्धु चतुर्दशी, ज्ञानबावनी आदि रचनाएँ लिखी है। चेतन कर्मचरित्र, अक्षरबत्तीसी, मिथ्यात्वविध्वसन चतुर्दशी, मधुबिन्दुक चौपई, सिद्ध चतुर्दशी, अनादिबत्तीसिका, उपशमपच्चीसिका, परमात्मछत्तीसी, नाटकपच्चीसी, पञ्चेन्द्रियसंवाद, मनबत्तीसी, स्वप्नबत्तीसी एव सूवाबत्तीसी आदि रचनाएँ भैया भगवतीदासने लिखी है। इनमे कुछका परिचय निम्न है—

नाटक समयसार

यह एक उत्कृष्ट आध्यात्मिक रचना है। आत्मान्वेषकोंको सरस कवितामे आत्म-तत्त्वकी उपलब्धि करनेकी सुन्दर अभिव्यंजना इसमे निहित है। कुशल कलाकारने चित्रकारके समान आत्मानुभूतिमे नाना कल्पनाओका रग लगाकर अद्भुत चित्र खीचनेका प्रयास किया है। यद्यपि कविने अपने इस ग्रन्थकी रचना आचार्य कुन्दकुन्दके समयसारके आधारपर की है, परन्तु रागतत्त्व, बुद्धि-तत्त्व और कल्पनातत्त्वका मिश्रण कर इसे मौलिकता प्रदान करनेमे तनिक भी कमी नहीं की है। प्रत्येक पद्यमे प्रवाह और माधुर्य वर्तमान है। सरस और कोमल शब्दोंका चयन करनेमे कविने अद्भुत सफलता पायी है। अनूठी उक्तियाँ और नवीन उद्भावनाएँ तो पाठकका मन बरबस ही

अपनी ओर खींच लेती हैं। जीवनके कोमल पक्षकी सम्यक् अभिव्यंजना होनेसे कविता हृदय और मस्तिष्क दोनोंको समान रूपसे छूती है। इसमें जीवन सम्बन्धी उन विशेष विचारों और भावनाओंका सकलन किया गया है, जो यथार्थ जीवनको प्रगति देते हैं।

अन्तर्जगत् और बाह्य-जगत्का यथार्थ दिग्दर्शन कराते हुए आत्माकी शुद्धताका निरूपण अद्भुत ढगसे किया है। इसमे ३१० दोहा-सोरठा, २४३ सवैया-इकतीसा, ८६ चौपाई, ६० सवैया-तेईसा, २० छप्पय, १८ कवित्त, ७ अडिल्ल और ४ कुण्डलियाँ है। सब ७२६ पद्य हैं। इसमें कविने आत्मतत्त्वका निरूपण नाटकके पात्रोंका रूपक देकर किया है। इसमें सात तत्त्व अभिनय करनेवाले है। यही कारण है कि इसका नाम नाटक समयसार रखा गया है।

कविने मगलाचरणके उपरान्त सम्यग्दृष्टिकी प्रशंसा, अज्ञानीकी विभिन्न अवस्थाएँ, ज्ञानीकी अवस्थाएँ, ज्ञानीका हृदय, ससार और शरीरका स्वरूप-दिग्दर्शन, आत्मजागृति, आत्माकी अनेकता, मनकी विचित्र दौड एव सप्त व्यसनोंका सच्चा स्वरूप प्रतिपादित करनेके साथ, जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सातो तत्त्वोंका काव्य रूपमें निरूपण किया है। आत्माकी अनुपम आभाका कविने कितना सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है। कवि कहता है—

जो अपनी दुति आप विराजत, है परधान पदारथ नामी।
चेतन अंक सदा निकलंक, महासुख सागरको बिसरामी॥
जीव अजीव जिते जगमें, तिनको गुनज्ञायक अन्तरजामी।
सो शिवरूप बसै शिवथानक, ताहि विलोकनमें शिवगामी॥

अज्ञानी व्यक्ति भ्रमके कारण अपने स्वरूपको विस्मृत कर ससारमे जन्म मरणके कष्ट उठा रहा है। कवि कहता है कि कायाकी चित्रशालामें कर्मका पलग बिछाया गया है, उसपर मायाकी सेज सजाकर मिथ्या

कल्पनाका चादर डाल रखा है । इस शय्यापर अचेतनकी नींदमें चेतन सोता है। मोहकी मरोड़ नेत्रोंका बन्द करना—झपकी लेना है। कर्मके उदयका बल ही श्वासका घोर शब्द है और विषय सुखकी दौर ही स्वप्न है। इस प्रकार तीनो कालोमे अज्ञानकी निद्रामे मग्न यह आत्मा भ्रमजालमें ही दौड़ती है, अपने स्वरूपको कभी नही पाती। अज्ञानी जीवकी यह निद्रा ही ससार-परिभ्रमणका कारण है। मिथ्यात्व-तत्त्वोकी अश्रद्धा होनेसे ही इस जीवको इस प्रकारकी निद्रा अभिभूत करती है। आत्मा अपने शुद्ध, निर्मल और शक्तिशाली स्वरूपको विस्मृत कर ही इस व्यापक असत्यको सत्य रूपमे समझती है। अतः कवि यथार्थताका विश्लेषण करता हुआ कहता है—

> काया चित्रसारीमें करम परजंक भारी,
> मायाकी सँवारी सेज चादर कलपना।
> शैन करै चेतन अचेतनता नींद लिए,
> मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥
> उदै बल जोर यहै श्वासको शबद घोर,
> बिषै सुखकारी जाकी दौर यहै सपना।
> ऐसी मूढ़ दशामे मगन रहै तिहुँकाल,
> धावे भ्रम-जालमें न पावे रूप अपना ॥

कविने रूपक-द्वारा अज्ञानी जीवकी उक्त स्थितिका मार्मिक चित्रण किया है। वस्तुतः आत्मा सुख-शान्तिका अक्षय भण्डार है, इसमें ज्ञान, सुख, वीर्य आदि गुण पूर्ण रूपेण विद्यमान हैं, अतएव प्रत्येक व्यक्तिको इसी शुद्धात्माकी उपलब्धि करनेके लिए प्रयत्नशील होना चाहिये।

ज्ञानका प्रकाश होते ही हृदय परिवर्तित हो जाता है। परिष्कृत हृदयमें नानाप्रकारकी विचार-तरंगे उठने लगती हैं। एकाएक सारी स्थिति बदल जाती है। जिन पर-पदार्थोंमे निजबुद्धि उत्पन्न हो गयी थी,

वे पदार्थ आत्मासे भिन्न प्रतीत होने लगते हैं। शरीर एव बाह्य भौतिक पदार्थोंकी आत्मासे पृथक् अनुभूति होने लगती है। कवि इसी परिवर्तनकी अवस्थाका चित्रण करता हुआ कहता है—आत्म-ज्ञानके अभावमे मानवका हृदय माया-मोह और बेचैनीसे व्यथित रहता है, जिससे प्राणिहिंसा, असत्य आदि दुष्प्रवृत्तियाँ शाश्वत सत्यको प्राप्त करनेमे अत्यन्त बाधक होती है। कुत्सित रूपोंमें राग या द्वेष दोनों ही प्रकारकी वृत्तियाँ दुःख परम्पराको उत्पन्न करती है। राग-द्वेषके नाना सकल्प मोहके विकारको उद्‌बुद्ध करते है। क्रोध, मान, माया और लोभ ये अन्तरात्माके भयंकर दोष है। इनका पूर्णरूपसे त्याग करनेपर ही ज्ञानभावकी उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे घना अन्धकार दूर हो जाता है, जलकी वर्षा होनेपर दावाग्नि शान्त हो जाती है एवं बसन्तागमन जानकर कोयल कूकने लगती है उसी प्रकार ज्ञान भावके उदित होते ही मोह, पाप, भ्रम, अज्ञान, दुष्प्रवृत्तियाँ क्षणभरमे पलायन कर जाती है।

हिरदै हमारे महामोहकी बिकलताई,
तातै हम करुना न कीनी जीवघातकी।
आप पाप कीने औरनिको उपदेश दीने,
हुती अनुमोदना हमारे याही बातकी ॥
मन, वच, काया में मगन ह्वै कमाये कर्म,
धाये भ्रमजालमें कहाए हम पातकी।
ज्ञानके उदयतें हमारी दशा ऐसी भई,
जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥

आत्मामे अशुद्धि परद्रव्यके सयोगसे आती है। यद्यपि मूल द्रव्य अन्य प्रकार रूप परिणमन नही करता है, फिर भी पर द्रव्यके निमित्तसे अवस्था मलिन हो जाती है। जब सम्यक्त्वके साथ ज्ञानमे भी सचाई उत्पन्न होती तो ज्ञानरूप आत्मा परद्रव्योंसे अपनेको भिन्न समझकर शुद्धात्मावस्थाको

प्राप्त होती है। कवि कहता है कि कमल रातदिन पंकमें रहता है तथा पंकज कहा जाता है, फिर भी कीचड़से वह सदा अलग रहता है। मन्त्रवादी सर्पको अपना गात पकड़ाता है, परन्तु मन्त्रशक्तिसे विषके रहते हुए भी सर्पका डंक निर्विष रहता है। पानीमे पड़ा रहनेसे जैसे स्वर्णमें काई नहीं लगती है; उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति संसारकी समस्त क्रियाओंको करते हुए भी अपनेको भिन्न एवं निर्मल समझता है।

> जैसे निशिवासर कमल रहै पंक ही में,
> पंकज कहावै पै न वाके ढिग पंक है।
> जैसे मन्त्रवादी विषधरसों गहावें गात,
> मंत्रकी शकति वाके बिना विष डंक है॥
> जैसे जीभ गहै चिकनाई रहै रूखे अंग,
> पानीमें कनक जैसे काईसे अटंक है।
> तैसे ज्ञानवान नानाभाँति करतूत ठानै,
> किरिया तैं भिन्न माने योतै निष्कलंक है॥

ज्ञानके उत्पन्न होनेपर ही आत्मराज्यकी उत्पत्ति होती है, विकार और वासनाएँ ज्ञानके उद्‌बुद्ध होते ही क्षीण हो जाती है। यह ज्ञान बाह्य पदार्थोंमे नहीं रहता है, किन्तु आत्माका गुण है। आत्मबोध पाते ही ज्ञानकी अवस्था जाग्रत हो जाती है। आत्मज्ञानी भेद-ज्ञानकी ओरसे आत्मा और कर्म इन दोनोंकी धाराओंको अलग-अलग करता है। आत्माका अनुभव कर श्रेष्ठ आत्मधर्मको ग्रहण करता है और कर्मोंके भ्रमको नष्ट कर देता है। इस प्रकार रत्नत्रय मार्गकी ओर अग्रसर होता है, जिससे पूर्ण ज्ञानका प्रकाश सहजमें ही उत्पन्न हो जाता है। ज्ञानी विश्वनाथ बन जाता है। पूर्ण समाधिमें मग्न होकर शुद्धात्माको प्राप्त करता है, जिससे शीघ्र ही संसारके आवागमनसे रहित होकर कृतकृत्य हो विश्वनाथके पदपर आसीन हो जाता है। कवि कहता है—

भेदज्ञान आरा सौं दुफारा करे ज्ञानी जीव,
आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै।
अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै,
करम भरम का खजाना खोलि खरचै॥
यों ही मोक्ष मग धावै केवल निकट आवै,
पूरण समाधि जहाँ परमको परचै।
भयो निरदोर याहि करनो न कछु और,
ऐसे विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै॥

जड़ कर्मोंके संसर्गसे आत्माकी विभिन्न प्रकारकी लीलाएँ हो रही हैं। निश्चय रूपसे वास्तविक दृष्टिकोणसे आत्मा एक होनेपर भी व्यवहारमें अनेक रूप है तथा अनेक होनेपर भी एक रूप है। संसारमें कर्मोंके बन्धन ने आत्माको इतना विकृत और विचित्र कर दिया है, जिससे इसकी यथार्थ अवस्थाका चित्रण नहीं किया जा सकता है। यह आत्मा कर्त्ता भी है और अकर्त्ता भी। कर्मफलका भोक्ता भी है और अभोक्ता भी। व्यवहारसे पैदा होता है और मरता है, किन्तु निश्चयसे न पैदा होता है और न मरता है। व्यवहार रूपमे बोलता है, विचारता है, नाना प्रकारके सिंह-शूकर-श्वान-शृगाल-काक-कीट आदि रूपोंको धारण करता है। वस्तुतः यह आत्मा अचेतन कर्मोंके संसर्गसे नट बन गयी है, इसी कारण अनेक वेषोंको धारणकर नानाप्रकारकी क्रियाओंको किया करती है। समय—आत्माके विभिन्न नटरूपों तथा उसके वास्तविक स्वरूपका विश्लेषण होनेसे ही इस ग्रन्थका नाम समय-सार नाटक रखा है। कवि आत्माकी इसी नट-बाजीका निरूपण करता हुआ कहता है—

एकमें अनेक है अनेक ही में एक है सो,
एक न अनेक कछु कह्यो न परत है।
करता अकरता है भोगता अभोगता है,
उपजै न उपजत मरै न मरत है॥

बोलत विचारत न बोले न विचारे कछु,
भेख को न भाजन पै भेख को धरत है।
ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगतिसों,
उलट-पलट नटबाजी सी करत है ॥

जिस प्रकार नदीकी एक ही धारामे नाना स्रोतोका जल आकर मिलता है तथा जिस स्थानपर पाषाणशिलाऍं रहती है, वहॉ धारा मुडकर जाती है ; जहॉ ककड़ रहते हैं, यहाँ झाग देती हुई आगे बढ़ती है ; जहॉ हवाका जोर पडता है, वहाँ चंचल तरंगें उठती है और जहॉकी भूमि नीची होती है, वहॉ भँवरे पड़ती हैं ; इसी प्रकार आत्मामे पुद्गल— अचेतनके अनन्त रसोंके कारण अनेक प्रकारके विभव उत्पन्न होते है। आत्माकी ये लीलाएँ नाटकके पात्रोंकी लीलाओसे कम नहीं होतीं। ससाररूपी रगस्थलीपर आत्मा नट बनकर नाना तरहकी लीलाएँ किया करती हैं। नायक आत्मा है और प्रतिनायक पुद्गल-जड़ पदार्थ। कविने आत्माकी इस अनेकरूपताका कितना स्वाभाविक चित्रण किया है—

जैसे महींमण्डलमे नदीका प्रवाह एक,
ताहीमे अनेक भाँति नीरकी ढरनि है।
पाथरके जोर तहाँ धारकी मरोर होत,
कांकरकी खानि तहाँ झागकी झरनि है ॥
पौनकी झकोर तहाँ चंचल तरंग उठै,
भूमिकी निचानि तहाँ भौंरकी परनि है।
तैसो एक आत्मा अनंत रस पुद्गल,
दोहूके संयोगमें विभावकी भरनि है ॥

नाटक समयसारकी भाषा सरस, मधुर और प्रसादगुणपूर्ण है। शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास और पदावलियोंके संगठनमें सतर्कता और सार्थकताका ध्यान सर्वत्र रखा गया है। इसमें मलयानिलका स्पर्श

विद्यमान है, जो हृदयकलिका विकसित करनेमें पूर्ण समर्थ है। अतएव भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियोंसे यह रचना उत्कृष्ट कही जा सकती है।

यह एक सरस रचना है। इसमें कवि बनारसीदासने भौतिक जीवनको पशु-जीवन बतलाते हुए मानव बननेका मार्ग बतलाया है। मानव जीवन-

तेरह काठिया

का उच्च आदर्श प्रतिपादित होनेके कारण यह वर्ग विशेषकी वस्तु न होकर सर्व साधारणकी सम्पत्ति है। इसमे साहित्यके उपयोगवादी दृष्टिकोणके अनुसार जीवनमें 'अशिव'का परिष्कार कर 'शिव'को प्राप्त करनेका सकेंत किया गया है। क्षणभंगुर शरीरके मोह और ममताको छोड़ आत्माकी अमरताको प्राप्त करनेका प्रयत्न ही श्लाघ्य हो सकता है। समस्त पार्थिव तृप्तियोंके साधन रहते हुए भी मन एक अभावका अनुभव करता है; सारी सुख-सुविधाओंके रहने पर भी मनकी तृप्ति नहीं होती है; यह अभाव राजनैतिक या सामाजिक नहीं; प्रत्युत आध्यात्मिक होता है। इस ग्रन्थमे कविने जीवनमें इसी अभावकी पूर्णताकी आवश्यकता बतलायी है। आध्यात्मिक संवेदनशील सरस स्रोतसे हमारी समस्त आन्तरिक पीड़ाएँ दूर हो जाती है। यह सरस रचना पाठकको साधारण मानव-जीवनके धरातलसे ऊपर उठाकर जीवन-का वास्तविक आनन्द देती है।

कवि जीवन-परिष्कारके लिए विधानका प्रतिपादन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार लुटेरे, बदमाश, चोर आदि देशमें उपद्रव मचाते हैं, उसी प्रकार तेरह काठिया आत्मामें उपद्रव—विकृति उत्पन्न करते हैं। जुआ, आलस, शोक, भय, कुकथा, कौतुक, कोप, कृपणबुद्धि, अज्ञानता, भ्रम, निद्रा, मद और मोह ये तेरह आत्मामें विकार उत्पन्न करते हैं। विभाव परिणतिके कारण शुद्ध, बुद्ध और निरंजन आत्म-तत्त्वमें पर-पदार्थोंके संयोगसे विकृति उत्पन्न हो जाती है। जब तक आत्मामें विभाव-परिणति पर-पदार्थ रूप प्रवृत्ति, करनेकी क्षमता रहती है तब तक उक्त

तेरह धूर्त आत्माके निजी धन अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यको चुराते रहते हैं।

पहला धूर्त जुआ है। मानव जीवनमें सबसे बड़ी अशान्ति इसीके कारण उत्पन्न होती है। यह प्रभुता, शुभकृत्य, सुयश, धन और धर्मका ह्रास करता है। जुआरी व्यक्ति सबसे प्रथम अपने वैभव और साखसे हाथ धोता है। मान-मर्यादा और ऐश्वर्य सभी जुआके कारण नष्ट हो जाते हैं। आत्मोत्थानके कार्योंमें प्रवृत्ति नहीं होती है, निन्द्य और खोटे कामोंमें शक्ति और धनका व्यय होता है। जगत्में जुआरीका अपयश भी फैल जाता है। हृदयकी सत् भावनाएँ समाप्त हो जाती है और आसुरी-भावनाओंका प्रतिष्ठान होने लगता है। स्वार्थ और हिंसा प्रवृत्ति जो व्यक्ति और समाज दोनोंके लिए अत्यन्त अहितकारक हैं; जुआके कारण ही जन्म-ग्रहण करती हैं।

दूसरा धूर्त है आलस। यह जीवनके मन्दाकिनी-प्रवाहको पर्वतके उस सूने पथपर ले जाता है, जहाँ लहरं उठती है और कगारकी गोदमे जाकर विलीन हो जाती है। जीवनमेंसे श्रद्धा, विश्वास और कर्त्तव्य-परायणता निकल जाती है तथा हृदय-मण्डलमें धूल और राख भर जाती है। जीवन क्षितिज अन्धकाराच्छन्न हो ज्ञान-मार्गको अवरुद्ध करनेमें सहायक बनता है, शान्त-सरोवरकी मधुर चाँदनी अस्ताचलकी ओर प्रस्थान कर देती है तथा भावनाओंका उठना बन्द हो जाता है और झपकी आने लगती है। बाह्य जगत्का हाहाकार अन्तर्जगत्में भी मुखरित होने लगता है। प्रेमका पपीहा अध्यात्मरस न मिलनेसे प्यासा ही रह जाता है। जीवनकी ओर गतिशील होनेकी कामना सुख-स्वप्न हो जाती है और जीवन जेठकी दुपहरियाके समान प्रमादके कारण दहकता है। कविका कहना है कि प्रमाद का अभाव होनेपर ही जीवन-क्षितिज रम्य प्रकाश-रश्मियोंसे व्याप्त हो सकता है।

तीसरा धूर्त शोक है, यह सन्ताप-बीजको उत्पन्न कर आत्माकी धैर्य

और धर्म-क्रियाओंको लुप्त कर देता है। परिश्रम और शक्तिका अभाव हो जानेपर शोक नृपका शासन अधिक दिनों तक चलता है। जीवनमें अगणित विद्युत्-कण नृत्य करने लगते हैं। प्रलयकालीन मेघोंकी मूसला-धार वर्षा होने लगती है। जीवन-समुद्रमे यह धूर्त बाड़वाग्नि उत्पन्न करता है, जिससे वह गुरु गर्जन-तर्जन करता हुआ क्षुब्ध हो जाता है तथा नाना प्रकारके भयकर और विषैले जन्तु आत्माकी शक्तिका अपहरण कर लेते है।

चौथा ठग है भय। जीवन-पथको विषय और भयकर बनानेमें यह अपनी सारी शक्तिको लगाता है। उल्लास, स्फूर्ति, तेज और गतिशीलता आदि सभी प्रवृत्तियोमे ज्वालामुखी विस्फोटन होने लगता है। जीवन-नौका डॉड न लगनेसे तथा पतवारके अस्थिर होनेसे अनिश्चित दिशाकी ओर विभिन्न विकारजनित लहरोंके साथ थपेड़े खाती हुई प्रवाहित होती जाती है। इस ठगका आतंक इतना व्याप्त रहता है जिससे सामनेका कगार भी धुँधला ही दृष्टिगोचर होता है। जीवनमे अगति और अनिश्चि-तता इसीके कारण आती है तथा भयाक्रान्त व्यक्ति जीवनमे सुनहले प्रभातके दर्शन कभी नही कर पाते है। जीवनका प्रत्येक कोना इस ठगके कारण अरक्षित रहता है। यह रात्रिमें ही धोखा नहीं देता, चोरी नही करता; प्रत्युत दिनमे भी निघड़क हो अपने कार्योंका सम्पादन करता है। जीवनकी विकासशील स्थितिको डावॉडोल करना इसीका काम है।

जीवन-मार्गका पाचवॉ ठग कुकथा है। रागात्मक चर्चाएँ आत्मा-भावनाको आवृतकर अनात्म-भावनाओंको उद्बुद्ध करती है। जिस प्रकार प्रलयकालमे समुद्रके जल-जन्तु विकल हो उछल-कूद मचाते है, उसी प्रकार कुकथाओके कहने और सुननेसे मानसिक विकार आत्मिक भावोंका मन्थन करते है, जिससे आत्मिक शक्तियाँ कुठित हो जाती है। आत्म-चेतना लुप्त हो जाती है और जीवनमे विकारोंका तूफान उठकर जीवनको परम अशान्त बना देता है। मानव प्रकृत्या कमजोर है, वह कुत्सित

चर्चाओं और वार्ताओंके श्रवण, पठन एवं चिन्तनमें सदा आगे रहता है, जिससे यह ठग अपना अवसर पाकर आत्मिक शक्तिको चुप-चाप ही अपहृत कर लेता है तथा जीवन अशान्त हो जाता है। यौन प्रवृत्तिको प्रोत्साहन भी इसी ठग द्वारा मिलता है।

जीवन-मार्गका छठवाँ पाकिटमार है कौतूहल। इसकी माया अपार है, जिधर अपूर्व और रमणीय वस्तु दिखलायी पड़ती है, उधर भी यह पहुँच जाता है। कोमल, सुनहली और उजली आशा-किरणें जीवनके मार्गमें मनमोहक और आकर्षक दृश्य उपस्थितकर एकान्त और निर्जन धानके खेतोंमें ले जाती हैं; जहाँ जीवात्माके रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको बलपूर्वक लूट लिया जाता है। यद्यपि इस मार्गमे शीतलजलके सहस्रों स्रोत रस वर्षा करते हैं, परन्तु है यह खतरनाक।

सातवाँ डाकू कोप है। इस अग्निमे अधिक उष्णता, दाहकता और भस्मसात् करनेकी शक्ति निहित है। जीवनमे कालरात्रिका आगमन इस डाकूकी कृपाका ही फल है। दया और स्नेह, जिनसे जीवनमें सरसता आती है, हृदय कजोंपर अनुराग मकरन्द बिखरने लगता है एव नाना भाव रूपी वृक्षोंपर आच्छादित हिमके पिघल जानेसे जीवनकी जडी-बूटियाँ जागरणको प्राप्त करती हैं, यह डाकू उन्हे देखते-देखते ही चुरा लेता है। इसी कारण इसे पश्यतोहर कहा गया है। ज्ञान और क्षमाके साथ इसका भीषण युद्ध भी होता है। दोनोंकी सेनाएं सजती हैं, युद्ध-वाद्य बजते है, तथा अपनी-अपनी ओरसे युद्ध-कौशलका पूरा-पूरा प्रदर्शन किया जाता है। यह विद्रोही रत्नत्रयको लेनेके लिए नाना उपाय करता है, इसको परास्त करना साधारण बात नहीं है। जो महावीर हैं, इन्द्रियजयी हैं, संयमी हैं और जिन्होंने प्रलोभनोंको जीत लिया है, वे ही इसे परास्त करनेकी क्षमता रखते हैं। जीवनमे उच्छृङ्खलता और अव्यवस्था इसीकी देन हैं।

आठवाँ ठग है कृपणबुद्धि। समस्त वस्तुओंको ले लेनेका लोभ करना

ही आत्मोत्थानका बाधक है। विश्वके मनमोहक पदार्थ इस प्राणीको अपनी ओर खींचते हैं। प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त किये बिना व्यक्तित्वका विकास नहीं हो सकता है। वस्तुतः वासना और सयमके उचित अनुपातसे ही जीवन अभ्युदयकी ओर बढता है। प्रलोभनोंके मनमोहक दृश्य मानव मनको उलझाये विना नहीं रह सकते। कृपणबुद्धि तो सर्वदा ही छोटे-बड़े सभी प्रकारके प्रलोभनोंमे ममत्व करती है, जिससे धर्मका नाश होता है। रत्नत्रय-धर्मका विघातक यह ठग है। आजतक इस ठगने कितने ही व्यक्तियोंकी हत्या कराई, कितने ही देवायतनोको दूषित कराया और कितने ही निरपराधियोंको मौतके घाट उतारा। सांसारिक सौन्दर्य का मूल्य इसी मापदण्डसे निर्धारित किया गया। एक-एक पैसेके लिए पाप किये, अनाचार किये, झूठ बोला, चोरी की और न मालूम क्या-क्या नही किया। सब इसी ठगने तो कराया, आत्माकी शक्तिको मुख्य रूपमे इसने विकृत किया।

नौवॉ ठग है अज्ञान, जिसने प्रकाशमान भास्करके ऊपर घने अन्धकारका आवरण डाल दिया है। इसके रहनेसे जीवन-पथ बिल्कुल अरक्षित है। यह अकेला नही रहता है, इसकी सेना बहुत बड़ी है। यद्यपि यह अपने दलका मुखिया है, परन्तु अन्य ठग भी बडे ही शक्तिशाली हैं। संयमसे यह डरता है, उसके धनुषकी टकार सुनते ही इसके कान बधिर और ऑखे अन्धी बन जाती हैं। धर्मरत्नकी सुरक्षाके लिए इस ठगको भगाना ही पड़ेगा। इसके साथ सन्धि करनेसे काम नही चल सकेगा।

दसवॉ ठग भ्रम है, इससे सारी शक्तियोंको ही चुरा लिया है। यह अहर्निश वसन्त वैभव और ओस मोतीकी माला लिये भावना वैभवकी सृष्टि करता है। जीवनको ठोस सत्यके धरातलसे पृथक्कर किसी भयंकर सागरमें डुबाना चाहता है। शुद्ध, निर्मल और ज्ञानरूप आत्माको शरीर आदि जड़ पदार्थोंमे समझता है।

ग्यारहवाँ ठग है नीद। तन्द्रा मानवको संसारके मधुर स्वप्नोंमें भले ही विचरण कराये, पर ठोस विश्वसे पृथक् कर देती है। जन्म-मरणकी समस्या और संसारके प्रति विराम भावकी कल्पनामे यह अनेक विघ्न उपस्थित करती है। यह ठग आत्मानुभूति सौन्दर्यकी यथार्थ अभिव्यक्तिको चुरा लेता है।

बारहवॉ ठग है अहंकार। ससारकी दो प्रवृत्तियॉ जो जीवनको इस क्षितिजसे उस क्षितिजकी ओर ले जाती है, इसीके कारण उत्पन्न होती हैं। आत्मामे मार्दवधर्म उत्पन्न न होने देना तथा सहानुभूति और सहृद-यता, जो कि नम्रता भावको उत्पन्न करनेमे साधक है, नही उत्पन्न होने देना इसकी विशेषता है।

तेरहवॉ ठग मोह है। सारा विश्व इसके प्रभावसे दुःखी है। रत्नत्रय-चूर्णको ये सभी ठग चुराते हैं, उसको प्राप्त करनेमे बाधक बनते है।

यद्यपि इस तेरह काठियाकी रचना साधारण है, काव्य-सौन्दर्य अत्यल्प है; फिर भी भावनाओ और विचारकी दृष्टिसे यह रचना श्रेष्ठ है, इसमे जीवनके सभी पक्षोंकी अनुभूतिके लिए हृदय-कपाटको खुला रखा गया है। मनोविकारोके परिमार्जनकी ओर प्रत्येक व्यक्तिको सर्वदा ध्यान रखना चाहिये, उसपर विशेष जोर दिया है। भाषापर गुजरातीका प्रभाव है।

भवसिन्धु-चतुर्दशी

यह सरस हृदयग्राहक रचना है। कवि बनारसीदासने इसमें ससार-की विडम्बनाओसे पृथक् रहनेकी ओर सकेत करते हुए परमात्म-चिन्तन अथवा तत्त्वान्वेषणकी ओर प्रवृत्त होनेकी बात कही है। प्रायः देखा जाता है कि उच्चतर अभि-व्यक्तिसे वञ्चित मानव-जीवन ऐन्द्रिय उपयोगमे ही डूबा रहता है। भौतिक सघर्षके कारण जीवन-नौका आध्यात्मिकताकी ओर गतिशील नहीं होती है। रागवश मानव स्वभावतः विषम परि-स्थितियोंसे आहत रहता है और उसे आत्म-सुख-रूपिणी स्थिति नहीं मिल

पाती। शरीर और मन दोनों ही अस्वस्थ रहते हैं तथा कुत्सित लालसाएँ जीवन-रसको सुखा देती हैं। कविने प्रस्तुत रचनामें संसारको समुद्रकी उपमा देकर उसका विश्लेषण मनोहर ढंगसे किया है तथा आत्मोद्धार करनेके सरल और अनुभूत उपाय बतलाये गये हैं। उपमाएँ अत्यन्त चुभती हुई सरल और सरस हैं। कवि कहता है कि—कर्मरूपी महा-समुद्रमें क्रोध मान-माया-लोभ रूप विकारोंका जल भरा है और विषय-वासनाओंकी नाना तरगे अहर्निश उठती रहती हैं। तृष्णा-रूपी प्रबल बाडवाग्नि इसमे नाना प्रकारसे विकृति उत्पन्न करती रहती है और चारों ओर ममतारूपी गुरुगर्जनाएँ होती रहती हैं। इस विकराल समुद्रमे भ्रम, मिथ्याज्ञान और कदाचाररूपी भँवर उठती रहती है। समुद्रकी भीषणताके कारण मनरूपी जहाज चारों ओर घूमता है, कर्मके उदयरूपी पवनके जोरसे वह कभी गिरता है, कभी डगमगाता है, कभी डूबता है और कभी उतराता है।

जैसे समुद्र ऊपरसे सपाट दिखलायी पडता है, पर कहीं गहरा होता है और कही चचल भँवरोमे डाल देता है, उसी प्रकार संसार भी ऊपरसे सरल दिखलायी पडता है, किन्तु नाना प्रकारके प्रपंचोके कारण गहरा है और मोहरूपी भँवरोमे फँसानेवाला है। इस संसारमें समुद्रकी बड़-वाग्निके समान माया तथा तृष्णाकी ज्वाला जला करती है, जिससे ससारी जीव अहर्निश झुलसते रहते है।

ससार अग्निके समान भी है, जैसे अग्नि ताप उत्पन्न करती है, उस प्रकार यह भी त्रिविध ताप—दैहिक, दैविक और भौतिक सतापोको उत्पन्न करता है। अग्नि जिस प्रकार ईधन डालनेसे उत्तरोत्तर प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार अधिकाधिक परिग्रह बढ़ानेसे सासारिक आकाक्षाएँ बढ़ती चली जाती हैं। यह ससार अन्धकारके तुल्य भी है, क्योंकि प्राणीके सम्यग्ज्ञानको ढकर उसे विवेकहीन बना देता है। मिथ्यात्वके संवर्द्धन

और पोषणसे प्राणीको अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं तथा उसकी चिरन्तन शान्ति भी इसीके कारण विकृत हो जाती है।

जब चैतन्य आत्मा जागृत हो जाती है, तब मानव जड पदार्थोंके सुखको नीरस अनुभव करने लगता है। समतारूपी पतवारके हाथमे आजानेसे भव-समुद्रको पार करनेमे सरलता होती है। आत्मगुणरूपी यन्त्र दिशाओंका परिज्ञान करता है। शुक्लध्यानरूपी मल्लाह शिवद्वीप मोक्षकी ओरसे चलता है। यद्यपि मार्गमें अनेक कठिनाइयोका सामना करना पडता है, पर रत्नत्रयके पासमें रहनेसे गन्तव्यपर पहुँचनेमें विलम्ब नहीं होता है।

इसमे प्रस्तुत संसारकी अभिव्यजनाके लिए अप्रस्तुत समुद्रका साङ्गोपाङ्ग निरूपण करते हुए उससे पार होनेके प्रयत्नोंपर प्रकाश डाला है। कथानकके अवलम्बन बिना ही भावनाओकी इतनी सुन्दर अभिव्यञ्जना कविके काव्य-चमत्कारकी सूचिका है। कविने कितने सीधे-सादे ढगसे भावोंको प्रकट किया है—

> कर्म समुद्र विभाव जल, विषय कषाय तरंग।
> बड़वानल तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सर्वंग॥
> भरम भँवर तामें फिरै, मन जहाज चहुँओर।
> गिरै फिरै बूढ़े तिरै, उदय पवनके जोर॥
> जब चेतन मालिक जगै, लखै विपाक नजूम।
> डारै समता श्रृंखला, थकै भँवर की घूम॥
> दिशि परखै गुण जन्त्रसों, फेरै शकति सुखान।
> धरै साथ शिव दीप मुख, बादवान शुभ ध्यान॥

इसकी भाषा सरल, परिमार्जित और मधुर है। उपमाएँ सार्थक है, कल्पनाकी उड़ान ऊँची नहीं है, फिर भी भावकी दृष्टिसे रचना अच्छी है। कविने इसमें आध्यात्मिक भावनाओंका अपूर्व मिश्रण किया है।

कवि बनारसीदासने हिंडोलेका रूपक देकर आत्मानुभूतिकी जो इतनी सरस अभिव्यञ्जना की है वह अन्यत्र मिल सकेगी, इसमें सन्देह है। चेतन

अध्यात्म-हिंडोलना

आत्मा स्वाभाविक सुखके हिंडोलेपर आत्मगुणोंके साथ क्रीड़ा करती रहती है। हिंडोलेका झूलना आनन्दप्रद, श्रान्ति और क्लान्तिको दूर करनेवाला एवं नानाप्रकारसे मनमें हर्ष और प्रसन्नताको उत्पन्न करता है। यह हिंडोला समतल भूमि-पर निर्मित किसी भव्य प्रासादमें रस्सीके सहारे टॅगा जाता है। हिंडोला झूलते समय सौभाग्यवती नारियाँ चित्तको आह्लादित करनेवाले नानाप्रकार के मनोरम गायन गाती हैं तथा हर्षातिरेकसे तन-बदनको भूल अलौकिक आनन्दमें मग्न हो जाती हैं। हिंडोलेके समय वर्षा भी होती है, घन-घटाएँ गर्जन-तर्जन करती हुई नानाप्रकारके भय उत्पन्न करती है। कभी-कभी शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु प्रवाहित होती है, जिससे हिंडोला झूलनेवालेका मन अपार आनन्दको प्राप्त होता है। वर्षा ऋतुमें हिंडोला झूला जाता है, अतः विद्युत्की चकाचौंध अन्धकारमें एक क्षीण प्रकाशकी रेखा उत्पन्न करती है। कविने इस छोटेसे वर्णनके सहारे जीवन और जीवन-विकासके सारे सिद्धान्तको अभिव्यञ्जित करनेमें अपूर्व सफलता पायी है। कवि इसी रूपकको स्पष्ट करता हुआ कहता है—हर्षके हिंडोलेपर चेतन राजा सहज रूपमें झूमता हुआ झूलता है। धर्म और कर्मके संयोगसे स्वभाव और विभावरूप रस उत्पन्न होता है। मनके अनुपम महलमें सुरुचिरूपी सुन्दर भूमि है, उसमें ज्ञान और दर्शनके अचल खंभे और चारित्रकी मजबूत रस्सी लगी है। यहाँ गुण और पर्यायकी सुगन्धित वायु बहती है और निर्मल विवेकरूपी भ्रमर गुञ्जार करते हैं। व्यवहार और निश्चय नयकी दंडी लगी है। सुमतिकी पटरी बिछी है और उसमें छह द्रव्यकी छह कीलें लगी हैं। कर्मोंका उदय और पुरुषार्थ दोनों मिलकर हिंडोलेको हिलाते हैं। संवेग और संवर दोनों सेवक सेवा करते हैं तथा व्रत ताम्बूल आदि देते हैं, जिससे आनन्दस्वरूप चेतन अपने आत्मसुखकी समाधिमें निश्चल

होता है। धारणा, समता, क्षमा और करुणा ये चारों सखियाँ चारों ओर उपस्थित हैं तथा सकाम, अकाम निर्जरारूपी दासियाँ सेवा करती हैं। यहाँ सातों नयरूपा सुहागिनी बालाओके कठकी मधुरध्वनि सुनाई पड़ती है। गुरुवचनका सुन्दर राग आलापा जा रहा है तथा सिद्धान्तरूपी ध्रुपद और अर्थरूपी तालका सचार हो रहा है। सत्य श्रद्धानरूपी मेघमाला गुरु गर्जन करती हुई क्रोध, तृष्णा, ईर्ष्या आदि लुटेरोंको भगा रही है। स्वानुभूतिरूपी विद्युत् जोरसे चमकता है और शीलरूपी शीतलवायु प्रत्येक सहृदयके हृदयको रस निमग्न कर देती है। तप करनेसे कर्म-कालिमा भस्म हो जाती है और अपरिमित आत्मशान्ति प्रकट हो जाती है कविने उपर्युक्त भावकी कितनी सुन्दर अभिव्यजना की है—

सहज हिंडना हरख हिंडोलना, झूलत चेतन राव।
जहँ धर्म कर्म सँजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव॥
जहँ सुमन रूप अनूप मन्दिर, सरुचि भूमि सुरंग।
तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल चरन आड अभंग॥
मरुवा सुगुन पर जाय विचरत, भौंर विमल विवेक।
व्यवहार निश्चल नय सुदंडी, सुमति पटली एक॥
उद्यम उदय मिलि देहिं झोटा, शुभ-अशुभ कल्लोल।
पटकील जहाँ षट् द्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल॥
संवेग संवर निकट सेवक, विरत वीरे देत।
आनन्द कन्द सुछन्द साहिब, सुख समाधि समेत।
धारना समता क्षमा करुणा, चार सखि चहुँ ओर।
निर्जरा दोउ चतुरदासी, करहिं खिदमत जोर॥
जहँ विनय मिलि सातो सुहागिन, करत धुन झनकार।
गुरु बचन राग सिद्धान्त धुरपद, ताल अरथ विचार॥
श्रद्धहन साँची मेघमाला, दाम गर्जन घोर।
उपदेश वर्षा अति मनोहर, भविक चातक शोर॥

अनुभूति दामिन दमक दीसै, शील शीत समीर।
तप भेद तपत उछेद परगट भाव रंगत चीर॥

यद्यपि अध्यात्म-हिंडोलनाकी भाषा साधारण है, किन्तु कविने रमणीयतामे पवित्रताको इस प्रकार मिला दिया है जिससे आत्म-ज्योति फूटती हुई दिखलायी पड़ती है। आत्माकी मधुर स्मृति जागृत हो जानेसे मानव आत्माके साथ आनन्दका झूला झूलने लगता है अर्थात् अशुद्ध आत्मा शुद्ध होनेकी ओर अग्रसर होती है।

यह भैया भगवतीदासका सुन्दर आध्यात्मिक रूपक-काव्य है। वस्तुतः यह आत्मचेतनाकी वाणी है। कवितामें हृदयकी कोमलता, कल्पनाकी मनोरमता और आत्मोन्मुखी तीव्र अनुभूति है। कृति सुरम्य, विचित्रवर्णोंसे संयुक्त, अलौकिक आनन्द देनेवाली और मनोज्ञ है। आन्तरिक विचारो और अनुभूतियोका सम्मिश्रण इस कृतिमे इतना अद्भुत है, जिससे यह कृति मानव अन्तस्तलको स्पर्श किये बिना नहीं रह सकती है। विकारोंको पात्र कल्पना कर कविने इस चरित्रमे आत्माकी श्रेयता और प्राप्तिका मार्ग प्रदर्शित किया है।

चेतन-कर्म-चरित्र

सुबुद्धि और कुबुद्धि ये दोनो चेतनकी भार्याएँ थी। अतः कविने इन तीनोंका वार्तालाप आरम्भमे कराया है। सुबुद्धि चेतन आत्माकी कर्म-संयुक्त अवस्थाको देखकर कहने लगी—"चेतन! तुम्हारे साथ यह दुष्टोंका सग कहाँसे आ गया? क्या तुम अपना सर्वस्व खोकर भी सजग होनेमे विलम्ब करोगे। जो व्यक्ति सर्वस्व खोकर भी सावधान नही होता है, वह जीवनमें कभी भी उन्नतिशील नही हो पाता है। नाना प्रकारके व्यक्तियोंके सम्पर्क एवं विभिन्न प्रकारकी परिस्थितियोंके बीच गमन करते हुए भी वास्तविकताको हृदयगम करनेका प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।"

कथावस्तु

चेतन—"हे महाभागे! मैं तो इस प्रकार फँस गया हूँ जिससे इस

गहन-पंकसे निकलना मुझे असंभव-सा लगता है। मैं यह जाननेके लिए उत्सुक हूँ कि मेरा उद्धार किस प्रकार हो सकेगा। मैं किस प्रकार उन अनन्तोंकी पंक्तिमें स्थान प्राप्त कर सकूँगा, जो अपनेको ईश्वर हो जानेका दावा करते हैं।"

सुबुद्धि—"नाथ! आप अपना उद्धार स्वयं करनेमे समर्थ है जो व्यक्ति अपने स्वरूपको भूल जाता है, उस व्यक्तिको पराधीन करनेमें विलम्ब नहीं होता। जब तक हम अपनी यथार्थ स्थिति नहीं समझते है, तब तक प्रायः हमारे ऊपर शासन किया जाता है। हमारे ऊपर शोषणका क्रम भी तभीतक चलता है, जबतक हम अपने अधिकार और कर्त्तव्योंसे वचित हैं। भेदविज्ञान ही आपके लिए परम उपयोगी अस्त्र है, इसीसे आप रण-क्षेत्रमें युद्ध करनेके लिए सक्षम हो सकते हैं। जैसे सिंह गधोंके साथ रहते-रहते अपनेको भूल जाता है, उसी प्रकार आप भी कुबुद्धिके कुसंगसे पथच्युत हो गये हैं तथा इधर-उधर भ्रमण कर रहे है। सावधान होकर अब मैदानमे आ जाइये, विजय निश्चित है।"

कुबुद्धि—"री दुष्टा! क्या बक रही है। मेरे सामने तेरा इतना बोलने-का साहस, तू नही जानती कि मै प्रसिद्ध शूरवीर मोहकी पुत्री हूँ। मुझे इस बातका अभिमान है कि अपने प्रभावमे मैने अनेक योद्धाओंको परास्त कर दिया है। अरी सौत! तू इतनी बढ-बढ कर क्यो बातें कर रही है, क्यों नहीं यहॉसे चली जाती?"

सुबुद्धि—"वाह! वाह!! आपने खूब कहा। मै और यहॉसे चली जाऊॅ और तुम अकेली क्रीड़ा करो। न! न!! यह कभी नही होनेका। मेरे रहते हुए तेरा अस्तित्व कभी सम्भव नही, तू दुराचारिणी है। चल हट यहॉसे।"

सुबुद्धिके इन वाक्य-बाणोंने कुबुद्धिके हृदय-कुसुमको छिन्न-भिन्न कर दिया, वह क्रुद्ध हो लाल-पीली होती हुई अपने पिता मोहराजके पास गई। यद्यपि यह मोहराज प्रचण्ड बली थे, पर समय और परिस्थितिका उन्हे

पूर्ण रूपसे अनुभव था; अतएव अपनी प्यारी पुत्रीको समझाते हुए कहने लगा—"बेटी, चिन्ता मत करो, मेरे रहते हुए ससारमें ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारा परित्याग कर सके। मैं तुम्हारे पतिकी बुद्धिको ठिकाने पर लाता हूँ। अभी अपने समस्त सरदारोंको बुलाकर चेतनके पास भेजता हूँ। जबतक वह सुबुद्धिको निकालकर तुमको अपने घरमें स्थान नहीं देगा, प्यार नहीं करेगा तबतक मैं चुप होने का नहीं। मेरी और मेरे योद्धाओंकी शक्ति महान् है।"

इस प्रकार कुबुद्धिको समझा-बुझाकर मोहने अपने चतुर दूत 'काम-कुमार'को बुलाया और उसे आदेश दिया कि तुम चेतन राजासे जाकर कहो कि तुमने अपनी स्त्रीका परित्याग क्यो कर दिया है। या तो हाथ जोडकर क्षमा याचना करो, अन्यथा युद्धके लिए तैयार हो जाओ।

दौत्यकर्ममें निपुण काम-कुमारने मोहका सन्देश जाकर चेतन राजासे कह दिया। वाद-विवादके उपरान्त चेतन राजा भी मोहसे युद्ध करनेको तैयार हो गया। मोहने महापराक्रमशाली क्रोध और लोभ योद्धाओंको चेतनराजको पकड़नेके लिए आमन्त्रित किया।

राग और द्वेष दोनों मन्त्रियोंने नानातरहसे परामर्शकर चेतनराजको आधीन करनेका उपाय बतलाया। ज्ञानावरणने मन्त्रियोको प्रसन्न करनेके लिए चाटुकारिता करते हुए कहा—"प्रभो! मेरे पास पॉच प्रकारकी सेनाएँ है, मैंने एक चेतनकी बात ही क्या, सारे ससारको अपने आधीन कर लिया है। मै, आप जिस प्रकार कहे, चेतनराजको बन्दी बनाकर आपके सामने प्रस्तुत कर सकता हूँ। मेरी शक्ति अपार है, जहाँ-जहाँ आपको अज्ञान दीख पड़ता है, वह मेरी कृपाका फल है।"

इसी समय दर्शनावरणने अपनी डींग हॉकते हुए कहा—"देव! मै अपने विषयमें अधिक प्रशंसा क्या करूँ, मैंने तो चेतनकी वह दुरवस्था कर रखी है, जिससे वह कहींका नही रहा है। मुझ-जैसे सेनानीके रहते हुए आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नही"। अवसर पा इसी समय

वेदनीय बोला—"नाथ ! मेरा प्रताप जगविख्यात है। जो वीतरागी कहलाते हैं, जिनके पास संसारका तिल-तुष मात्र भी परिग्रह नही है उनको भी मैंने नहीं छोड़ा है। सुख-दुःख विकीर्ण करना मेरी महिमा नहीं तो और क्या है!" अब मोहनीयकी पारी आई और वह ताल ठोकता हुआ बोला—"अह, विश्वमे मेरा ही तो साम्राज्य है। मेरे रहते हुए चेतनका यह साहस कि कुबुद्धिको घरसे निकाल दे। यह कभी नहीं हो सकता है, मैं तो प्रधान सेनापति हूँ। यदि मै यह कहूँ कि मोहराज्यका सारा संचालन मेरे ही द्वारा होता है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।" इसी प्रकार क्रमानुसार आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायने अपनी-अपनी विशेताएँ बतलायीं। मोहराजा अपनी अपरिमित शक्तिको देखकर हँसा और बोला—"मुझ जैसे प्रतापीके शासन करते हुए, जिसके पास अष्ट कर्मोंकी प्रबल सेना है, चेतनराजा कभी अनीति नहीं कर सकेगा। क्या मेरी पुत्री दुर्बुद्धिको इस प्रकार घरसे निकाल सकेगा। अतः निश्चय हुआ कि अब जल्दी ही चेतनराजापर आक्रमण कर देना चाहिये।

समस्त सेना आनन्दभेरी बजाती हुई राग-द्वेषको मोर्चेपर आगे कर रणक्षेत्रको चली। जब वे चेतननगरके समीप पहुँचे तो दूर ही पड़ाव डाल दिया।

इधर जब चेतनराजाको मोहके आक्रमणका समाचार मिला तो उसने भी अपने सभी सचिव और सेनापतियोको एकत्रित किया। सर्व प्रथम ज्ञान बोला—"नाथ ! मोहसे डरनेकी कोई बात नही, विजय निश्चय ही हमारे हाथ है। हमारी वाणवर्षाको मोहकी सेना कभी भी सहन नहीं कर सकती है।"

चेतनराजा प्रसन्न हो बोला—"ज्ञानदेव ! तुम्हारी आन ही हमारी शान है। वीर ! मै तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास करता हूँ, अनेक युद्धोंमें तुम्हारी वीरता देख भी चुका हूँ अतः शीघ्र ही अपने सैन्यदलको तैयार कर यहाँ उपस्थित करो। भयकी कोई बात नही है; तुम्हे याद होगा,

अनेकबार तुमने मोहराजाकी सेनाको परास्त किया है, जल्द जाओ। इसी प्रकार दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य आदि भी क्रमशः चेतनराजाके समक्ष उपस्थित हुए और अपनी-अपनी विशेषताएँ बतलाकर बैठ गये। चेतनराजाने अपनी समस्त सेनाको आज्ञा दी कि शीघ्र ही तैयार होकर एकत्रित हो जाय ; आज भयंकर युद्धका सामना करना होगा।

ज्ञानदेव अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो गया था, फिर भी वह शत्रुके पराक्रमसे सशंक था अतः विनीत होकर कहने लगा—"प्रभो ! अपराध क्षमा हो तो प्रार्थना करूँ।"

चेतनराजा—"वीरवर ! तुम्हारे ऊपर तो सारे युद्धका निपटारा निर्भर है। इस समय तुम्हे अप्रसन्न करनेसे मेरा कार्य किस प्रकार चल सकेगा ? अतः निस्संकोच जो कहना चाहो, कहो ; डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं। युद्धके अवसर पर वीरोंकी बात मानी जाती है। जो राजा रणनीतिविज्ञ वीरोंकी बात नहीं सुनता वह पीछे पश्चात्ताप करता है, अतः आप निर्भय होकर अपनी बातें कहें।"

ज्ञानदेव—"प्रभो, युद्धके लिए आक्रमण करनेके पूर्व दूत भेजकर शत्रुके प्रधान सचिवको या उसके किसी प्रतिनिधिको बुलवा लीजिये तथा जहाँ तक हो सके सन्धि कर लेना ही ठीक होगा।"

चेतनराजा—"ज्ञानदेव ! आज तुम युद्धके अवसरपर कातर क्यों हो रहे हो ? हमारी शक्ति अपार है, विश्वास करो, विजय होगी। घरमें दुश्मन-को बुलवाना कहाँतक उचित है। राजनीति बड़ी विलक्षण होती है, अतः अब सन्धिका अवसर नहीं है। इस समय युद्ध करना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।"

ज्ञानदेव—"देव ! आप मोहराजाकी अपार शक्तिसे परिचित होकर भी इस प्रकारकी बातें कर रहे हैं। मेरा विश्वास है कि जब आपके सामने राग-द्वेष नाना प्रलोभनोंके साथ सुन्दर रमणियोंके समूहोंको लेकर प्रस्तुत

होंगे, उस समय आप दृढ़ रह सकेंगे ? आप मोहराजाके भयंकर अस्त्रोंसे अपरिचित है ?"

चेतन राजा—ज्ञानदेव ! बात तो तुम्हारी ठीक है। मोहराजाने भुलावा देकर ही अपनी पुत्री कुबुद्धिके साथ मेरा विवाह कर दिया, जिसके वशीभूत हो मैने कौन-कौन कुकर्म नही किये हैं ? परन्तु हमें अपनी अतुलित शक्तिका पूर्ण विश्वास है, विजय-लक्ष्मी मिलेगी। रमणियोंके कटाक्ष-वाण हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे, परन्तु तुम्हे हमारा साथ देना पड़ेगा। वीर तुमने यदि दृढ़तासे हमारा साथ दिया तो मोहका सैन्यदल हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा। अतः रणनीतिके अनुसार विवेक-दूतको मोहराजाके पास भेज देना चाहिये, शायद सन्धि हो जाय। यहाँ किसीका बुलाना ठीक नही। जब हममे अनन्त बल है, अनन्त सुख है, फिर इतना भय क्यो ?"

बहुत विचार-विनिमयके बाद ज्ञानदेवके सेनापतित्वमे चेतनराजाकी सेना और कामदेव कुमारके सेनापतित्वमें मोहराजाकी सेनाका युद्ध होने लगा। ज्ञानदेव समरनीतिका विशेषज्ञ था, यद्यपि कामदेवकुमार भी राजनीतिका पण्डित था, पर था शरीरसे सुकुमार। कठोर बलशाली ज्ञान-देवने सुकुमार कामदेव कुमारको एक ही वाणमे धराशायी कर दिया, यद्यपि कामदेव कुमारने अपना पौरुष दिखलानेमें कोई कमी नहीं की, किन्तु ज्ञानदेवके समक्ष उसकी एक भी चाल सफल नही हुई। ज्ञानदेवने चक्रव्यूह-रचना की और द्वार-सरक्षणका भार व्रतदेवको प्रदाम किया। इस चक्रव्यूहको तोडनेमे मोहराजाकी सारी सेना अक्षम रही और ज्ञानदेवने अवसर पा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चारों वीरोंको मूर्च्छित कर दिया। मिथ्यात्वभट, जो कि मोहका बलवान सेनानी था, व्रतदेवने गिरा दिया। अविरतिको भी इस प्रकार पटका, जिससे यह वीर रणभूमिसे उठ ही नहीं सका, और सदाके लिए सो गया।

चेतनगढ़ शत्रुओंसे खाली हो रहा था, शत्रुसेना भाग रही थी और चेतन राजाने गुणस्थान प्रदेशोंका मार्ग ग्रहण कर अपने गढ़के कोने-कोनेसे शत्रुके भगानेका कार्य आरम्भ किया। यद्यपि मोहराजाकी सेना अस्त-व्यस्त थी, फिर भी कुछ सुभट, जिनमें प्रधान लोभ, छल, कपट, मान, माया आदि थे; छिपे हुए उचित समयकी प्रतीक्षामें थे। चेतन राजा मिथ्यात्व, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्व और अविरत स्थानोंसे मोहकी सेनाको खदेड़ता हुआ आगे बढ़ा और देशविरत, प्रमत्त एवं अप्रमत्त देशमे जाकर उसने मोह राजाके बलशाली सेनापति प्रमादका हनन किया। इस वीरके मारे जानेसे मोहकी सेना बलहीन होने लगी। भेद-विज्ञानका अस्त्र लेकर चेतन राजाने यहाँ भयकर युद्ध किया और क्षपकश्रेणी—ढूँढ़-ढूँढ़कर शत्रुओंको परास्त करनेके मार्गका आरोहण कर अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक नगरोंमे पहुँच ज्ञानावरणके दो वीर, मोहनीयके चार और नामकर्मके तीस वीरोंको धराशायी किया। सूक्ष्म लोभका विध्वस करनेके लिए अपने राज्यके दसवें नगर सूक्ष्मसाम्परायमें प्रवेश करना पड़ा। यहाँ थोड़ी देर तक सूक्ष्म लोभके साथ युद्ध हुआ। बेचारा जर्जरित लोभ चेतन राजाका सामना नही कर सका और ध्यानवाण-द्वारा विद्ध होकर गिर पड़ा। चेतन राजाने अब समाधि अस्त्रको अपनाया, उसने समस्त कषाय शत्रुओंको इस एक ही वाण-द्वारा परास्त कर ग्यारहवे और बारहवे नगरोको शत्रुओंसे खाली कराया। यद्यपि ग्यारहवाँ नगर उपशान्त मोह चेतन राजाके भयसे यों ही शत्रुओंसे खाली हो गया था, इसलिए उसे इस नगरमे जाना नहीं पड़ा। बारहवे क्षीण मोह नगरमे पहुँचकर मोह राजाको चेतन राजाने खूब पटका और उसका सर्वनाश कर कतिपय अवशेष शत्रुओंको परास्त करनेके लिए तेरहवें नगर सयोगकेवली मे पहुँचा और वहाँ विजयका डंका बजाता हुआ केवलज्ञान-लक्ष्मीको प्राप्तकर निहाल हो गया। इस समय एक ओर विजयी चेतन राजा आनन्दमें मग्न ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यको प्राप्तकर निष्कंटक राज्य करने

लगा और दूसरी ओर विजित मोह अपनी सेनाको खोकर चेतनकी आधीनता और महत्ता स्वीकार कर चुका था। चेतन राजाने अपने चौदहवें नगरमें पहुँच थोड़े ही समयमें मोक्षनगरी प्राप्त कर ली थी और यहीं स्थायी रूपसे राजधानी नियुक्तकर शासन करने लगा।

यह एक सुन्दर काव्य है। कविने दोहा, चौपाई, सोरठा, पद्धरि मरहठा, करिखा और प्लवङ्गम छन्दोंमे इसकी रचना की है। कुल पद्य २९६ हैं। यह काव्यके अनेक गुणोंसे समन्वित है। कल्पना, अरूप भावना, अलंकार, रस, उक्ति-सौन्दर्य और रमणीयता आदिका समवाय इसमें वर्तमान है। भावनाओंके अनुसार मधुर अथवा परुष वर्णोंका प्रयोग इस कृतिमें अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर रहा है। युद्धका वर्णन कविने कितना सजीव किया है—

काव्य-सौष्ठव

सूर बलवंत मदमत्त महा मोह के, निकसि सब सैन आगे जु आये।
मारि घमासान महा जुद्ध बहु क्रुद्ध करि, एक तें एक सातों सवाये॥
वीर सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारिकै सुभट सातों गिराये।
कुमुक जो ज्ञान की सैन सब संग धसी, मोहके सुभट मूर्छा सवाये॥
रणसिंगे बजहिं कोऊ न भजहिं, करहिं महा दोऊ जुद्ध।
इत जीव हंकारहिं, निज पर वारहिं, करँह अरिन को रुद्ध॥

युद्ध-वर्णनमे द्वित्व और संयुक्त वर्णोंका प्रयोगकर सजीवता लानेका प्रयास प्रशस्य है। शब्दचित्रो-द्वारा कविने युद्धक्षेत्रका चित्र उतारनेमें सफलता प्राप्त की है। वीर रसके सहायक भयानक और बीभत्स रसोंका निरूपण भी यथास्थान विद्यमान है। आरम्भमे सुसंस्कृत शृङ्गारका आभास भी मिलता है, कविने वीर रसकी प्रेरणाके लिए संयमित शृङ्गारका वर्णन किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक, रूपक और समासोक्ति अलंकारोंकी छटा भी कवितामे विद्यमान है। रूपक-द्वारा व्यजित आत्मिक वाणीका सिंहावलोकन करनेपर प्रतीत होता है कि कवि चिर सुखकी

लालसासे जगत्के कोलाहलपूर्ण वातावरणसे निकलकर जीवनकी आनन्द-मयी निधियाँ एकत्रित करनेमें संलग्न है तथा छल-कपट-राग-द्वेष-मोह-माया-मान-लोभ आदि विकारोंका परिमार्जनकर आत्मानन्दमें विचरण करना चाहता है और अपने पाठकोंको भी आत्मसरितामें अवगाहन, मज्जन और पान करनेकी प्रेरणा करता है। सक्षेपसे यह अनघ पद्य-बद्ध रूपक है।

एकसौ आठ पद्योंमें कवि भगवतीदासने आत्मज्ञानका सुन्दर उपदेश दिया है। यह रचना बड़ी ही सरस और हृदय-ग्राह्य है। अत्यल्प कथानक के सहारे आत्मतत्त्वका पूर्ण परिज्ञान सरस शैलीमे करा देनेमें इस रचनामे अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। कवि कहता है कि चेतन राजाकी दो रानियाँ हैं–एक सुबुद्धि और दूसरी माया। माया बहुत ही सुन्दर और मोहक है। सुबुद्धि बुद्धिमती होनेपर भी सुन्दर नही है। चेतन राजा माया रानीपर बहुत आसक्त है, दिनरात भोग-विलास में सलग्न रहता है। राज-काज देखनेका उसे बिल्कुल अवसर नहीं मिलता है, अतः राज्यकर्मचारी मनमानी करते हैं। यद्यपि चेतन राजाने अपने शरीर देशकी सुरक्षाके लिए मोहको सेनापति, क्रोधको कोत-वाल, लोभको मन्त्री, कर्म उदयको काजी, कामदेवको प्राइवेट सेक्रेटरी और ईर्ष्या-घृणाको प्रबन्धक नियुक्त किया है, फिर भी शरीर-देशका शासन चेतनराजाकी असावधानीके कारण विशृंखलित होता जा रहा है। मान और चिन्ताने प्रधानमन्त्री बननेके लिए संघर्ष आरम्भ कर दिया है। इधर लोभ और कामदेव अपना पद सुरक्षित रखनेके लिए नाना प्रकारसे देशको त्रस्त कर रहे हैं। नये-नये प्रकारके कर लगाये जाते हैं, जिससे राज्यकी दुरवस्था हो रही है। ज्ञान, दर्शन,सुख, वीर्य जो कि चेतन राजाके विश्वासपात्र अमात्य हैं, उनको कोतवाल, सेनापति, प्राइवेट सेक्रे-टरी आदिने खदेड़ बाहर कर दिया है। शरीर-देशको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ चेतनराजाका राज्य न होकर सेनापति मोहने अपना

शत अष्टोत्तरी

शासन स्थापित कर लिया है। चेतनकी आज्ञाकी सभी अवहेलना करते हैं।

मायारानी भी मोह और लोभको चुपचाप राज्यसंचालनमें सहायता देती है। उसने इसप्रकार षड्यन्त्र किया है जिससे चेतन राजाका राज्य उलट दिया जाय और वह स्वयं उसकी शासिका बन जाय। जब सुबुद्धि को चेतन राजाके विरुद्ध किये गये षड्यन्त्रका पता लगा तो उसने अपना कर्तव्य और धर्म समझ कर चेतन राजाको समझाया तथा उससे प्रार्थना की—"प्रिय चेतन, तुम अपने भीतर रहनेवाले ज्ञान आदिकी सँभाल नहीं करते हो। इन्द्रिय और शरीरके गुणोंको अपना समझ माया रानीमें इतना आसक्त होना तुम्हें शोभा नही देता। जिन क्रोध, मोह और काम कर्मचारियोंपर तुमने विश्वास कर लिया है, वे निश्चय ही तुमको ठग रहे है, तुम्हारे चैतन्य नगरपर उनका अधिकार होनेवाला है, क्योकि तुमने शरीर के हारनेपर अपनी हार और जीतनेपर जीत समझ ली है। दिन-रात माया के द्वारा निरूपित सासारिक धन्धोमे मस्त रहनेसे तुम्हे अपने विश्वासपात्र अमात्योको भी खो देना पड़ेगा। तुमने जो मार्ग अभी ग्रहण किया है, वह बिल्कुल अनुचित है। क्या कभी तुमने विचार किया है कि तुम कौन हो, कहाँसे आये हो, तुम्हे कौन-कौन धोखा दे रहे है और तुम अपने स्वभावसे किसप्रकार च्युत हो रहे हो? ये द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि तथा भावकर्म राग-द्वेषादि, जिनपर तुम्हारा अटूट विश्वास हो गया है, तुमसे बिल्कुल भिन्न हैं, इनका तुमसे कुछ भी तादात्म्य भाव नहीं है। प्रिय चेतन! क्या तुम राजा होकर अब दास बनना चाहते हो। इतने चतुर और कलाप्रवीण होकर तुमने यह बेवकूफी क्यों की? तीन लोकके स्वामी होकर मायाकी मीठी बातोंमें उलझकर भिखारी बन रहे हो। तुम्हारे ताप को देखकर मैं वेदनासे झुलस रही हूँ, तुम्हारी अन्धता मेरे लिए लज्जाकी बात है, अब भी समय है, अवसर है, सुयोग है और है विश्वासपात्र अमात्योंका सहारा। हृदयेश! अब सावधान होकर अपनी नगरीका शासन

करें, जिससे शीघ्र ही मोक्ष महलपर अधिकार किया जा सके। प्राणनाथ ! राज्य सँभालते समय तुमने मोक्षमहलको प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा भी की थी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मोक्षमहलमें रहनेवाली मुक्तिरानी इस ठगनी मायासे करोड़ों गुनी सुन्दरी और हाव-भाव प्रवीण है। उसे देखते ही मुग्ध हो जाओगे। एक बार उसका आलिंगन कर लेनेपर तुम अपनी सारी सुध-बुध भूल जाओगे। प्रमाद और अहंकार दोनों ही तुमको मुक्तिरमाके साथ विहार करनेमें बाधा दे रहे हैं।

इस प्रकार सुबुद्धिने नाना तरहसे चेतनराजाको समझाया। सुबुद्धि की बात मान लेनेपर चेतनराजा अपने विश्वासपात्र अमात्य ज्ञान, दर्शन आदिकी सहायतासे मोक्षमहलपर अधिकार करने चल दिया।

काव्यत्वकी दृष्टिसे इस रचनामे सभी गुण वर्तमान हैं। मानवके विकार और उसकी विभिन्न चित्तवृत्तियोंका अत्यन्त सूक्ष्म और सुन्दर विवेचन किया गया है। यह रचना रसमय होनेके साथ मगलप्रद है। 'शिव' और 'सुन्दर'का सयोग इसमे इतने अच्छे ढगसे दिखलाया गया है जिससे यह रचना स्थायी साहित्यमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। शैलीकी दृष्टिसे इस रचनामें सस्कृत तत्सम शब्दोंकी प्रधानता, गम्भीरता और अलंकारोंका प्रयोग सुन्दर हुआ है। भावात्मक शैलीमें कविने अपने हृदयकी अनुभूतिको सरलरूपसे अभिव्यक्त किया है। दार्शनिकताके साथ काव्यात्मक शैलीमे सम्बद्ध और प्रवाहपूर्ण भावोंकी अभिव्यजना रोचक हुई है। चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ हृदयको स्पर्श ही नहीं करती, किन्तु भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं। माधुर्य और प्रसाद गुणके साथ कतिपय पद्योंमें ओजगुण भी विद्यमान है। ब्रजभाषाका निखरा रूप भावोंको हृदयंगम करनेमें अत्यधिक सहायक है।

कवि चेतन राजाकी व्यवस्थाका विश्लेषण करता हुआ कहता है—

काया-सी जु नगरीमें चिदानन्द राज करै;
माया-सी जु रानी पै मगन बहु भयो है।

मोह-सो है फौजदार क्रोध-सो है कोतवार ;
लोभ-सो वजीर जहाँ लूटिबैको रह्यो है ॥
उदैको जु काजी मानै, मानको अदल जानै ;
कामसेनाका नवीस आई वाको कह्यो है ।
ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूलि रह्यो ;
सुधि जब आई तबै ज्ञान आय गह्यो है ॥

सुबुद्धि चेतनराजाको समझाती है—

कौन तुम, कहाँ आए कौन बौराये तुमहिं ;
काके रस राचे कछु सुधहू धरतु हो ।
कौन हैं ये कर्म जिन्हें एकमेक मानि रहे ;
अजहूँ न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो ॥
वे दिन चितारो जहाँ बीते हैं अनादि काल ;
कैसे कैसे संकट सहे हू विसरतु हो ।
तुम तो सयाने पै सयान यह कौन कीन्हों ;
तीन लोक नाथ ह्वै के दीन से फिरतु हो ॥
सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा काहु ;
कौन विवसाहु जाहि ऐसी लीजियतु है ।
दस द्यौस विषै सुख ताको कहो केतो दुख ;
परिकै नरक मुख कौलों सीजियतु है ।
केतो काल बीत गयो, मनहू न छोर लोय ;
कहूँ तोहि कहा भयो ऐसो रीझियतु है ।
आपु ही विचार देखो, कहिबे को कौन लेखो ;
आवत परेखो तातें कह्यो कीजियतु है ॥

इसमें पाँचों इन्द्रियोंका सुन्दर संवाद भैया भगवतीदास-द्वारा वर्णित

है। बताया गया है कि एक सुरम्य उद्यानमें एक दिन एक मुनिराज धर्मोपदेश दे रहे थे। उनकी धर्मदेशनाका श्रवण करनेके लिए अनेक व्यक्ति एकत्रित थे। सभामें नाना प्रकारकी शकाऍ की जाने लगीं। एक व्यक्तिने मुनिराजसे पूछा—"प्रभो! पञ्चेन्द्रियोंके विषय सुखकर है या दुखकर।"

पञ्चेन्द्रिय-संवाद

मुनिराज—"ये पञ्चेन्द्रियॉ बडी दुष्ट हैं, इनका जितना ही पोषण किया जाता है, दुःख देती है।"

एक विद्याधर बीचमें ही इन्द्रियोका पक्ष लेकर बोला—"महाराज इन्द्रियॉ दुष्ट नही है। इनकी बात इन्हीके मुखसे सुनिये, ये प्राणियोंको कितना सुख देती हैं।"

मुनिराज—"इन्द्रियॉ मेरे सामने प्रस्तुत हैं। मैं आज्ञा देता हूँ कि जो इनमें प्रधान हो, वह अपनी महत्ता बतलाये।"

मुनिराजके इन वचनोंको सुनकर सबसे पहले नाक अपनेको बडा सिद्ध करती हुई बोली—"मेरे समान महान् ससारमे कौन है? नाकके लिए राजा-महाराजा, गरीब-अमीर सभी कष्ट सहन करते हैं। नाक रखनेके लिए ही तो बाहुबलीने दीक्षा धारण की, रामने वन-वन भ्रमण किया, सती सीताने अग्निमे प्रवेश किया, द्रौपदी सोमा आदिने अनेक कष्ट सहन किये और कितने ही साधु बनकर दर-दरके भिखारी बने। मेरी महत्ताका पता इतनेसे ही लगाया जा सकता है कि नाककी रक्षाके लिए कोई भी व्यक्ति अपना सर्वस्व छोड़नेको तैयार हो जाता है।"

नाककी इस आत्मप्रशसाको सुनकर कान कहता है—"री मूर्खा! तुझे घमण्ड हो गया है, तेरे दर्पको मैं चूर कर दूँगा। तू कितनी घिनावनी है, दिनरात तुझमेसे पानी गिरता रहता है। छींक किसी भी इष्ट काममें बाधक हो जाती है। तू गन्दगीका भाण्डार है। देख मेरी ओर, मैं कितना भाग्यशाली हूँ। अच्छे-अच्छे मधुर शब्द श्रवण कर कविता रचनेकी प्रेरणा मैं ही देता हूँ। धर्मोपदेश सुननेका काम भी

मेरा ही है, यदि मैं उपदेश न सुनूँ तो यह जीव कभी भी मोक्ष प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं कर सकता है। द्वादशांग वाणीका श्रवण मैं ही करता हूँ, मेरी ही प्रेरणाको प्राप्त कर जीव आत्म-कल्याण करनेके लिए तैयार होता है।"

कानकी इन अहम्मन्यतापूर्ण बातोंको सुनकर ऑख बोली—"तुझे झूठी बड़ाई करते हुए लज्जा नहीं आई, झूठ बोलना पाप है। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे द्वारा ही अश्लील और गन्दी बाते सुनकर राग-द्वेष उत्पन्न होता है। तुम्हारे द्वारा सुनी गई बातें झूठी भी हो सकती हैं; कितने ही व्यक्ति इन झूठी बातोंके कारण आपसमे कलह करते हैं, लडते हैं तथा कितने ही लड़-झगडकर मृत्युको भी प्राप्त हो जाते हैं। मुझसे बडे तुम कभी नही हो सकते। मेरे द्वारा देखी गयी बात कभी भी झूठी नहीं हो सकती है। सुन्दर और मनोरंजक दृश्योका अवलोकन मै ही करती हूँ। मेरे द्वारा ही तुम तीर्थकरोंके मनोहर रूपको देख सकते हो, मेरे द्वारा ही साधु-सन्तोंके दर्शन हो सकते है। यदि मैं न रहूँ तो ससारका काम चलना बन्द हो जाय। शरीरमें सबसे प्रधानता मेरी ही है। सिद्धान्त-ग्रन्थोंका अध्ययन मुझसे देखे बिना कोई कैसे कर सकेगा? रास्ता चलना, देना-लेना, पुण्य कार्य करना मेरी ही कृपाका फल है। मेरे रहनेपर ही भाई-बन्धु इज्जत करते है। एक ही क्षणमें मै क्यासे क्या बना देती हूँ।"

ऑखकी इस आत्मश्लाघाको सुनकर रसना बोली—"अरी! तुझे काजलसे रँगकर भी लज्जा नहीं आती। तेरी ही कृपाका यह फल है कि सुन्दरी रमणियाँ अपने अद्भुत सलोने रूप-द्वारा साधु-मुनियोको भ्रष्ट कर देती हैं। तुझसे अधिक तो मेरा ही प्रभाव है, अतः मै तुझसे बड़ी हूँ। क्या तू नही जानती कि मैं ही षट्रस व्यजनोंका स्वाद लेती हूँ। मेरे बिना शरीर पुष्ट नही रहेगा, परिणाम यह होगा कि न कान सुन सकेगा, न ऑख देख सकेगी और न नाक सूँघ सकेगी। स्वाद लेनेके अतिरिक्त

मन्त्रसिद्धि और साहित्यके रसका आस्वादन मैं ही करती हूँ । मुझमे इतनी प्रबल शक्ति है कि मैं शत्रुको मित्र बना सकती हूँ। बड़े-बड़े मुनिराज और धर्मोपदेशक मेरे द्वारा ही धर्मका वर्णन करते हैं। स्वर्ग, नरक और मोक्षकी चर्चा मेरे द्वारा ही होती है।"

बीचमे बात काटकर स्पर्शनेन्द्रिय बोल उठी—"अरी जिह्वा ! व्यर्थ अभिमान मत कर। तेरी ही कृपासे आपसमें युद्ध होता है, तू ही राजा-महाराजो-द्वारा खून-खराबी कराती है। अभक्ष्य-भक्षण करना भी तेरा ही काम है। मैं अपने सम्बन्धमें अधिक क्या कहूँ—नाक, कान, ऑख सभी तो मेरे पॉवो पड़ते हैं, तुम सभी इन्द्रियाँ मेरी दासी हो। मेरे सामने तुमने व्यर्थमे झूठी बड़ाई कर पाप अर्जन किया है। मेरी महत्ता यही है कि मेरे बिना जप, तप, दान, पुण्य आदि कोई भी कार्य नही हो सकता है। हाथोंसे दान दिया जाता है, पॉवोंसे तीर्थयात्रा की जाती है और मेरे ही द्वारा ससारके विषयोंका अनुभव किया जाता है। जानती हो मेरे बिना क्रिया नहीं और क्रियाके बिना सुख नहीं, अतः मैं सब इन्द्रियोंमे प्रधान हूँ।"

इसी बीचमे मन बोल उठा—"अरी मूर्खा, तुम क्या अनाप-सनाप बकती हो। तुम्हारे समान धूर्त कोई भी नही है। रमणियोंके प्रेमालिंगन से तुम्ही जीवको बॉधती हो, तपस्यासे विचलित करना तुम्हारा ही काम है। अतः तुमसे बड़ा और प्रधान मैं हूँ। मेरे शुद्ध रहने पर ही सब कुछ शुद्ध रह सकता है। मै ही दया, ममता आदिको करता हूँ, जितने भी विकार हैं, मुझमें ही उत्पन्न होते हैं। इन्द्रियोंका संचालन मेरे ही द्वारा होता है। अतः मै सबका राजा हूँ और इन्द्रियॉ मेरी दासी हैं। मेरी प्रेरणाके बिना एक भी इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकती है। जीवके समस्त कार्योंका संचालन मेरे ही हाथमें है।"

इसी बीच मुनिराज हँसते हुए कहने लगे—"अरे मूर्ख मन, तू क्यों गर्व करता है। जीवके पापोंकी अनुमोदना तुम्हारे ही द्वारा होती है।

इन्द्रियाँ स्थिर भी रहती हैं, किन्तु तुम सदा बन्दरके समान चंचल रहते हो। कर्मबन्धनका कारण रे मन, तू ही है। विषयोंकी ओर दौड़ना तेरा सहज स्वभाव है।"

मुनिराजकी इन बातोको सुनकर नमस्कार करता हुआ मन कहने लगा—"प्रभो! मै अपना दोष समझ गया। आप कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि परमात्मा कौन है और सुख किस प्रकार उपलब्ध होता है।"

मुनिराज—"राग-द्वेषके दूर हो जानेपर यह आत्मा ही परमात्मा बन जाती है। परमात्मा दो प्रकारके है—सकल और निकल। परमात्माके ये भेद राग-द्वेषके अभावकी तारतम्यताके कारण हैं। यद्यपि किसी भी परमात्मामे राग-द्वेप बिलकुल नही रहता, परन्तु जर्जरित संस्कार और वासनाएँ इस जीवके साथ लगी रह जाती है, जिससे निकल परमात्मा शरीर के बन्धनको छोडनेके उपरान्त ही यह जीव बन पाता है।"

इस पञ्चेन्द्रिय सवादमे इन्द्रियोंके उत्तर-प्रत्युत्तर बड़े ही सरस और स्वाभाविक है। कविने प्रत्येक इन्द्रियका उत्तर इतने प्रभावक ढगसे दिखाया है, जिससे पाठक प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। सर्व प्रथम अपने पक्षको स्थापित करती हुई नाक कहती है—

> नाक कहै प्रभु मैं बड़ी, और न बड़ो कहाय।
> नाक रहै पत लोकमें, नाक गए पत जाय॥
> प्रथम वदन पर देखिए, नाक नवल आकार।
> सुन्दर महा सुहावनो, मोहित लोक अपार॥
> सुख विलसै संसारका, सो सब मुझ परसाद।
> नाना वृक्ष सुगन्धि को, नाक करै आस्वाद॥

नाकके पक्षको सुनकर कानका उत्तर—

> कान कहै री नाक सुन, तू कहा करै गुमान।
> जो चाकर आगे चलै, तो नहिं भूप समान॥

नाक सुरनि पानी झरै, बहै श्लेषम अपार।
गूँथनि करि पूरित रहै, लाजै नहीं गँवार॥
तेरी छींक सुनै जिते, करै न उत्तम काज।
मूदै तुह दुर्गन्धमें, तऊ न आवै लाज॥
वृषभ ऊँ नारी निरख, और जीव जग माँहिं।
जित तित तोको छेदिये, तोऊ लजानो नाहिं॥

× × ×

कानन कुण्डल झलकता, मणि मुक्ताफल सार।
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सब संसार॥
सातों सुरको गाइबो, अद्भुत सुखमय स्वाद।
इन कानन कर परखिये, मीठे मीठे नाद॥
कानन सरभर को करै, कान बड़े सरदार।
छहों द्रव्य के गुण सुनै, जानै सबद विचार॥

यह एक सरस आध्यात्मिक रूपक काव्य है। इसका सृजन कवि भगवतीदासने मानवात्माकी उस चिरन्तन पुकारको लेकर किया है, जो

मधुबिन्दुक चौपाई

मानव-मनमे अनादि कालसे व्याप्त जड़ीभूत अन्ध तमिस्रा-पुञ्जका विदारण कर चिर-अमर आनन्द-भासके अन्वेषणकी आकाक्षासे व्याप्त है। कविने रूपकात्मक कथानकमें अपने अन्तःप्राणोका स्पन्दन भर कर शाश्वत वास्तविकताका अक्षम स्वरूप कलात्मक रूपसे प्रस्फुटित किया है। इसके मर्ममे निहित चिरन्तन सत्य सदा सूर्यकी तरह प्रोज्ज्वल रहेगा, युग या समय-विशेषका प्रकोप श्रावणके मेघोंके समान इसके उज्ज्वल स्वरूपको क्षणभरके लिए भले ही अन्धकार-मय बना दे, परन्तु इसका दिव्य सन्देश सदा ही मानवताका पाठ पढ़ाता रहेगा। कविने अतीन्द्रिय आनन्दका निरूपण करते हुए नाना मनोद्वेग एवं मायामय दृश्यपटोंका विवेचन बड़े ही हृदय-ग्राह्य ढंगसे किया है।

प्रलोभन इस मानवको मानवतासे किस प्रकार दूर कर देते हैं तथा जीवन-क्षितिज इन प्रलोभनोंसे कितना धूमिल हो जाता है, आदिका सूक्ष्म विश्लेषण इस लघुकाय काव्यमें विद्यमान है। कञ्चन और कामिनीका प्रलोभन ही प्रधान है, इसीके अधीन होकर मानव नाना प्रताड़नाओ, वेदनाओं और उद्वेलनोंका सन्दोह अपनेमें समेटे अखण्ड ऐश्वर्य-सम्भोगके अप्रतिहत आत्मोल्लासमे रत रहता है। परन्तु इस अपरिमित सुख-भाण्डारमे भी आकांक्षाओंकी अतृप्ति रहनेसे वेदनाजन्य अनुभूति वर्त्तमान रहती है। कविने अपनी भावुकता और कलात्मकताका आश्रय लेकर इस रूपकमे उपर्युक्त तथ्यकी सुन्दर विवेचना की है।

कविने मधुबिन्दुकका रूपक देते हुए बताया है कि एक दिन एक मुनिराज पूछे गये प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए कथा कहने लगे—"एक पुरुष वनमें जाते हुए रास्ता भूलकर इधर-उधर भटकने लगा। जिस अरण्यमें वह पहुँच गया था, वह अरण्य अत्यन्त भयकर था। उसमे सिंह और मदोन्मत्त गजोंकी गर्जनाएँ सुनाई पड़ रही थी। वह भयाक्रान्त होकर इधर-उधर छिपनेका प्रयास करने लगा, इतनेमे एक पागल हाथी उसे पकड़नेके लिए दौड़ा। हाथीको अपनी ओर आते हुए देखकर वह व्यक्ति भागा। वह जितनी तेजीसे भागता जाता था, हाथी भी उतनी ही तेजीसे उसका पीछा कर रहा था। जब उसने इस प्रकार जान बचते न देखी तो वह एक वृक्षकी शाखासे लटक गया, इस वृक्षकी शाखाके नीचे एक बड़ा अन्धकूप था तथा उसके ऊपर एक मधुमक्खीका छत्ता लगा हुआ था। हाथी भी दौड़ता हुआ उसके पास आया, पर शाखासे लटक जानेके कारण, वह उस पेड़के तनेको सूँड़से पकड़कर हिलाने लगा। वृक्षके हिलनेसे मधुछत्तेसे एक-एक बून्द मधु गिरने लगा और वह पुरुष उस मधुका आस्वादन कर अपनेको सुखी समझने लगा।

नीचेके अन्धकूपमे चारों किनारोंपर चार अजगर मुँह फैलाये हुए बैठे थे तथा जिस शाखाको वह पकड़े था, उसे काले और सफेद रङ्गके

दो चूहे काट रहे थे। उस व्यक्तिकी बुरी अवस्था थी, पागल हाथी वृक्षको उखाड़कर उसे मार डालना चाहता था तथा हाथीसे बच जानेपर चूहे उसकी डालको काट रहे थे, जिससे वह अन्धकूपमे गिरकर अजगरोंका भक्ष्य बनने जा रहा था। उसकी इस दयनीय अवस्थाको आकाशमार्गसे जाते हुए विद्याधर-दम्पत्तिने देखा। स्त्री अपने पतिसे कहने लगी—"स्वामिन्, इस पुरुषका जल्द उद्धार कीजिये। यह जल्दी ही अन्धकूपमे गिरकर अजगरोंका शिकार होना चाहता है। आप दयालु हैं, अतः अब विलम्ब करना अनुचित है, इसे विमानमे बैठाकर इस दुःखसे छुटकारा दिला देना हमारा परम कर्त्तव्य है।" स्त्रीके अनुरोधसे विद्याधर वहाँ आया और उससे कहने लगा—"आओ! मै तुम्हारा हाथ पकड़े लेता हूँ। विश्वास करो मै तुम्हे विमान-द्वारा सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दूँगा।" वह पुरुष बोला—"मित्र, आप बडे उपकारी है, कृपया थोडी देर रुके रहें, अबकी बार गिरनेवाली मधु-बून्दको खाकर मै आता हूँ"। विद्याधरने बहुत देर तक प्रतीक्षा करनेके बाद पुनः कहा—"भई, निकलना है तो निकलो। विलम्ब करनेसे तुम्हारे प्राण नही बच सकेंगे, जल्दी करो।"

पुरुष—"महाभाग! इस मधुबून्दमें अपूर्व स्वाद है। मै अब निकलता हूँ, अबकी बूँद और चाट लेने दीजिये।" बेचारे विद्याधरने कुछ समय तक प्रतीक्षा करनेके उपरान्त पुनः कहा—"क्या भाई! तुम्हे इससे छुटकारा पाना नहीं है? जल्दी आओ, अब मुझे देरी हो रही है।" लोभी पुरुष बार-बार उसी प्रकार एक बूँद और चाट लेने दो, उत्तर देता रहा। अब निराश होकर विद्याधर चला गया और कुछ समय पश्चात् शाखाके कट जानेपर वह उस अन्ध कूपमे गिर गया तथा एक किनारेके अजगरका शिकार हुआ। इस रूपकको कविने स्पष्ट करते हुए कहा है—

यह संसार महा वन जान। तामहिं भयभ्रम कूप समान॥
गज जिम काल फिरत निशदीस। तिहँ पकरन कहुँ विस्वावीस॥

वटकी जटा लटकि जो रही । सो आयुर्दा जिनवर कही ॥
तिहँ जर काटत मूसा दोय । दिन अरु रैन लखहु तुम सोय ॥
माँखी चूँटत ताहि शरीर । सो बहु रोगादिक की पीर ॥
अजगर पर्यो कूपके बीच । सो निगोद सबतैं गति बीच ॥
याकी कछु मरजादा नाहिं । काल अनादि रहै इह माहिं ॥
तातैं भिन्न कही इहि ठौर । चहुँगति महितैं भिन्न न और ॥
चहुँदिश चारहु महाभुजंग । सो गति चार कही सरवंग ॥
मधुकी बून्द विषै सुख जान । जिहँ सुख काज रह्यौ हितमान ।
ज्यों नर त्यों विषयाश्रित जीव । इह विधि संकट सहै सदीव ॥
विद्याधर तहँ सुगुरु समान । दै उपदेश सुनावत ज्ञान ॥

कविने इस रूपक द्वारा विषय-सुख और सारहीनताका सुन्दर विश्लेषण किया है। तथा मिथ्यात्व, अविरति आदिको त्यागकर सम्यक् श्रद्धालु और सम्यक् ज्ञानी बननेके लिए ज़ोर दिया है।

स्वप्नबत्तीसी, मिथ्यात्वचतुर्दशी आदि और भी कई रचनाएँ आध्यात्मिक रूपक काव्यके अन्तर्गत आती हैं। जैन रूपक काव्यकी परम्परा बहुत दिनोंतक चलती रही।

हिन्दी साहित्यमें जायसीके पद्मावतके पश्चात् रूपक साहित्यकी धारा सूखी-सी मालूम पडती है। यद्यपि नाट्यक्षेत्रमें भारतेन्दुका पाखण्ड-विडम्बन, प्रसादका कामना नाटक और कवि पन्तका ज्योत्स्ना रूपकके सुन्दर उदाहरण हैं, तो भी इस अंगके विकासकी अभी आवश्यकता है। काव्य साहित्यमें प्रसादकी 'कामायनी' रूपक काव्य है। भारतेन्दुने कलियुगके प्रभावसे जीवनमे सतोगुणका अभाव एवं रजोगुण-तमोगुणका प्राधान्य है, इसका चित्रण इस रूपकमे किया है। नाटककारने बताया है कि शान्ति और करुणा दो सखियाँ हैं। शान्ति अपनी प्यारी माँ श्रद्धाके वियोगमें दुःखी है। करुणा अपनी सखी शान्तिको सान्त्वना देती हुई तीर्थों,

आश्रमों, मठों, देवालयों एवं मुनियोंके आवासोंमें श्रद्धाको ढूँढ़नेको कहती है। शान्ति सर्वत्र श्रद्धाको ढूँढ़ती है, पर उसे सर्वत्र पाखण्ड ही दिखलायी पड़ता है। धार्मिक श्रेष्ठताका भाव केवल शब्दोंमें ही है, क्रियात्मक जीवनमें प्रत्येक धर्मावलम्बी धर्मके उदात्तस्वरूपको भूलकर इन्द्रिय-सुख-लिप्सामें ही धर्म समझता है। यह नाटक ज्ञानसूर्योदय नाटककी छाया-सा प्रतीत होता है।

कवि प्रसादका कामना नाटक सांस्कृतिक रूपक है। कामना मानव-मनःलोककी रानी है, वह विलासके प्रति आकृष्ट होती है, पर उसके साथ उसका विवाह नहीं होता और अन्तमें सन्तोषके साथ उसका परिणय हो जाता है। विलास कामनाको छोड़ लालसाके साथ परिणय करता है—दोनो एक दूसरेके आकर्षणपर मुग्ध हैं। विलास अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए स्वर्ण और मदिराका प्रचार करता है, पश्चात् शनैः-शनैः सभ्य शासनकी दुहाई देकर सभी लोगोंपर नियन्त्रण करना आरम्भ कर देता है। जब मानवता त्राहि-त्राहि करने लगती है, तो कामनाको अपनी भूल अवगत हो जाती है और वह सन्तोषको वरण करती है। सब मिलकर विलास और लालसाको उनकी समस्त स्वर्णराशिके साथ समुद्रमे विसर्जित कर देते है। वह रूपक सागोपाङ्ग है।

जैन काव्यके रूपक भी साङ्गोपाङ्ग है। यद्यपि कथामें मानवीय रोचकता कुछ क्षीण है, सैद्धान्तिक आधार कुछ अधिक स्पष्ट होनेके कारण मानव मनको रमानेमें कुछ असमर्थसे है; पर मानव मनको थकाते या बोझिल नही बनाते है। कवित्वका उल्लास प्रत्येक काव्यमे विद्यमान है। पात्रोंका चरित्र-विलास, उनका मासल व्यक्तित्व और आकर्षक वार्तालाप इन काव्योमे प्रायः नही है, फिर भी विचारोंका सुन्दर संकलन हुआ है। सूक्ष्म शरीरधारी पात्रोंका अतीन्द्रिय कर्मलोक स्वभावतः मनोरञ्जक होता है। इन काव्योंमे सिद्धान्त और कविता जीवनकी आधार भूमिपर सहज समन्वित हैं। सुनहली कल्पनाएँ वायवी वातावरणमे कविताकी रग-

विरंगी क्यारियोंमें सिद्धान्तोंकी कुसुमवाटिका आरोपित करती हैं। यह वाटिका केवल इन्द्रियोंको ही तृप्ति नहीं देती, प्रत्युत अतीन्द्रिय जगत्को भी शान्ति प्रदान करती है। जीवनके रागात्मक सम्बन्धोंसे पृथक् हो मानव आध्यात्मिक लोकमें विचरण करने लगता है। जैन कवियोंने रूपकके अमूर्त सिद्धान्तोंमें और मूर्त कथावस्तुमें समानान्तर चलनेवाली एक साम्य भावना अंकित की है। साम्य प्रायः इतना स्पष्ट और कथाका आवरण इतना झीना है कि सिद्धान्त स्वयं बोलते हुए सुनाई पड़ते हैं।

पञ्चमाध्याय

प्रकीर्णक काव्य

जीवनके सूक्ष्म व्यापक सत्योंका उद्घाटन करना, मानवके प्रकृत राग-द्वेषोका परिमार्जन करना एव मानवकी स्वभावगत इच्छाओं, आकाक्षाओं और प्रवृत्ति-निवृत्तियोका सामञ्जस्य करना ही जैन प्रकीर्णक काव्योंका वर्ण्य विषय है। इन काव्योमे मानवको जड़तासे चैतन्यकी ओर, शरीरसे आत्माकी ओर, रूपसे भावकी ओर बढ़ना ही ध्येय बतलाया गया है। जीवनकी विभूति त्याग और सयम है, यह त्याग भावुकताका प्रसाद न होकर ज्ञानका परिणाम होता है। जबतक जीवनमें राग-द्वेषकी स्थिति बनी रहती है तबतक त्याग और सयमकी प्रवृत्ति आ नही सकती। राग और द्वेष ही विभिन्न आश्रय और अवलम्बन पाकर अगणित भावनाओंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। जीवनके व्यवहार-क्षेत्रमे व्यक्तिकी विशिष्टता, समानता एव हीनताके अनुसार उक्त दोनो भावोंमे मौलिक परिवर्त्तन होता है। साधु और गुणवान्के प्रति राग सम्मान हो जाता है, यही समानके प्रति प्रेम एव हीनके प्रति करुणा बन जाता है। मानव राग भावके कारण ही अपनी अभीष्ट इच्छाओकी पूर्ति न होनेपर क्रोध करता है, अपनेको उच्च और बड़ा समझ कर दूसरोका तिरस्कार करता है, दूसरोंकी धन-सम्पत्ति एव ऐश्वर्य देखकर हृदयमें ईर्ष्याभाव उत्पन्न करता है तथा सुन्दर रमणियोंके अवलोकनसे काम-तृष्णा उसके हृदयमें जाग्रत हो जाती है।

जिस प्रकार रोगकी अवस्था और उसके निदानके मालूम हो जानेपर रोगी रोगसे निवृत्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, उसी प्रकार प्रत्येक

व्यक्ति संसाररूपी रोगका निदान और उसकी अवस्थाको जानकर उससे मुक्त होनेका प्रयास कर सकता है। संसारके दुःखोंका मूल कारण राग-द्वेष हैं, इन्हें शास्त्रीय परिभाषामें मिथ्यात्व कहा जाता है। आत्माके अस्तित्वमें विश्वास न कर अनात्मरूप—राग-द्वेष रूप श्रद्धा करनेसे मनुष्य-को स्व-परविवेक नहीं रहता है, जड़-शरीरको आत्मा समझ लेता है तथा स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, ऐश्वर्यमें रागके कारण लिप्त हो जाता है; इन्हे अपना समझकर इनके सद्भाव और अभावमें हर्ष-विषाद उत्पन्न करता है।

आत्मविश्वासके अभावमे ज्ञान भी मिथ्या रहता है। अतएव कषाय और असयमसे युक्त आचरण भी मिथ्याचरण कहा जाता है। अनात्म-विषयक प्रवृत्ति होनेसे इस मानवको सर्वदा कष्ट भोगना पड़ता है। इसी कारण सदाचारसे विमुख मानवको आत्मभावमे प्रतिष्ठित करना सत्सा-हित्यका ध्येय माना गया है। प्रकीर्णक काव्यके रचयिता जैन आचार्यों और कवियोने मानवका परिष्कार करनेके लिए धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि आदर्शोंकी सरस विवेचना की है। उन्होंने मानवको व्यष्टिके तलसे उठाकर समष्टिके तलपर प्रतिष्ठित किया है। बहिर्जगत्के सौन्दर्यकी अपेक्षा अन्तर्जगत्के सौन्दर्यका इन्होंने प्रकीर्णक काव्योमे विशेष निरूपण किया है। यह सौन्दर्य क्षणिक आनन्दको प्रदान करनेवाला नहीं है, अपितु मानव-हृदयकी गूढ़तम जटिल समस्याओका प्रत्यक्षीकरण करनेवाला है।

जो कवि मानवके अन्तर्जगत्के रहस्यको खोलकर देखता है, उसकी मानसिक पहेलियोको सुलझाता है, वही श्रेष्ठ कविके सिंहासनपर आरूढ़ होनेका अधिकारी है। यद्यपि कुछ आलोचक काव्यके इस उपयोगिता-वादी दृष्टिकोणको स्वीकार नहीं करते है तथा आचारात्मक वर्णनोंकी प्रधानता होनेसे दूसरे काव्य साहित्यसे पृथक् ही कर देना चाहते हैं; परन्तु वे सम्भवतः इसे भुला देते हैं कि जीवनमे जो प्रमुख इच्छाएँ और कामनाएँ हैं, साहित्यमे वे ही स्थायी भाव हैं। जो साहित्यकार

मानवको अनात्म-भावनाओंसे मोड़कर आत्मभावनाओंकी समचतुरस्र भूमिमें ले जाता है और वहाँ जीवनका यथार्थ परिज्ञान करा देता है, उसे स्थायी साहित्यका निर्माता माननेमें किसीको भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। हाँ, जहाँपर भावोंकी अप्रतिहत धारा न होकर कोरा उपदेश रहता है, वहाँ निश्चय ही काव्य निष्प्राण हो जाता है। जैन प्रकीर्णक काव्यके निर्माताओंने अपार भाव-भेदकी निधिको लेकर प्रायः श्रेष्ठ काव्य ही रचे हैं, जो युग-युगतक सांस्कृतिक चेतना प्रदान करते रहेंगे।

काव्यके सत्य, शिवं और सुन्दरं इन तीनों अवयवोंमेंसे जैन प्रकीर्णक काव्योंमे शिवत्व—लोकहितकी ओर विशेष ध्यान दिया है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि सत्यं और सुन्दरकी अवहेलना की गयी है। इन काव्योंमें सौन्दर्य और सत्यकी स्वाभाविकता इतनी प्रचुरमात्रामे पायी जाती है, जिससे उदात्त भावनाओका सचार हुए बिना नही रहता। तथ्य यह है कि लोकहितकी प्रतिष्ठाके लिए जैन प्रकीर्णक काव्य-रचयिताओंने रचना-चातुर्यके साथ मानसिक शक्तिके निमित्त सद्वृत्तियोंकी आवश्यकता अनिवार्य रूपसे प्रतिपादित की है।

कवि बनारसीदासकी सूक्तिमुक्तावली, ज्ञानपचीसी, अध्यात्मबत्तीसी, कर्मछत्तीसी, मोक्षपैड़ी, शिवपचीसी, ज्ञानबावनी; भैया भगवतीदासकी पुण्यपचीसिका, अक्षरबत्तीसिका, शिक्षावली, गुणमजरी, अनादिबत्तीसिका, मनबत्तीसी, स्वप्नबत्तीसी, वैराग्यपचीसिका, आश्चर्यचतुर्दशी; कवि रूपचन्दको परमार्थ-शतक दोहा; कवि द्यानतरायका 'सुबोधपचासिका' धर्मपचीसी, व्यसन त्याग षोड़श, सुखबत्तीसी, विवेकबीसी, धर्मरहस्य-बावनी, व्यौहारपचीसी, सज्जनगुणदशक; कवि आनन्दघनकी आनन्द-बहत्तरी; भूधर कविका जैनशतक, बुधजन कविकी बुधजनसतसई; डालूरामका गुरूपदेश श्रावकाचार एवं दौलतराम कविकी छहढाला प्रसिद्ध प्रकीर्णक काव्य हैं। इन सभी कवियोंने आचार और नीतिकी अनेक बातें

सरस रूपमे अंकित की हैं। यहाँ कुछ रचनाओंके सम्बन्धमें प्रकाश डाला जायगा।

संस्कृत भाषामे कवि सोमप्रभने सूक्ति-मुक्तावलीकी रचना की है। कविवर बनारसीदासने इसका इतना सरल और सरस अनुवाद किया है कि अनुवाद होनेपर भी इस रचनामे मौलिकताका आनन्द आता है। कविने जीवनोपयोगी, आत्मोत्थानकारी बातें अद्भुत ढगसे उपस्थित की हैं। मूर्ख मनुष्य इस मानव जीवनको किस प्रकार व्यर्थ खोता है, इसका निरूपण करता हुआ कवि कहता है कि जैसे विवेकहीन मूर्ख व्यक्ति हाथीको सजाकर उसपर ईंधन ढोता है, सोनेके पात्रमे धूल भरता है, अमृतसे पैर धोता है, कौएको उडानेके लिए रत्न फेंककर रोता है, उसी प्रकार वह इस दुर्लभ मानव शरीरको पाकर आत्मोद्धारके बिना योंही खो देता है। कविका निरूपण जितना प्रभावोत्पादक है, उतना ही मर्मस्पर्शी भी है। कवि कहता है—

सूक्ति-मुक्तावली

ज्यों मति हीन विवेक बिना नर, साजि मतङ्गज ईंधन ढोवै।
कंचन भाजन धूल भरै शठ, मूढ़ सुधारस सों पग धोवै॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार उदधि मणि मूरख रोवै।
त्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि' पाय अजान अकारथ खोवै॥

लक्ष्मी कितनी चचल होती है और यह कितने तरहकी विलास-लीलाएँ करती है, इसका चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि वह सरिताके जल-प्रवाहके समान नीचकी ओर ढलती है, निद्राके समान बेहोशी बढाती है, बिजलीकी तरह चचल है तथा धुँएके समान मनुष्यको अन्धा बनाती है। यह तृष्णा अग्निको उसी तरह बढ़ाती है जैसे मदिरा मत्तताको। वेश्या जिस तरह कुरूप-सुरूप, शूद्र-ब्राह्मण, ऊँच-नीच, विद्वान्-मूर्ख, आदिसे दिखावटी स्नेह करती है, उसी प्रकार यह भी सभीसे कृत्रिम प्रेम करती है। वेश्याके समान ही विश्वघातिनी और नाना दुर्गुणोंकी खान है। कवि इसी आशयको स्पष्ट करता हुआ कहता है—

नीच की ओर ढरै सरिता जिमि, घूम बढ़ावत नींदकी नाईं।
चंचलता ह्वै प्रगटै चपला जिमि, अन्ध करै जिम धूमकी झाँईं॥
तेज करै तिसना दव ज्यों मद, ज्यों मद पोषित मूढ़के ताईं।
ये करतूत करै कमला जग, डोलत ज्यों कुलटा बिन साईं॥

समस्त दोषोंको उत्पन्न करनेवाला अहंकार विकार है। इस 'अह' प्रवृत्तिके आधीन होकर मनुष्य दूसरोंकी अवहेलना करता है। अपनेको बडा और अन्यको तुच्छ या लघु समझता है। अतएव समस्त दोष इस एक ही दुष्प्रवृत्तिमे निवास करते है। कवि कहता है कि इस अभिमानसे ही विपत्तिकी सरिता कल-कल ध्वनि करती हुई चारो ओर प्रवाहित हो रही है। इस नदीकी धारा इतनी प्रखर है, जिससे यह एक भी गुणग्रामको अपने पूरमे बहाये बिना नही छोडती। अतएव यह 'अहंभाव' एक विशाल पर्वतके तुल्य है, कुबुद्धि और माया इसकी गुफाएँ हैं, हिंसक बुद्धि धूम-रेखाके समान और क्रोध दावानलके समान है। कवि कहता है—

जातैं निकस विपति सरिता सब; जगमें फैल रही चहुँ ओर।
जाके ढिंग गुणग्राम नाम नहिं; माया कुमतिगुफा अति घोर॥
जहँ वधबुद्धि धूमरेखा सम; उदित कोप दावानल जोर।
सो अभिमान पहार पटंतर; तजत ताहि सर्वज्ञ किशोर॥

इस काव्यमे जीवनोपयोगी अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरि-ग्रह एव संयमकी विवेचनाके साथ क्रोध, मोह, लोभ, अभिमान, काम, ईर्ष्या, घृणा आदि विकारोंकी आलोचना की गयी है। भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियोंसे रचना उपादेय है।

मानवके शान्त गम्भीर हृदयको अज्ञान सर्वदा वेदनामय बनाता रहा है। ज्ञानका जो अश शिवत्वका उद्घाटन करता है, उसके तिरोहित या आच्छादित हो जानेसे मानवका मानवत्व ही लुप्त हो जाता है। कविने इस रचनामे ज्ञानकी महिमा का मनोहर वर्णन किया है तथा कवि मानव-हृदयके अन्तरतमको टटो-

ज्ञानबावनी

लता हुआ प्रभावोत्पादक शैलीमें मर्मोद्गार व्यक्त करता हुआ पाखण्डियों-को फटकारता है कि रे मूर्ख प्राणी ! तू क्यों दीन पशुओंका वध करता है। हृदयमे ज्ञान-ज्योतिके जाग्रत हुए बिना तुम यज्ञ करनेके अधिकारी नहीं। सच्चा यज्ञ वही व्यक्ति कर सकता है जो आत्मज्ञानके दीपकको प्रज्वलित कर सकेगा। जो व्यक्ति नाना तीर्थों और अनेक सरिताओंमे अबोधपूर्वक स्नान करता है, उसका वह स्नान व्यर्थ है। निर्मल आत्म-जलमे स्नान किये बिना तीर्थस्नान कोरा आडम्बर है। सच्चा आत्मबोध ही शान्ति दे सकता है, इसीसे आत्मदर्शन सम्भव है। ज्ञानी व्यक्ति विपत्ति और संकटके समय अचल, अडिग और स्थिर रहता है। ससार-का कोई भी प्रलोभन उसे अपने कर्त्तव्य-मार्गसे च्युत नही कर सकता है। सुख-दुःख तो संसारमें पुण्य-पापके उदयसे अहर्निश आते रहते है। विचारों और भावनाओंमे सन्तुलन उत्पन्न करना तथा अन्तसूमे ज्ञानदीपको प्रकाशित कर अनात्म-भावनाओंके तिमिरको विच्छिन्न करना प्रत्येक विचारवान् व्यक्तिका कर्त्तव्य है। कवि बनारसीदास इसी भावना-को व्यक्त करते हुए कहते हैं—

कौन काज मुगध करत वध दीन पशु,
जागी न अगम ज्योति कैसो यज्ञ करिहै।
कौन काज सरिता समुद्र सर जल डोहै,
आतम अमल डोह्यो अजहूँ न डरिहै॥
काहे परिणाम संक्लेश रूप करै जीव,
पुण्य पाप भेद किए कहुँ न उधरिहै।
'बनारसीदास' निज उकत अमृत रस,
सोई ज्ञान सुनै तू अनन्त भव तरिहै॥

आत्मज्ञानीकी अवस्था, कार्य-पद्धति एवं जीवनकी गतिविधिका निरूपण करते हुए कवि कहता है कि जिस व्यक्तिको सच्चा आत्मबोध प्राप्त

हो गया है, वह अपनी सीमाका उल्लघन नहीं करता है। जिस प्रकार वर्षा ऋतुमे सरिताओंमे बाढ़ आ जाती है और उसमें तृण, काष्ठ आदि वस्तुएँ बह जाती हैं, किन्तु चित्राबेल इस बाढमे बह जानेपर भी सड़ती-गल्ती नहीं है और न वह गली-गली मारी-मारी फिरती ही है, इसी प्रकार पॉचों इन्द्रियोके प्रपचमे पडकर भी आत्मज्ञानी विलाससे पृथक् रहता है, इन्द्रियॉ उसे आसक्त नही कर पाती हैं। लोभ, मोह आदि विकारोसे यह अपनी रक्षा कर लेता है—

> ऋतु बरसात नदी नाले सर जोर चढ़े,
> बाढ़ै नाहिं मरजाद सागरके फैल की।
> नीरके प्रवाह तृण काठवृन्द बहे जात,
> चित्राबेल आइ चढ़ै नाहीं कहू गैल की॥
> 'बनारसीदास' ऐसे पंचनके परपंच,
> रंचक न संक आवै वीर बुद्धि छैल की।
> कुछ न अनीत न क्यों प्रीति पर गुण सेती,
> ऐसी रीति विपरीति अध्यातम शैल की॥

इस रचनामे कुल ५२ पद्य हैं, सभी आत्मबोध जागृत करनेमें सहायक हैं।

अनित्यपञ्चीसिका

भैया भगवतीदासको जीवनकी नश्वरता और अपूर्णताकी गम्भीर अनुभूति है। इसी कारण विश्व और विश्वके द्वन्द्वोका चिन्तन, मनन और विश्लेषण इनकी कवितामें विद्यमान है। काल्पनिक और वास्तविक जीवनकी गहन व्याख्या करते हुए आत्मतत्त्वका विवेचन किया है। कविने इस प्रस्तुत रचनामें अपने आभ्यन्तरिक सत्यको देखने और दिखलानेका प्रयास किया है। कविका अनुभूतिका स्रोत आत्मदर्शनसे प्रवाहित है। वह जीवनकी समस्त समस्याओंका एकमात्र समाधान साधना या संयमको बतलाता है। जब-

तक विश्वके पदार्थोंमें आसक्ति रहेगी, संयमकी भावना उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी कारण कलाकार जगत्‌के वास्तविक क्षणभगुर रूपको व्यक्त करता हुआ ससारकी स्वार्थ-परता, उसके रागात्मक घिनौने सम्बन्ध, एवं अन्तर्जगत्‌की विभिन्न अवास्तविकताओंका प्रत्यक्षीकरण करता है, क्षणभगुर शरीरसे अमर आत्माकी ओर अग्रसर होता है तथा मूर्त जीवनमें अमूर्तका एवं स्थूल रूपमें सूक्ष्म रूपका सामीप्य लाभ करनेको उत्सुक है। अनित्य-पचीसिकामें बाह्यचित्रणमें इतनी प्रगल्भता नहीं दिखलायी गयी है, जितनी अन्तर्जगत्‌के चित्रणमें। विश्वके अतिरजित चित्र कविको मोहित नहीं कर सके हैं, अतः वह समारकी अस्थिरता, अनित्यता एव निस्सारताका विवेचन करता है। कविकी यह विशेषता है कि उसने निराशाकी भावना कही भी व्यक्त नहीं होने दी है। जीवनमे आशा, स्फूर्ति, प्रेम, सन्तोष, विवेक आदि गुणोको उतारनेके लिए जोर दिया है।

कवि कहता है कि इस दुर्लभ मानव शरीरको प्राप्तकर यदि हमने अपने अन्तस्‌का आलोडन नहीं किया, अपने रहन-सहन, खान-पानकी शुद्धिपर जोर नही दिया, क्रोध-मान-माया-लोभ जैसे विकारोंको अपने हृदयसे निकाल बाहर नही किया एवं इन्द्रियोके विषयोंमें आसक्त हो नाना प्रकारके कुकृत्य करना नहीं छोड़ा तो फिर इस शरीरका प्राप्त करना निरर्थक है। जीवनमे अपरिमित आनन्द है, अनन्त सुख है, किन्तु इसकी प्राप्ति सच्चे आत्म-बोधके बिना नहीं हो सकती है। हमारे जितने भी रागात्मक सम्बन्ध है, वे सब स्वार्थपर आश्रित है। हम इन रागात्मक सम्बन्धोंसे ऊपर उठनेपर ही वास्तविक सुख पा सकते है। मानव जीवन वास्तविक आत्मदर्शन करनेके लिए मिला है, अतएव इसका सदुपयोग करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य है। इस भौतिक जगत्‌मे दुःखका मूल कारण अनात्म-भाव ही है। कवि कहता है—

> **नर देह पाये कहा, पंडित कहाये कहा,**
> **तीरथके न्हाये कहा तरि तो न जैहै रे।**

लच्छिके कमाये कहा, अच्छके अघाये कहा,
छत्रके धराये कहा छीनता न ऐहै रे॥
केशके मुँड़ाये कहा, भेषके बनाये कहा,
जोवनके आये कहा, जराहू न खैहै रे।
भ्रमको विलास कहा, दुर्जनमें वास कहा,
आतम प्रकाश विन पीछें पछितैहै रे।

इस रचनामे कुल २६ पद्य है, कविने इनमें भविष्यके उज्ज्वल प्रकाश-को अंकित करनेके साथ अतीत और वर्तमानका समन्वय भी करनेका आयास किया है।

उपदेशशतक

कवि द्यानतरायने १२१ पद्योमे यह मनभावन रचना लिखी है। कविने आत्मसौन्दर्यका अनुभव कर उसे ससारके सामने इस ढगसे रखा है, जिससे वास्तविक आन्तरिक सौन्दर्यका परिज्ञान सहजमे हो जाता है। यह कृति मानव-हृदयको स्वार्थ सम्बन्धोकी सकीर्णतासे ऊपर उठाकर लोक-कल्याणकी भावभूमिपर ले जाती है, जिससे मनोविकारोंका परिष्कार हो जाता है। अनेक विकारोंका विश्लेषण करनेके कारण कविकी बहुदर्शिता प्रकट होती है। मानव-हृदयके रहस्योंमे प्रवेश करनेकी अतुल क्षमता विद्यमान है। आरम्भमें इष्टदेवको नमस्कार करनेके उपरान्त भक्ति और स्तुतिकी आवश्यकता, मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी महिमा, गृहवासका दुःख, इन्द्रियोकी दासता, नरक-निगोदके दुःख, पुण्य-पापकी महत्ता, धर्मका महत्त्व, ज्ञानी-अज्ञानीका चिन्तन, आत्मानुभूतिकी विशेषता, शुद्ध आत्मस्वरूप, नवतत्त्वस्वरूप, आदिका सरस विवेचन विद्यमान है। कविने भवसागरसे पार उतरनेका कितना सुन्दर उपाय बतलाया है—

सोचत जात सबै दिनरात, कछु न बसात कहा करिये जी।
सोच निवार निजातम धारहु, राग विरोध सबै हरिये जी॥

यौं कहिये जु कहा लहिये, सु वहै कहिये करुना धरिये जी।
पावत मोख मिटावत दोष, सु यौं भवसागरकौं तरिये जी ॥

संसारमें सुख और शान्ति समताके द्वारा ही स्थापित हो सकती है। जबतक तृष्णा और लालसा लगी रहती है, तबतक शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती। शाश्वतिक शान्ति सन्तोषके बिना नहीं मिल सकती है। जब-तक हमारी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी रहती हैं, तबतक आध्यात्मिक प्रभातका उदय नहीं हो सकता। इस आध्यात्मिक समरसताके विवेचनमें कवि प्रत्यक्ष जीवनमें निराश दृष्टिगोचर नहीं होता है, किन्तु आशाकी नवीन राशियाँ उसके मानस क्षितिजपर उदय हो रही हैं। कवि चरम सत्यमें विश्वास करता हुआ कह उठता है—

काहे कौं सोच करै मन मूरख, सोच करै कछु हाथ न ऐहै।
पूरब कर्म सुभासुभ संचित, सो निहचैं अपनो रस दैहै ॥
ताहि निवारनको बलवंत, तिहूँ जगमाहिं न कोउ लसैहै।
तातैं हि सोच तजौ समता गहि, ज्यौं सुख होइ जिनंद कहैहै ॥

समदृष्टि अपने आत्मरूपका अनुभव करता है, उसे अपने अन्तस्‌की यह छवि मुग्ध और अतुलनीय प्रतीत होती है। उसकी यह प्रेयसी अत्यन्त ज्योतिर्मय है, इसके भ्रूसंकेतमात्रसे पंकज खिलते हैं, तृण-तरुपात सिहर उठते हैं, हरित दूर्वादल लहराने लगते हैं और नवीन उमंगे, नयी भाव-नाएँ उत्पन्न हो आनन्द-विभोर कर देती है। कवि इस अनुपम सुन्दरीकी कल्पनासे ही सिहर जाता है और कह उठता है—

केवलग्यानमई परमातम, सिद्धसरूप लसै सिव ठाहीं।
व्यापकरूप अखंड प्रदेश, लसै जगमैं जगसौ वह नाहीं ॥
चेतन अंक लियैं चिनमूरति, ध्यान धरौ तिसकौ निजमाहीं।
राग विरोध निरोध सदा, जिम होइ वही तजिकै विधि छाहीं ॥

इस रचनामें कवि द्यानतरायने दानका महत्त्व, आदर्श, उपयोगिता एवं सहकारिताकी भावनाका अंकन किया है। कविने कोमल, कमनीय कल्पनाओंका सृजनकर जीवनकी विषमताओंका समाधान करनेका आयास नहीं किया है, प्रत्युत जीवनकी ठोस भावभूमिमे उतरकर प्रकृत राग-द्वेषोंके परिमार्जनका विधान बताया है। अनन्त आकांक्षाएँ दान, त्याग, सन्तोषके अभावमे वृद्धिंगत होती हुई जीवनको दुखमय बना देती हैं। कविने अपने अन्तस्में इस बातका अनुभव किया कि यह मानव जीवन बडी कठिनाईसे प्राप्त हुआ है, इसे प्राप्तकर यों ही व्यतीत करना मूर्खता है, अतः 'सर्वजनहिताय'की प्रेरणासे प्रेरित होकर कवि यह कहता है—

दानबावनी

भौन कहा जहँ साध न आवत, पावन सो भुवि तीरथ होई।
पाय प्रछालकैं काय लगायकैं, देहकी सर्व विथा नहिं खोई॥
दान कर्यो नहिं पेट भर्यौ बहु, साधकी आवन बार न जोई।
मानुष जोनिकौं पायकैं मूरख, कामकी बात करो नहिं कोई॥

मानवकी तृष्णा प्रज्वलित अग्निमे डाले गये ईंधनकी तरह वैभव-विभूतिके प्राप्त होनेपर उत्तरोत्तर वृद्धिंगत ही होती जाती है। जिन बाह्य-पदार्थोंमे मानव सुख समझता है और जिनके पृथक् हो जानेसे इसे दुःख होता है, वास्तवमे वे सब पदार्थ विनाशीक हैं। लोभ और तृष्णा मानव-को अशान्ति प्रदान करती है, इन्हीं विकारोंके आधीन होकर मानव आत्म-सुखसे वंचित रहता है। सूम व्यक्ति उपर्युक्त विकारोंके आधीन होकर ही सम्पत्तिका न स्वयं उपभोग करता है और न अपने परिवारको ही उपभोग करने देता है। कविने ऐसे व्यक्तिकी कौएसे तुलना करते हुए इस पामरको कौएसे भी नीच बतलाया है। कवि कहता है—

सूमकौ जीवन है जगमें कहा, आप न खाय खवाय न जानैं।
दर्वके बंधन माहिं बँध्यो दृढ, दानकी बात सुनै नहिं कानैं॥

तातें बढ़ौ गुन कागमैं देखियै, जात बुलायकैं भोजन ठानैं।
लोभ बुरौ सब औगुनमैं इक, ताहि तजै तिसको हम मानैं॥

दान देनेकी सार्थकताका निरूपण करता हुआ कवि कितने मर्मस्पर्शी ढंगसे कहता है—

दीनकौं दीजिये होय दया मन, मीतकौं दीजिये प्रीति बढावै।
सेवक दीजिये काम करै बहु, साहब दीजिये आदर पावै॥
शत्रुको दीजिये वैर रहै नहिं, भाटकौं दीजिये कीरति गावै।
साधकौं दीजियै मोखके कारन, 'हाथ दियौ न अकारथ जावै'॥

इसमे कविने अपनी वैयक्तिक आत्मानुभूतिको जागृत करते हुए इस मानव जीवनको सुखी बनानेवाली अनेक बातोका निरूपण किया है।

व्यौहारपचीसी

ज्ञानेन्द्रियोंके माध्यमसे मन जिन भावनाओ, सवेदनाओंको ग्रहण करता है, उनका किसी न किसी प्रकारका चित्र हृदयपटलपर अवश्य अकित हो जाता है। वातावरण, परिस्थिति, सस्कार आदिकी विभिन्नताके कारण कविके हृदयपटपर अनेक वस्तुओंके विविध चित्र उतरे हैं; अतः उसने अपने अन्तस्मे जगत्का अनुभव जिस रूपमें किया है, उसे व्यावहारिक रूप देकर व्यञ्जित करनेका उपक्रम किया है। बाह्यजगत्मे तभी सुख-शान्ति स्थापित हो सकती है, जब मानवका हृदय स्वच्छ हो जाय। व्यक्तित्वके परिष्कारके लिए सयम, त्याग और अहिसातत्त्वकका अपनाना प्रत्येक व्यक्तिके लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति इष्ट-वियोग और अनिष्ट-सयोगमे घबड़ा जाता है, जीवनमे निराश हो जाता है; कविने उसके मनमे सन्ध्या समय सरिताके उस पार सुदूर आकाशके कोनेमें उठे किसी नवीन बादलमे विद्युत्की रेखाओंके समान उज्ज्वल आशाका सचार करते हुए कहा है—

पीतम मरेकौ सौच करै कहा जीव पोच,
तजे तै अनन्त भव सो कछु सुरत है।

एक आवै एक जाय ममतासौं बिललाइ,
रोज मरे देखै सुनै नैक ना झुरत है ॥
पूत सौं अधिक प्रीत वह ठानै बिपरीत,
यह तौ महा अनीत जोग क्यों जुरत है ।
मरनौ है सूझै नाहिं मोहकी महलमाहिं,
काल है अवैया स्वास नौबति घुरत है ॥

ज्ञानी व्यक्ति जब ज्ञानकी दिशामे बढ़ने लगता है, तो सासारिक आकर्षणके प्रतिकूल झोंके उसे अपने पथमे विचलित नहीं कर सकते। उसके हृदयमे मानव जातिका प्रेम इतना प्रबल हो जाता है, जिससे वह किसी भी व्यक्तिको दुःखी नही देखना चाहता है। रम्य इन्द्र-धनुषके समान ऐन्द्रियिक आकाक्षाएँ, वासनाएँ स्वार्थके स्तरसे ऊपर उठा देती है, जिससे सर्वप्रकारकी शान्ति उपलब्ध होती है। जिन पदार्थोंके प्रलोभनके कारण राग-बुद्धि उत्पन्न होती है, मनकी भूमिकी सुमन-जैसी कोमल भावनाएँ स्वार्थसे पकिल होती रहती है; कविने उन्ही पदार्थोंसे उत्पन्न भावनाओका रसमयी भावतरगोके फुहारोंसे सिंचन करते हुए मधुर कामनाओके साक्षात्कारका आयास किया है। सहृदय कवि लालसाकी लहरोसे युक्त रसकी नदीके किनारे विचरण करते हुए अनुभव कर कह उठता है—

देस देस धाए गढ बाँके भूपत्ती रिझाये,
थलहू खुदाए गिरि ताए पाए ना मर्यो ।
सागरकौं तीर धाए मंत्रहू मसान ध्याए,
पर घर भोजन ससंक काक ज्यौं कर्यो ॥
बड़े नाम बड़े ठाम कुल अभिराम धाम,
तजिकैं पराये काम करे काम ना सर्यो ।
तिसना तिगोड़ीनैं न छोड़ी बात भौंडी कोऊ,
मति हू कनौड़ी कर कौड़ी धन ना सर्यो ॥

कविने इस व्यौहारपच्चीसीमे जीवनको परिष्कृत करनेके साथ गर्व, ईर्ष्या, प्रमाद, क्रोध आदि विकारोंको दूर करनेके लिए जोर दिया है। कवि कहता है कि समष्टि और व्यष्टिके हितके लिए क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंका त्याग करना आवश्यक है। क्रोध प्रीतिका नाश करता है, मान विनयका, माया मित्रताका और लोभ सभी सद्गुणोंका नाश करता है। अतएव शान्तिसे क्रोधको, नम्रतासे अभिमानको, सरलता-से मायाको और सन्तोषसे लोभको जीतना चाहिये। मानवकी मानवता यही है कि वह अपने हृदय और मनका परिष्कारकर समाजको सब प्रकार-से सुखी रखे। जो व्यक्ति अपने ही स्वार्थोंमे रत रहता है, समाजका ख़याल नहीं करता है; वह पशुसे भी नीच है। कविने इस बातको अनेक दृष्टान्तों, प्रतिदृष्टान्तो-द्वारा स्पष्ट किया है। नैतिक विधानका निरूपण करते हुए कविने उपदेशकका पद नहीं ग्रहण किया है। कविता सरस है, आचार और लोकहितका निरूपण करनेपर भी सौन्दर्यकी कमी नहीं आने पायी है।

कवि द्यानतरायकी यह सुन्दर सरस रचना है। कविने इसमे मानव जीवनको सुखी और सम्पन्न बनानेके लिए अनेक विधि-निषेधात्मक नियमोका प्रतिपादन किया है। कवि कहता है कि यदि क्रोध करनेकी आदत पड़ गयी है तो कर्मोंके ऊपर क्रोध करना चाहिये। कर्मोंके आवरणके कारण ही यह सच्चिदा-नन्द आत्मा नाना प्रकारके कष्टोंको सहन कर रही है, अतः इस आत्मा-को स्वतन्त्र करनेके लिए कर्मोंपर क्रोध करना परम आवश्यक है। मान करना यद्यपि हानिप्रद है, परन्तु आत्मिक गुणोंका मान करना श्रेष्ठ होता है। जब व्यक्तिको यह अनुभूति हो जाती है कि हमारी अपनी सम्पत्ति अपने पास है, यह ज्ञान, आनन्द रूप सम्पत्ति भौतिक सम्पत्तिकी अपेक्षा श्रेष्ठतम है, उस समय आत्मामे हर्ष और गौरवकी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं तथा आत्मविकासकी प्रेरणा मिलती है। इसी प्रकार माया

पूरण पंचासिका

संसारके पदार्थोंमें लिप्त कराती है, परन्तु दूसरेके दुःखको देखकर द्रवीभूत हो जाना और ममतावश उसके कष्ट-निवारणके लिए तत्पर हो जाना जीवनकी श्रेष्ठ प्रवृत्ति है। अन्यके संकटको दूर करनेवाली ममता जीवनमें सुख उत्पन्न करती है, अतएव ग्राह्य है।

लोभवश किसी वस्तुको लेनेकी प्रवृत्ति करना तथा धन एकत्रित करनेके लिए समाजका शोषण करना, जघन्य प्रवृत्ति है। यद्यपि लोभके प्रत्यक्ष दोषोंसे प्रत्येक व्यक्ति परिचित है, किन्तु यह नैसर्गिक प्रवृत्ति अनेक प्रयत्न करनेपर भी नही छूटती है। अतएव कवि कहता है कि तप करने-का लोभ उपादेय है, इस प्रवृत्तिसे जीवका सच्चा विकास होता है, और समष्टि एव व्यष्टि दोनोंके हितके लिए इस प्रकारका लोभ ग्राह्य होता है। जब हम आत्म-शोधनके लिए लालायित रहते हैं, उस समय हमारे द्वारा लोकका मगल तो होता ही है, साथ ही हम अपना भी मंगल कर लेते है।

प्रायः देखा जाता है कि अन्य व्यक्तियोके साथ कलह एवं सघर्ष करनेकी प्रवृत्ति हममे निसर्गतः रहती है। लाख प्रयत्न करनेपर विरले व्यक्ति ही इस प्रवृत्तिका परिष्कार कर पाते हैं। कवि इस प्रवृत्तिके परि-ष्कारका उपाय बतलाता हुआ कहता है कि कषायो—क्रोध, मान, माया और लोभके साथ द्वन्द्व करना उपादेय है। मानव कमजोरियोका दास है, अपनी भूलों और प्रवृत्तियोको वह सहसा रोकनेमे असमर्थ है; अतएव वह कषायोंके साथ द्वन्द्व, संघर्ष और कलह करता हुआ अपने जीवनको आनन्दमय बना सकता है। यह निश्चय है कि विकारोंको शनैः-शनैः सुप्रवृत्तियोंके अभ्याससे ही रोका जा सकता है। इसी बातको कवि स्पष्ट करता है—

क्रोध सुई जु करै करमौं पर, मान सुई दिढ़ मान बढ़ावै।
माया सुई परकष्ट निवारत, लोभ सुई तपसौं तन तावै॥

राग सुई गुरु देवपै कीजियै, दोष सुई न विषै सुख भावै।
मोह सुई जु लखै सब आपसे, द्यानत सज्जनको कहिलावै॥
पीर सुई पर पीर बिडारत, धीर सुई जु कषायसौं जूझै।
नीति सुई जो अनीति निवारत, मीत सुई अघसौं न अरूझै॥
औगुन सो गुन दोष विचारत, जो गुन सो समतारस बूझै।
मंजन सो जु करै मन मंजन, अंजन सो जु निरंजन सूझै॥

कविने इस प्रकार जीवनमें सत्य, शिवं और सुन्दरंको उतारनेका उपाय बतलाया है। निम्न पद्यमे बुद्धि और दयाके वार्तालापका कितना सुन्दर सवाद अकित किया गया है। बुद्धि दयासे अनुरोध करती है कि सखि, मै तेरा अत्यन्त उपकार मानूँगी, तू मेरा एक काम कर दे। यह चैतन्य मानव कुबुद्धि रूपी नायिकाके प्रेम-पाशमे बँध गया है, यद्यपि मैंने इससे विरत करनेके लिए इस मानवको बहुत समझाया है, पर मेरी एक भी बात नहीं सुनता। अतः तू इस मानवको समझा, जिससे यह मोहके बन्धनको तोड अपने वास्तविक रूपको समझ सके। री सखी दया! तू जानती है कि सौतका अभिमान किस प्रकार सहन किया जा सकता है? पति यदि अन्य रमणीसे स्नेह करने लगे, तो इससे बड़ा और क्या कष्ट हो सकता है!

बुद्धि कहै बहुकाल गये दुःख, भूर भये कबहूँ न जगा है।
मेरौ कह्यौ नहिं मानत रंचक, मोसौं बिगार कुमार सगा है॥
ये हु री सीख दया तुम जा विधि, मोहकी तोरि दै जेम तगा है।
गावहुँगी तुमरौ जस मैं, चल री जिस पै निज पेम पगा है॥

मानव-जीवनमे विरक्ति प्राप्त करना सबसे अधिक कठिन कार्य माना गया है। कवि भूधरदासने अपने इस शतकमें वैराग्य-भावना जाग्रत करनेका विधान बतलाया है। कवि वैराग्यको जीवन-विकासके लिए परम आवश्यक मानता है, उसका अभिमत है कि विश्वकी अव्यवस्था, कलह और प्रतिद्वन्दिताका मूलोच्छेदन

भूधरशतक

इसी भावनाके द्वारा हो सकता है। यद्यपि कहनेका ढंग सिद्धान्त निरूपण जैसा ही है, परन्तु मंजुल भावनाओंकी अभिव्यक्ति कविने सरस और हृदयग्राहक ढगसे की है। विषय-प्रतिपादनमें 'दैन्य' या पलायन वृत्तिका अनुसरण नही है, प्रत्युत तथ्य-विवेचन है।

भूधरशतकके कवित्त, सवैये, छप्पय बड़े ही सरस, प्रवाहपूर्ण, लोकोक्ति समाविष्ट एवं जोरदार हुए है। वृद्धावस्था, संसारकी असारता, काल-सामर्थ्य, स्वार्थ-परता, दिगम्बर मुनियोंकी तपस्या, आशा-तृष्णाकी नग्नता आदि विषयोंका निरूपण कविने बड़े ही अद्‌भुत ढंगसे किया है। विषय-प्रतिपादनकी शैली बडी ही स्पष्ट है। भावोंको विशद करनेमे कविको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। जिस बातका कवि निरूपण करना चाहता है, उसे स्पष्ट और निर्भय होकर प्रस्तुत करता है। नीरस और गूढ विषयोका निरूपण भी सरस और प्रभावोत्पादक ढंगसे किया गया है। कल्पना, भावना और विचारोंका समन्वय सन्तुलित रूपमे हुआ है। आत्मसौन्दर्यका दर्शन कर कवि कहता है कि संसारके भोगोंमें लिप्त प्राणी अहर्निश विचार करता रहता है कि जिस प्रकार भी संभव हो, उस प्रकार मैं धन एकत्रित कर आनन्द भोगूँ। मानव नानाप्रकारके सुनहले स्वप्न देखता है और विचारता है कि धन प्राप्त हो जानेपर अमुक कार्यको पूरा करूँगा। एक सुन्दर भव्य प्रासाद बनवाऊँगा, सुन्दर रत्न, मणियों और मोतियोके आभूषण बनवाऊँगा, अपनी महत्ता और गौरवके प्रदर्शनके लिए धन खर्चकर बड़ेसे बड़ा कार्य करूँगा। अपने पुत्र-पौत्रादिका ठाट-बाटके साथ विवाह करूँगा। इस विवाहमें सोने-चाँदीके बर्तनोंका वितरण करूँगा, जगत्मे अपनी कीर्त्तिगाथा सर्वदा स्थिर रखनेका उपाय भी करूँगा। जहाँ अबकी बार धन हाथमे आया कि मैने अपने यशको अमर करनेका उपाय किया। मानव इस प्रकारकी उधेड़-बुनमे सर्वदा लगा रहता है, उसका मनोराज्य निरन्तर वृद्धिंगत होता चला जाता है और एक दिन मृत्यु आकर उसके विचारोंकी बीचमें ही हत्या कर देती है,

परिणाम यह निकलता है कि वह शतरजके खिलाड़ीके समान अपनी बाजीको वहीं छोड़ चला जाता है। सारे मनसूबे मन-के-मनमे ही समा जाते हैं। यह विचारधारा किसी एक व्यक्तिकी नहीं है, प्रत्युत मानव-मात्रकी है, हर व्यक्तिकी यही अवस्था होती है। कवि इस सत्यका उद्घाटन करता हुआ कहता है—

> चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज सरे जियरा जी।
> गेह चिनाय करूँ गहना कछु,व्याहि सुता सुत बाँटिय भाँजी॥
> चिन्तत यों दिन जाहिं चले, जम आनि अचानक देत दगा जी।
> खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रुपी शतरंजकी बाजी॥

इस ससारमे मनुष्य आत्मज्ञानसे विमुख होकर शरीरकी ही सेवा करता है। इस शरीरको स्वच्छ करनेमे अनेक साबुनकी बट्टियाँ रगड़ डालता है तथा सुगन्धित तेलकी शीशियाँ खाली कर डालता है। फैशनके अनेक पदार्थोंका उपयोग शारीरिक सौन्दर्य-प्रसाधनमें करता है, प्रतिदिन रगड़-रगडकर शरीरको साफ़ करता है, इत्र और सेन्टोका आस्वादन करता है तथा प्रत्येक इन्द्रियकी तृप्तिके लिए अनेक प्रकारके पदार्थोंका सचय करता है। स्पर्शन इन्द्रियकी तुष्टिके लिए वेश्यालयोमे जाता है, रसनाकी तृप्तिके लिए अभक्ष्य भक्षण करता है, घ्राणकी सतुष्टिके लिए इत्र फुलेलकी गन्ध लेता है, नेत्रकी तृप्तिके लिए मनोहर रूपका अवलोकन करता है एव कर्ण इन्द्रियकी तृप्तिके लिए मनोहर मधुर शब्दोंको सुननेके लिए लालायित रहता है। इस प्रकारके मानवकी दृष्टि अनात्मिक है, वह शरीरको ही सब कुछ समझ गया है। कवि भूधरदासने अपने अन्तस्‌मे उसी सत्यका अनुभव कर जगत्‌के मानवोको सजग करते हुए कहा है—

> माता पिता-रज-बीरज सौं, उपजी सब सात कुधात भरी है।
> माखिनके पर माफिक बाहर, चामके बेठन बेद धरी है॥

नाहिं तो आय लगैं अबहीं, बक बायस जीव बचै न घरी है।
देह दशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है॥

मनुष्य अपनेको अमर समझ जगत्मे नाना प्रकारके पाप और अत्याचार करता है। इस विनाशीक शरीरको अमर बनानेके लिए वह जड़ी-बूटियोंका सेवन करता है, नाना देवी-देवताओंको प्रसन्नकर वरदान प्राप्त करना चाहता है, और विज्ञान-द्वारा ऐसी ओषधियोंका आविष्कार करता है, जिनके सेवनसे अमर हो जाय। इसके लम्बे-चौड़े प्रोग्राम इस शरीरको ही सजाने, सँवारने, और वृद्धिगत करनेके लिए बनते है; अनात्मिक दृष्टि रखनेके कारण आत्मकल्याणसे विपरीत सभी वस्तुएँ इसे अच्छी प्रतीत होती है। अतएव कवि विश्वके समक्ष मृत्युकी अनिवार्यताका निरूपण करता हुआ यह बतलानेका प्रयास करता है कि व्यर्थके पाप करनेसे कोई लाभ नही, मृत्यु जीवनमे अनिवार्य है, अतः दीनता और पलायनको छोड जीवनके मार्गमे अबाधित रूपसे बढ़ते चले जाना यह मानवता है। जीवन-मोह कर्त्तव्य-मार्गसे च्युत कर देता है, इसीसे व्यक्ति साहस, वीरता और नैतिक कार्योंमे गतिशील नहीं हो पाता। कविने अनात्मिक भावनाओको हृदयसे निकालनेके लिए जोर देते हुए कहा है—

लोहमई कोट केई कोठनकी ओट करो,
काँगरेन तोप रोपि राखौ पट भेरिकैं।
इन्द्र चन्द्र चौंकायत चौकत ह्वै चौकी देहु,
चतुरंग चमू चहूँ ओर रहौ घेरिकैं॥
तहाँ एक भौंहिरा बनाय बीच बैठो पुनि,
बोलौ मति कोऊ जो बुलावै नाम टेरिकैं।
ऐसे परपंच पाँति रचौ क्यों न भाँति भाँति
कैसे हू न छोटे जम देख्यो हम हेरिकैं॥

युवावस्थामे मनुष्यकी भावनाएँ एक विशेष तीव्र प्रवाहसे बहती हैं। इस अवस्थामें पतनका गर्त और महत्ताका सोपान दोनों ही विद्यमान रहते हैं, यदि तनिक भी शिथिलता आई तो गर्तमे गिरना निश्चित है और सजग होने पर महत्ताके सोपान पर व्यक्ति चढ जाता है। जो युवावस्थामें विषय-वासनाओंमें अनुरक्त रहते हैं, वे एक प्रकार क्षम्य भी हैं; परन्तु वृद्धावस्था आजाने पर भी जो आत्मकल्याणसे विमुख हैं, वे वस्तुतः निन्दाके पात्र हैं। कविने वृद्धावस्थाको बडी पैनी और सूक्ष्म दृष्टिसे देखा है। इतना स्वाभाविक और कलापूर्ण वर्णन अन्यत्र कठिनाईसे मिलेगा—

दृष्टि घटी पलटी तनकी छवि, बंक भई गति लंक नई है।
रूस रही परनी घरनी अति, रंक भयों परयंक लई है॥
काँपत नार बहै मुख लार, महामति संगति छोरि गई है।
अंग उपंग पुराने परै, तिशना उर और नवीन भई है॥

× × × ×

जोई दिन कटै सोई आवमें अवश्य घटै,
बूँद बूँद बीतै जैसे अँजुलीको जल है।
देह नित छीन होत नैन तेजहीन होत,
जोवन मलीन होत छीन होत बल है॥
आवै जरा नेरी तकै अंतक अहेरी आवै,
पर भौ नजीक जात नर-भौ विफल है।
मिलकै मिलापी जन पूँछत कुशल मेरी,
ऐसी माहीं मित्र ! काहे की कुशल है॥

भाव, भाषा, कल्पना और विचारोंकी दृष्टिसे यह रचना श्रेष्ठ है।

इस सरस नीतिपूर्ण रचनामे देवानुरागशतक, सुभाषितनीति, उपदेशाधिकार और विराग-भावना ये चार प्रकरण है। प्रथम देवानुराग-शतकमे कवि बुधजनने दास्य भावकी भक्ति अपने आराध्यके प्रति प्रकट की है। यद्यपि वीतरागी प्रभुके साथ इस भावनाका सामंजस्य नहीं बैठता है, फिर भी भक्तिके अतिरेकके कारण कविने अपनेको दासके रूपमे उपस्थित किया है। आत्मालोचन करना और जिनेश्वरके माहात्म्यको व्यक्त करना ही कविका लक्ष्य है, अतः वह कहता है—

बुधजन-सतसई

मेरे अवगुन जिन गिनौ, मैं औगुनको धाम।
पतित उधारक आप हौ, करौ पतितको काम॥

सुभाषित खण्डमे २०० दोहे हैं, ये सभी दोहे नीतिविषयक है। लोक-मर्यादाके संरक्षणके लिए कविने अनेक हितोपदेशकी बातें कही हैं। कबीर, तुलसी, रहीम और वृन्दसे इस विभागके दोहे समता रखते हैं। एक-एक दोहेमे जीवनको प्रगतिशील बनानेवाले अमूल्य सदेश भरे हुए है। कवि कहता है—

एक चरन हूँ नित पढ़े, तो काटै अज्ञान।
पनिहारीकी लेज सों, सहज कटै पाषान॥
महाराज महावृक्षकी, सुखदा शीतल छाय।
सेवत फल भासे न तौ, छाया तो रह जाय॥
पर उपदेश करन निपुन, ते तौ लखै अनेक।
करै समिक बोलै समिक, ते हजारमें एक॥
विपताकौ धन राखिये, धन दीजै रखि दार।
आतम हितकौ छाँडिए, धन, दारा परिवार॥

इस खण्डके कतिपय दोहे तो पञ्चतन्त्र और हितोपदेशके नीतिश्लोकों-का अनुवाद प्रतीत होते हैं। तुलसी, कबीर और रहीमके दोहोंसे भी

कवि अनुप्राणित-सा प्रतीत होता है। यद्यपि पारिभाषिक जैन शब्दोंके प्रयोग-द्वारा सम्यक्त्वकी महिमा, मिथ्यात्वकी हानि एव चरित्रकी महत्ता प्रतिपादित की है, फिर भी सामान्य सूक्तियोंका हितोपदेश और तुलसीदासके दोहोंसे बहुत साम्य है।

उपदेशाधिकारमे विद्या, मित्र, जुआनिषेध, मद्य-मांस-निषेध, वेश्या-निषेध, शिकार-निन्दा, चोरी-निन्दा, परस्त्री-संग-निषेध आदि विषयोपर अनेक उपदेशात्मक अनुभूतिपूर्ण दोहे लिखे गये है। इन दोहोके मनन, चिन्तन, स्मरण और पठनसे आत्मा निर्मल होती है, हृदय पूत भावनाओं-से भर जाता है और जीवनमे सुख-शान्तिकी उपलब्धि हो जाती है।

विराग-भावना खण्डमें कविने ससारकी असारताका बहुत ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। इस खण्डके सभी दोहे रोचक और मनोहर हैं। दृष्टान्तों-द्वारा संसारकी वास्तविकताका चित्रण करनेमें कविको अपूर्व सफलता मिली है। वस्तुका चित्र नेत्रोंके सामने मूर्त्तिमान होकर उपस्थित हो जाता है।

को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सरायमें, · बिछुरेंगे निरधार॥

परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय।
छलबलि करि क्यौं हु न बचै, काल झपट लै जाय॥

आया सो नाही रहा, दशरथ लछमन राम।
तू कैसें रह जायगा, झूठ पापका धाम॥

कविकी चुभती हुई उक्तियॉ हृदयमें प्रविष्ट हो जाती हैं तथा जीवनके आन्तरिक सौन्दर्यकी अनुभूति होने लगती है। इस सतसईकी भाषा ठेठ हिन्दी है, किन्तु कहीं-कहीं जयपुरी भाषाका पुट भी विद्यमान है।

यह छोटी-सी सरस रचना कवि विनोदीलालकी है। कविने इसमें नेमिनाथकी बरातका चित्रण किया है तथा पशु-पक्षियोंको पिंजड़ेमें बन्द देखकर उनकी हिंसासे भयभीत हो युवक नेमिनाथ वैराग्य ग्रहण कर लेते हैं। इसकी कथावस्तुका निर्देश पूर्वमे नेमिचन्द्रिकाके परिशीलनमे किया जा चुका है।

नेमिव्याह

इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि नेमिनाथके मनमें दुःखी राष्ट्रके दुःखको दूर करनेकी प्रबल आकाक्षा उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि उनके मनमे कुछ क्षणोंतक सासारिक प्रलोभनोसे युद्ध होता है, परन्तु जब तटस्थ होकर राष्ट्रकी परिस्थितिका चिन्तन करते है, उस समय उनका मोह समाप्त हो जाता है। भौतिक सुखोको छोड़कर मानव कल्याणके लिए नेमिनाथका इस प्रकार तपस्याके लिए चला जाना, जीवनसे पलायन या दैन्य नही है। यह सच्चा पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थको हर व्यक्ति नहीं कर सकता, इसके लिए महान् आत्मिक बलकी आवश्यकता है। जिसकी आत्मामे अपूर्व बल होगा, अन्तस्तलमे मानव-कल्याणकी भावना सुलगती होगी, वही व्यक्ति इस प्रकारके अद्वितीय कार्योंको सम्पन्न कर सकेगा। कविने रचनाके आरम्भमें वरकी वेश-भूषाका वर्णन करते हुए बतलाया है।

मौर धरो सिर दूलहके कर कंकण बाँध दई कस डोरी।
कुंडल काननमें झलके अति भालमें लाल विराजत रोरी।
मोतिनकी लड़ शोभित है छबि देखि लजें बनिता सब गोरी।
लाल विनोदीके साहिबके मुख देखनको दुनियाँ उठ दौरी।

विरक्त होते हुए नेमिनाथका चित्रण—

नेम उदास भये जबसे कर जोड़के सिद्धका नाम लियो है।
अम्बर भूषण डार दिये शिर मौर उतारके डार दियो है॥
रूप धरों मुनिका जबहीं तबहीं चढ़िके गिरिनारि गयो है।
लाल विनोदीके साहिबने तहाँ पाँच महाव्रत योग लयो है॥

कविने इस रचनामें युवकोंके आदर्शके साथ युवतियोंके आदर्शका भी सुन्दर अंकन किया है। जबतक देशका नारी-समाज जाग्रत न होगा और "विवाह ही जीवनका उद्देश्य है" इस सिद्धान्तका त्याग न करेगा तबतक राष्ट्रका कल्याण नहीं हो सकता। राजुलने ऐसा ही आदर्श प्रस्तुत किया है। भोग जीवनका जघन्य लक्ष्य है, व्यक्ति जब भोगवादसे ऊपर उठ जाता है, तभी वह सेवा-कार्यमे प्रवृत्त हो जाता है। जब माता-पिता राजुलको पुनः वरान्वेषणकी बात कहकर सन्तुष्ट करते हैं, तब क्या ही सुन्दर उत्तर देती है—

> काहे न बात सम्हाल कहौ तुम जानत हो यह बात भली है।
> गालियाँ काढ़त हो हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है॥
> मैं सबको तुम तुल्य गिनौ तुम जानत ना यह बात रली है।
> या भवमें पति नेमप्रभू वह लाल विनोदीको नाथ बली है॥

बारहमासा नेमिराजुल

जैन कवियोने बारहमासोंकी रचना कर वीरता और राष्ट्रीयताकी भावनाओंका सुन्दर अकन किया है। यद्यपि बारह-मासोंमे सवाद रूपमे सेवा और वैराग्यकी भावना ही अन्तमे दिखलाई गई है, परन्तु सवादोके मध्यमे विभिन्न मानवीय भावनाओका अकन भी सुन्दर हुआ है। प्रस्तुत बारह-मासा कवि विनोदीलाल-द्वारा विरचित है। इसमे राजुल अपने सकल्पित पति नेमिनाथसे अनुरोध करती है कि "स्वामिन्! आप इस युवावस्थामे क्यो विरक्त होकर तपस्या करने जाते हैं? यदि आपको तपस्या करना ही अभीष्ट था और आप देशमे अहिंसा सस्कृतिका प्रचार करना चाहते थे तो आपने आषाढ़ महीनेमे यह व्रत क्यों नहीं लिया? जब आप श्रावणमे विवाहकी तैयारी कर आ गये, तब क्यों आप इस प्रकार मुझे ठुकराकर जा रहे हैं। मैं मानती हूँ कि राष्ट्रोत्थानमे भाग लेना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। स्वर्णिम अतीत प्रत्येक सहृदयको प्रभावित करता है। राष्ट्रकी सम्पत्ति

युवक और युवतियाँ हैं, इन्हींके ऊपर राष्ट्रका समस्त भार है, अतः आपका महत्त्वपूर्ण त्याग वैयक्तिक साधना न बनकर राष्ट्रहित-साधक होगा; फिर भी मैं आपके कोमल शरीर और ललित कामनाओंका अनुभव कर कहती हूँ कि यह व्रत आपके लिए उचित नहीं है। श्रावण मासमे व्रत लेनेसे घन-घोर बादलोंका गर्जन, विद्युत्‌की चकाचौंध, कोयलकी कुहुक, तिमिरयुक्ता यामिनी, पूर्वी हवाके मधुर और शीतल झोंके आपको वासनासक्त किये बिना न रहेंगे। इस महीनेमें दीक्षा लेना खतरेसे खाली नहीं है; अतएव तप साधन करना ठीक नहीं है।"

राजुलकी उक्त बातोंका उत्तर नेमिनाथने बड़े ही ओजस्वी वचनोंमें दिया है। वह कहते हैं कि "जब तक व्यक्ति अपना शोधन नहीं करता, राष्ट्रका हित नहीं कर सकता है। आत्मशोधनके लिए समयविशेषकी आवश्यकता होती है। भय और त्रास उन्हीं व्यक्तियोंको विचलित कर सकते हैं, जिनके मनमें किसी भी प्रकारका प्रलोभन शेष रहता है। प्रकृति-के मनोहर रूपमे जहाँ रमणीय भावनाओंको जाग्रत करनेकी क्षमता है। वहाँ उसमें वीरता, धीरता और कर्त्तव्यपरायणताकी भी भावना उत्पन्न करनेकी योग्यता विद्यमान है। अतः श्रावण मासकी झड़ी वासनाके स्थान-पर विरक्ति ही उत्पन्न कर सकेगी।"

नेमिनाथके इस उत्तरको सुनकर राजुल भाद्रपद मासकी कठिना-इयोंका वर्णन करती है। वह मोहवश उनसे प्रार्थना करती हुई कहती है कि "हे प्राणनाथ! आप जैसे सुकुमार व्यक्ति भाद्रपद मासकी अनवरत होनेवाली वर्षा ऋतुमें मुक्त प्रकृतिमें, जहाँ न भव्य प्रासाद होगा और न वस्त्रवेश्म होगा, आप किस प्रकार रह सकेंगे? झंझावात नन्ही नन्ही पानीकी बूँदोसे युक्त होकर शरीरमें अपूर्व वेदना उत्पन्न करेगा। यदि आप योगधारण करना चाहते है तो घर ही चलकर योगधारण कीजिये। सेवकको बन जाना आवश्यक नहीं, वह घरमें रहकर भी सेवा-कार्य कर सकता है। प्राणनाथ! मैं यह मानती हूँ कि इस समय देशमें हिंसाका बोलबाला है,

इसे दूर करनेके लिए पहले अपनेको पूर्ण अहिंसक बनाना पड़ेगा, तभी देशका कल्याण हो सकेगा। परन्तु आपका मोह मुझे इस बातकी प्रेरणा दे रहा है कि मैं इस कठिनाईसे आपकी रक्षा करूँ।"

राजुलकी इन बातोंको सुनकर नेमिनाथ हँस पड़ते है और कहते हैं कि कष्टसहिष्णु बनना प्रत्येक व्यक्तिको आवश्यक है। ये थोड़ेसे कष्ट किस गिनतीमें हैं, जब नरक, निगोदके भयकर कष्ट सहे हैं तथा इस समय जब हमारा राष्ट्र-सन्तप्त है, प्रत्येक प्राणी हिंसासे छटपटा रहा है, उस समय तुम्हारी ये मोहभरी बाते कुछ भी महत्त्व नही रखती। मैंने अच्छी तरह निश्चय करनेके उपरान्त ही इस मार्गका अवलम्बन लिया है।

इसी प्रकार राजुलने बारह महीनोकी भीषणताका चित्राकन किया है। नेमिनाथ इन विभीषिकाओसे भयभीत नहीं होते है और वह अपने व्रतमे दृढ रहते हैं। इस प्रसंगके सभी पद्य सरल और मधुर है। कार्त्तिक मासका चित्रण करती हुई राजुल कहती है—

पिय कातिक में मन कैसे रहै जब भामिनि भौन सजावेंगी।
रचि चित्र-विचित्र सुरंग सबै, घर ही घर मंगल-गावैंगी॥
पिय नूतन-नारि सिंगार किये, अपनो पिय टेर बुलावैंगी।
पिय बारहिवार बरै दियरा, जियरा तरसावैंगी॥

नेमिनाथका प्रत्युत्तर—

तो जियरा तरसै सुन राजुल, जो तनको अपनो कर जानै।
पुद्गल भिन्न है भिन्न सबै, तन छाँडि मनोरथ आन सयानै॥
बूड़ैगो सोई कलिधार मैं, जड़ चेतनको को एक प्रमानै।
हंस पिवै पय भिन्न करै जल, सो परमातम आतम जानै॥

वसन्त ऋतुके आगमनकी विभीषिका दिखलाती हुई राजुल कहती है—

पिय लागैगो चैत बसंत सुहावनो, फूलैंगी बेल सबै बनमाही।
फूलैंगी कामिनी जाको पिया घर, फूलैंगी फूल सबै बनराई॥

खेलहिंगे ब्रजके बन मैं सब, बालगुपाल रु कुँवर कन्हाई।
नेमि पिया उठ आवो घरै तुम, काहेको करहो लोग हँसाई॥

यह पं० दौलतरामकी एक सरस आध्यात्मिक कृति है। कविने जैन-तत्त्वोंके निचोड़को इस रचनामे संकलित किया है। संस्कृतके अनेक ग्रन्थों-को पढ़कर जो भाव कविके हृदयमें उठे, उन्हे जैसेके तैसे रूपमे छहढालामें रख दिया है। इस रचनाकी भाषा गँटी हुई और परिमार्जित है। कविने जीवनमे चिरन्तन सत्य-को और सत्यकी क्रियाको जैसा देखा, जन-कल्याणके लिए वही लिखा। मानवताका चरमविकास ही कविका अन्तिम लक्ष्य है। अतः वह समस्त बन्धनोंसे मानवको मुक्तकर शाश्वतिक आनन्द-प्राप्तिके लिए अग्रसर करता है। कविकी चिन्तनशीलता चन्द्रमाकी चॉदनीके समान चमकती है। प्रथम ढालमे चारो गतियोका दुःख, द्वितीयमे मिथ्याबुद्धिके कारण प्राप्त होनेवाले कष्ट, तृतीयमे सात तत्त्वके सामान्य विवेचनके पश्चात् सम्यक्त्वका विवेचन, चतुर्थमे सम्यग्ज्ञानकी विशेषता, पञ्चममे विश्वके रहस्योको अवगत करनेके लिए विभिन्न प्रकारके चिन्तन एव षष्ठमे आचार-का विधान है। प्रथम ढालमे कविने नारक, पशु, मनुष्य और देवोंके भव-भ्रमणोका कथन करते हुए बताया है कि अनादिकालसे यह प्राणी मोह-मदिराको पीकर अपने आत्मस्वरूपको भूल संसार-परिभ्रमण कर रहा है। कविने कितनी गहराईके साथ इस भव-पर्यटनका अनुभव किया है—

छहढाला

मोह महामद पियौ अनादि, भूल आपको भरमत वादि।

× × ×

काल अनन्त निगोद मंझार, बीत्यौ एकेन्द्री तन धार॥
एक स्वासमें अठदस बार, जन्मौ मर्यौ भर्यौ दुःखभार।
निकसि भूमिजल पावक भयौ, पवन प्रत्येक बनस्पति थयौ॥
दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।

तीसरी ढालमें जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षका तात्त्विक विवेचन है। कल्याणका मार्ग बतलाता हुआ कवि कहता है—

यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काम त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥

× × ×

ये ही आतमको दुःख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधे विधि सौं, सो बंधन कबहुँ न सजिये॥
शम दम तैं जो कर्म न आवै, सो संवर आदरिये।
तपबल तैं विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥

आध्यात्मिक कृति होनेके कारण पारिभाषिक जैन शब्दोंकी बहुलता है; फिर भी मानव जीवनको उन्नत बनानेवाले सदेशकी कमी नही है। कवि कहता है कि अपने गुण और परके दोषोंको छिपानेसे मानवका विकास होता है। परछिद्रान्वेषणकी प्रवृत्ति समाज और व्यक्तिके विकासमें नितान्त बाधक है। अतएव किसी व्यक्तिके दोषोको देखकर भी उसे पुनः सन्मार्गमें लगा देना मानवता है। जो व्यक्ति इस मानवधर्मका अनुसरण करता है, वह महान् है

निजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निज धर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगतैं, निज परको सु दृढ़ावै॥

चौथी ढालमे वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके विकासकी अनेक भावनाएँ अंकित है। कवि आत्मविकासका साधन बतलाता हुआ कहता है—**'राग-द्वेष करतार कथा कबहूँ न सुनीजै'** आगे पुनः कहता है—**'धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये'** इन पद्योमे जीवनको उन्नत बनानेवाले सिद्धान्तोंका कथन है।

पाँचवीं ढालमें संसारकी वास्तविकताका निरूपण करता हुआ कवि कहता है—

"जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥"

छठवीं ढालमें जीवनके आदर्शोंको निरूपण करते हुए कहा है—

'यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये'

इस प्रकार इस छोटी-सी कृतिमे जीवनकी यथार्थताका चित्रण किया गया है।

छहढालाकी एक बहुत बड़ी विशेपता यह भी है कि इसमें समूचे जैन दर्शनको, पारिभाषिक शब्दावलिके आधारपर सरस और सरल रूपमें गुम्फित कर दिया गया है।

छठवाँ अध्याय

आत्मकथा-काव्य

आत्मकथा लिखना अन्य काव्योंकी अपेक्षा कठिन है। लेखक निर्भीक होकर सामान्य जगत्‌के धरातलसे ऊपर उठकर ही आत्मकथा काव्य लिख सकता है। सत्यका प्रयोग करनेमे जो जितना सक्षम है, वह उतना ही श्रेष्ठ आत्मकथा-काव्य लिखनेकी क्षमता रखता है। जैनकवि बनारसीदासका सर्वप्रथम आत्मकथा-काव्य हिन्दी साहित्यमें उपलब्ध है। आजसे लगभग चार सौ वर्ष पूर्व कविने पद्यात्मक यह आत्मचरित लिखा है। इसमें अपने समयकी अनेक ऐतिहासिक बातोंके साथ मुसलमानी राज्यकी अन्धाधुन्धीका जीता-जागता चित्र भी खींचा है। कविने सत्य-प्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकताका ऐसा अकन किया है जिससे यह आत्मकथा आधुनिक आत्मकथाओसे किसी भी बातमें कम नहीं है। कविने अपने दोष और त्रुटियोंको भी सत्य और ईमानदारीके साथ ज्योंका-त्यों रख दिया है। अपने चारित्रिक दोषोंपर पर्दा डालनेका प्रयास नहीं किया है, बल्कि एक वैज्ञानिकके समान तटस्थ होकर यथार्थताका विश्लेषण किया गया है।

यह आत्मकथा-काव्य 'मध्यदेशकी बोली'में लिखा गया है। भाषामे किसी भी प्रकारका आडम्बर नहीं है। जो भाषा सुगमतापूर्वक सर्व-साधारणकी समझमें आ सके, उसीमे यह आत्मचरित लिखा गया है। आत्मकथाके आदिमें स्वय कविने लिखा है—

जैनधर्म श्रीमाल सुबंस। बनारसी नाम नरहंस॥
तिन मनमाहिं विचारी बात। कही आपनी कथा विख्यात॥

जैसी सुनी बिलोकी नैन । तैसी कछु कहौं मुख बैन ॥
कहौं अतीत-दोष-गुणवाद । बरतमानताई मरजाद ॥
भावी दसा होइगी जथा । ग्यानी जानै तिसकी कथा ॥
तातै भई बात मन आनि । थूलरूप कछु कहौं बखानि ॥
मध्य देसकी बोली बोलि । गर्भित बात कहौं हिअ खोलि ॥
भाखौं पूरब-दसा-चरित्र । सुनहु कान धरि मेरे मित्र ॥

समूची आत्मकथा इतनी रोचक है और ऐतिहासिक निबन्धनकी दृष्टिसे इतनी महत्त्वपूर्ण है कि इसका कुछ विस्तारसे वर्णन करनेका लोभ सवरण नहीं किया जा सकता । कवि बनारसीदास एक धनी-मानी सम्भ्रान्त वंशमें उत्पन्न हुए थे । इनके प्रपितामह जिनदासका साका चलता था, पितामह मूलदास हिन्दी और फारसीके पंडित थे; और ये नरवर (मालवा) मे वहाँके मुसल्मान नवाबके मोदी होकर गये थे। इनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके नामी जौहरी थे और पिता खड्गसेन कुछ दिनोतक बगालके सुल्तान मोदीखाँके पोतदार थे और कुछ दिनोंके उपरान्त जौनपुरमें जवाहरातका व्यापार करने लगे थे। इस प्रकार कविका वंश सम्पन्न था तथा अन्य सम्बन्धी भी धनिक थे। पर आत्मकथा-लेखकको सुख-शान्ति जीवनमे नहीं मिली । अतः धनार्जनके लिए जीवन भर इन्हे दौड़-धूप करनी पडी और तरह-तरहके कष्ट सहने पड़े । इस दौड़धूप और कष्टोका निरूपण कविने अत्यन्त विशुद्ध हृदय से किया है।

कविने यद्यपि सामान्यशिक्षा प्राप्त की थी, पर कविता करनेकी प्रतिभा जन्मजात थी । १४ वर्षकी अवस्थामे पं० देवदत्तके पास पढ़ना आरम्भ किया था और धनञ्जयनाममालादि कई ग्रन्थोंको पढ़ा था—

पढ़ी नाममाला सत दोय । और अनेकारथ अवलोय ॥
ज्योतिष अलंकार लघु कोक । खंडस्फुट सत चार स्लोक ॥

कविके ऊपर माता-पिता और दादीका अतिशय स्नेह था। अतः यौवनारम्भमें यह इश्कबाज हो गये। कवि लिखता है—

तजि कुलकान लोककी लाज। भयो बनारसि आसिखबाज॥
करै आसिखी धरित न धीर। दरदबन्द ज्यों शेख फकीर॥
इकटक देख ध्यानसों धरै। पिता आपुनेको धन हरै॥

कविका कार्य इस अवस्थामें पढना और इश्कबाजी करना था। इन्होंने चौदह वर्षकी आयुमें एक सुन्दर 'नवरस' नामक रचना भी एक सहस्र प्रमाण दोहे-चौपाईमें लिखी थी। बोध जाग्रत होनेपर कविने इस ग्रन्थको गोमतीमें प्रवाहित कर दिया।

कबहूं आइ शब्द उर धरै। कबहूं जाइ आसिखी करै।
पोथी एक बनाई नई। मित हजार दोहा चौपई॥
तामें नवरस रचना लिखी। है विशेष बरनन आसिखी॥
ऐसे कुकवि बनारसि भये। मिथ्याग्रन्थ बनाये नये॥

कै पढ़ना कै आसिखी, मगन दुहूं रस माहिं।
खानपानकी सुधि नहीं, रोजगार कछु नाहिं॥

१५ वर्ष १० महीनेकी अवस्थामें कवि सजधजकर अपनी ससुराल खैराबादमें द्विरागमन कराने गया। ससुरालमें एक माह रहनेके उपरान्त कविको पूर्वोपार्जित अशुभोदयके कारण कुष्ठ रोग हो गया, विवाहिता भार्या और सासुके अतिरिक्त सबने साथ छोड दिया। कविने इस अवस्थाका निरूपण करते हुए बताया है कि खैराबादके एक नाईने, जो कुष्ठ रोगका वैद्य था, दो महीने अनवरत श्रम और चिकित्साकर उन्हे अच्छा किया।

भयो बनारसिदास तन, कुष्ठरूप सरवंग।
हाड़ हाड़ उपजी व्यथा, केश रोम भ्रुवभंग॥

विस्फोटक अगनित भये, हस्त चरण चौरंग।
कोऊ नर साले ससुर, भोजन करहिं न संग॥
ऐसी अशुभ दशा भई, निकट न आवै कोइ।
सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ॥

स्वस्थ होकर कवि पत्नीको बिना ही लिवाये घर आया और पूर्ववत् पढ़ना-लिखना तथा इश्कबाजी करना आरम्भ कर दिया। चार महीनेके पश्चात् कवि पुनः भार्याको लिवाने गया और विदा कराकर घर रहने लगा। अतः गुरुजन उपदेश देने लगे—

गुरुजन लोग देहिं उपदेश। आसिखबाज सुनें दरवेश॥
बहुत पढ़े बामन और भाट। बनिक पुत्र तो बैठे हाट॥
बहुत पढ़ै सो माँगे भीख। मानहु पूत बड़ोंकी सीख॥

संवत् १६६० में कविने अध्ययन समाप्त किया तथा कविकी बहन का विवाह भी इसी सवत्में हुआ और कविको एक पुत्रीकी प्राप्ति भी इसी सवत्में हुई। सवत् १६६१ मे एक धूर्त सन्यासी आया और उसने बड़े आदमीका पुत्र समझकर इनको अपने जालमे फँसा लिया। सन्यासीने कहा—"मेरे पास ऐसा मन्त्र है कि यदि कोई एक वर्ष तक नियमपूर्वक जपे तथा इस भेदको किसीसे न कहे तो एक वर्ष बीतनेपर मन्त्र सिद्ध हो जाता है, जिससे घरके द्वारपर एक स्वर्णमुद्रा प्रतिदिन पड़ी मिला करेगी।" इश्कबाजीके लिए धनकी आवश्यकता रहनेके कारण लोभवश कविने मन्त्रकी साधना आरम्भ की। मन्त्र जपते-जपते बड़ी कठिनाईसे समय बिताया और प्रातःकाल ही स्नान-ध्यान करके बड़ी उत्कठासे कवि घरके दरवाजे पर आया और स्वर्णमुद्राका अन्वेषण करने लगा, पर वहाँ सोनेकी तो बात ही क्या, मिट्टीकी भी मुद्रा न मिली। आशावश कविने यह समझकर कि कहीं दिन गिननेमें तो गलती न हो गई है अतः उसने कुछ दिनों तक पुनः मन्त्रका जप किया पर कुछ मिला-जुला नहीं।

कुछ दिनोंके उपरान्त एक योगीने आकर अपना दूसरा रंग जमाया। भोले कविको इस रगमें रँगते विलम्ब न हुआ और योगी-द्वारा प्रदत्त शंखरूप सदाशिवकी मूर्तिकी छुपकर पूजा करने लगा। योगी तो अपनी भेंट लेकर चला गया, पर कवि शख बजा-बजाकर सदाशिवके अर्चनमे अनुरक्त रहने लगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि यह पूजा वह अपने परिवारसे छिपकर करता था, उसकी इस प्रवृत्तिके सम्बन्धमें किसीको कुछ भी पता नहीं था। सवत् १६६१ मे जब इनके पिता खड्गसेन हीरानन्दजी द्वारा चलाये गये शिखरजी यात्रा सघमे यात्रार्थ चले गये तो इन्होंने कुछ दिनोंतक चैनकी वशी बजानेके पश्चात् भगवान् पार्श्व-नाथकी यात्रा करनेकी आज्ञा अपनी माँसे माँगी। आज्ञा न मिलनेपर कवि चुपचाप बनारसके भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा करनेके लिए चल दिया। वहाँ पहुँचकर गगास्नानपूर्वक दस दिनों तक भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा करता रहा; किन्तु इस समय भी सदाशिवकी पूजा ज्योंकी त्यों होती रही। कविने आत्मकथामें सदाशिव पूजनको उत्प्रेक्षा और आक्षेपालंकारमे निम्न प्रकार कहा है—

शंखरूप शिव देव, महाशंख बनारसी।
दोऊ मिले अबेव, साहिब सेवक एकसे॥

संवत् १६६२ मे कार्त्तिक मासमें अकबरकी मृत्यु हो जानेपर नगरमे किस प्रकारकी व्याकुलता छा गई, कविने आत्मकथामे सजीव चित्रण किया है—

घर घर दर दर दिये कपाट, हटवानी नहिं बैठे हाट।
हँडवाई गाड़ी कहुँ और, नकदमाल निरभरमी ठौर॥
भले वस्त्र अरु भूषन भले, ते सब गाड़े धरती तले।
घर घर सबनि बिसाहे शस्त्र, लोगन पहिरे मोटे वस्त्र॥
गाढ़ो कंबल अथवा खेस, नारिन पहिरे मोटे बेस।
ऊँच नीच कोउ न पहिचान, धनी दरिद्री भये समान॥

सदाशिवका बहुत दिनों तक पूजन करनेके उपरान्त एक दिन कवि एकान्तमें बैठा-बैठा सोचने लगा—

अब मैं गिरयो पर्यो मुरझाय। तब शिव कछु नहिं करी सहाय॥

इस विकट शंकाका समाधान उसके मनमें न हो सका और उसने सदाशिवकी पूजा करना छोड़ दिया। कुछ दिनोंके पश्चात् एक दिन कवि सन्ध्या समय गोमतीकी ओर पर्यटन करने गया और प्राकृतिक रमणीय दृश्यने कविके अन्तस्तलको आलोडित किया, फलतः कविको विरक्ति हुई और उसने अपनी शृंगार रसकी रचना नवरसको उसमे प्रवाहित कर दिया तथा स्वयं पापकर्मोंको छोड़ सम्यक्त्वकी ओर आकृष्ट हुआ—

तिस दिन सों बानारसी, करी धर्म की चाह।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुल की राह॥

× × ×

उदय होत शुभ कर्म के, भई अशुभकी हानि।
तातैं तुरत बनारसी, गही धर्म की बानि॥

सवत् १६६७ मे एक दिन पिताने पुत्रसे कहा—"वत्स! अब तुम सयाने हो गये, अतः घरका सब काम-काज सभालो और हमको धर्म-ध्यान करने दो।" पिताके इच्छानुसार कवि घरका कामकाज करने लगा। कुछ दिन उपरान्त दो हीरेकी अँगूठी, चौबीस माणिक, चौंतीस मणि, नौ नीलम, बीस पन्ना, चार गाँठ फुटकर चुन्नी इस प्रकार जवाहरात; बीस मन घी, दो कुप्पे तेल, दो सौ रुपयेका कपड़ा और कुछ नकद रुपये लेकर आगराको व्यापार करने चला। प्रतिदिन पाँच कोसके हिसाबसे चलकर गाड़ियाँ इटावाके निकट आईं, वहाँ मजिल पूरी हो जानेसे एक बीहड़ स्थानपर डेरा डाला। थोड़े समय विश्राम कर पाये थे कि मूसलाधार पानी बरसने लगा। तूफान और पानी इतनी

तेजीसे बह रहे थे, जिससे खुले मैदानमे रहना, अत्यन्त कठिन था। गाड़ियाँ जहाँकी तहाँ छोड़ साथी इधर-उधर भागने लगे। शहरमे भी कहीं शरण नहीं मिली। सरायमे एक उमराव ठहरे हुए थे, अतः स्थान रिक्त न होनेसे वहाँसे भी उल्टे पाँव लौटना पडा। कविने इस परिस्थितिका यथार्थ चित्रण करते हुए लिखा है—

> फिरत फिरत फावा भये, बैठन कहै न कोय।
> तलै कीचसों पग भरैं, ऊपर बरसत तोय॥
> अँधकार रजनी विषैं, हिमरितु अगहनमास।
> नारि एक बैठन कह्यो, पुरुष उठा लै बाँस॥

किसी प्रकार चौकीदारोंकी झोपडीमें शरण मिली और कष्टपूर्वक वहीं रात बिताई। प्रातःकाल गाडियाँ लेकर आगरेको चले, आगरा पहुँचकर मोती कटरेमें एक मकान लेकर उसमें सारा सामान रखकर रहने लगे। व्यापारसे अनभिज्ञ होनेके कारण कविको घी, तैल और कपड़े-मे घाटा ही रहा। इस बिक्रीके रुपयोंको हुण्डी-द्वारा जौनपुर भेज दिया। जवाहरात भी जिस किसीके हाथ बेचते रहे, जिससे पूरा मूल्य नही मिला। इजहारखन्दके नारेमे कुछ छूटा जवाहरात बाँध लिया था, वह न मालूम कहाँ खिसककर गिर गया। माल बहुत था, इससे हानि अत्यधिक हुई, पर किसीमे कुछ कहा नहीं, आपत्तियाँ अकेले नहीं आतीं, इस कहावतके अनुसार डेरेमें रखे कपड़ेमे बँधे हुए जवाहिरातोंको चूहे कपड़े समेत न मालूम कहाँ ले गये। दो जडाऊ पहुँची किसी सेठको बेची थी, दूसरे दिन उसका दिवाला निकल गया। एक जडाऊ मुद्रिका थी, वह सड़कपर गाँठ लगाते हुए नीचे गिर पड़ी। इस प्रकार धन नष्ट हो जानेसे बनारसीदासके हृदयको बहुत बडा धक्का लगा, जिससे सन्ध्या समय जोरसे ज्वर चढ़ आया और दस लघनोंके पश्चात् पथ्य दिया गया। इसी बीच पिताके कई पत्र आये, पर इन्होंने लज्जावश उत्तर नहीं दिया। सत्य छिपाये

छिपता नहीं, अतः इनके बड़े बहनोई उत्तमचन्द जौहरीने सारी घटनाएँ जौनपुर इनके पिताके पास लिख भेजी। खड्गसेन इस समाचारको पाकर किंकर्त्तव्य विमूढ हो गये और पत्नीको बुरा-भला कहने लगे।

जब बनारसीदासके पास कुछ न बचा तो गृहस्थीकी चीजोंको बेच-बेचकर खाने लगे। समय काटनेके लिए मृगावती और मधुमालती नामक पुस्तकोंको बैठे पढ़ा करते थे। दो-चार रसिक श्रोता भी आकर सुनते थे। एक कचौडीवाला भी इन श्रोताओंमें था, जिसके यहाँसे कई महीनों तक दोनों शाम उधार लेकर कचौड़ियाँ खाते रहे। फिर एक दिन एकान्तमें इन्होंने उससे कहा—

तुम उधार कीनौ बहुत, अब आगे जनि देहु।
मेरे पास कछू नहीं, दाम कहाँसौं लेहु॥

कचौडीवाला सज्जन था, उसने उत्तर दिया—

कहै कचौड़ीवाला नर, बीस सवैया खाहु।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहँ भावै तहँ जाहु॥

कवि निश्चिन्त होकर छः-सात महीने तक दोनों शाम भरपेट कचौ-ड़ियाँ खाता रहा, और जब पासमें पैसे हुए तो चौदह रुपये देकर हिसाब साफ़ कर दिया। कुछ समयके पश्चात् कवि अपनी ससुराल खैराबाद पहुँचा। एकान्तमे भार्यासे समागम हुआ; पतिव्रता चतुर भार्याने पतिकी आन्त-रिक वेदनाको ज्ञात कर अपने अर्जित बीस रुपयोंको भेट किया और हाथ जोड़कर कहा—"नाथ! चिन्ता न करें, आप जीवित रहेंगे तो बहुत धन हो जायगा।" इसके पश्चात् एकान्तमें उसने अपनी मातासे कहा—

माता काहू सौं जिनि कहौ। निज पुत्रीकी लज्जा बहौ॥
थोरे दिन मैं लेहु सुधि, तो तुम मा मैं धीय।
नाहीं तौ दिन कैकुमै, निकसि जाइगौ पीय॥

ऐसा पुरुष लजालू बड़ा । बात न कहै जात है गड़ा ॥
कहै माइ जिन होहि उदास । इसे मुद्रा मेरे पास ॥
गुपत देहुँ तेरे कर माहिं । जो वे बहुरि आगरे जाहिं ॥
पुत्री कहै धन्य तू माइ । मैं उनकौं निसि बूझौं जाइ ॥

रातको जब पुनः दम्पति मिले तो उस सती साध्वीने अपनी माँसे प्राप्त २००) रुपये भी उन्हें दे दिये और आगरे जाकर व्यापार करनेका अनुरोध किया । कविने दूसरे दिनसे ही व्यापारकी तैयारी कर दी तथा माल खरीदने लगा । इसी बीच अवकाश पर्याप्त मिला, अतः कविने नाममाला और अजितनाथ स्तुतिकी रचना यहीं की ।

दुर्भाग्यने कविका साथ सदा दिया, अतः इस व्यापारमे भी कविको घाटा ही रहा । इसके पश्चात् कवि अपने मित्र नरोत्तमदासके यहाँ रहने लगा । कुछ दिनके पश्चात् नरोत्तम, उसके श्वसुर और बनारसीदास तीनो पटनेकी ओर चले । रातमे रास्ता भूल जानेसे एक चोरोके ग्राममे पहुँचे । जब चोरोंके चौधरीने इन्हें देखा तो नाम-ग्राम पूछा । इस अवसरपर बनारसीदासकी बुद्धि काम कर गई और एक श्लोकमें चौधरीको आशीर्वाद दिया । श्लोकयुक्त आशीर्वाद सुनकर चौधरी कुछ मुग्ध हुआ और इन्हें ब्राह्मण समझ दण्डवत् किया तथा हाथ जोड़कर बोला—"महाराज, आप लोग रास्ता भूलकर यहाँ आ गये हैं । रातभर यहीं रहें, सबेरे आपको रास्ता बतला दिया जायगा । जब चौधरी इनको वहाँ छोड शयन करने चला गया तो तीनोंने सूत बटकर यज्ञोपवीत धारण किया तथा मिट्टी घिसकर त्रिपुण्ड लगाया—

माटी लीन्हीं भूमिसौं, पानी लीन्हौं ताल ।
विप्र बेष तीनों धर्यो, टीका कीन्हों भाल ॥

इस प्रकार कविने बनारस, जौनपुर, आगरा आदि स्थानोंमें र

व्यापार किया। दो-चार जगह लाभ भी हुआ, पर जीवनमें धनोपार्जन कभी नहीं कर सका।

एकबार आगरा लौटते समय कुरी नामक ग्राममें कवि और कविके साथियोंपर झूठे सिक्के चलानेका भयंकर अपराध लगाया गया था तथा इनको और इनके साथी अन्य अठारह यात्रियोंके लिए मृत्युदण्ड देनेको शूली भी तैय्यार कर ली गयी थी। आत्मकथामें इस संकटका विवरण रोमाञ्चकारक है—

सिरीमाल बानारसी, अरु महेसरी जाति।
करहिं मंत्र दोऊ जने, भई छमासी राति॥
पहर राति जब पिछली रही। तब महेसरी ऐसी कही॥
मेरा लिहुरा भाई हरी। नाउँ सुतौ ब्याहा है बरी॥
हम आए थे यहाँ बरात। भली याद आई यह बात॥
बानारसी कहै रे मूढ़। ऐसी बत करी क्यों गूढ़॥

तब महेसुरी यौं कहै, भयसौं भूली मोहि।
अब मोकौं सुमिरन भई, तू निश्चिंत मन होहि॥

तब बनारसी हरषित भयौ। कछुक सोच रह्यौ कछु गयौ।
कबहूँ चित की चिन्ता भगै। कबहूँ बात झूठसी लगै॥
यों चिन्तवत भयो परभात। आइ पियादे लागे घात।
सूली दै मजूरके सीस। कोतवाल भेजी उनईस॥
ते सराइ मैं डारी आनि। प्रगट पयादा कहै बखानि।
तुम उनीस प्रानी ठग लोग। ए उनीस सूली तुम भोग॥

घरी एक बीते बहुरि, कोतवाल दीवान।
आए पुरजन साथ सब, लागे करन निदान॥

कवि गार्हस्थिक दुर्घटनाओंका निरन्तर शिकार रहा। एकके बाद एक इनकी दो पत्नियोंकी एवं उनके नौ बच्चोंकी मृत्यु हो जानेपर कविने

अशुभोदयको ही अपनी क्षतिका कारण समझा। सवत् १६९८ मे अपनी तीसरी पत्नीके साथ बैठे हुए कवि कहता है—

नौ बालक हूए मुए, रहे नारिनर दोइ।
ज्यों तरवर पतझार ह्वै, रहैं ठूँठसे होइ॥

दूसरी स्त्रीकी मृत्युके उपरान्त कविने तीसरी शादी की तथा इसी बीच कविने अनेक रचनाएँ लिखी—

चले बरात बनारसी, गये चाडसूँ गाय।
बच्छा सुतकौं ब्याह करि, फिर आये निजधाम॥
अरु इस बीचि कबीसुरी, कीनी बहुरि अनेक।
नाम 'सूक्तिमुक्तावली', किए कवित सौ एक॥
'अध्यातम बत्तीसिका' 'पपड़ी' 'फाग धमाल'।
कीनी 'सिन्धुचतुर्दशी' फूटक कवित रसाल॥
'शिवपच्चीसी भावना' 'सहस अठोत्तर नाम'।
'करम छत्तीसी' 'झूलना' अन्तर रावन राम॥
बरनी आँखैं दोइ विधि, करी 'बचनिका' दोइ।
'अष्टक' 'गीत' बहुत किए, कहौं कहाँलौं सोइ॥

इस आत्मकथामें कविने अपना ५५ वर्षोंका चरित स्पष्टता और सत्यतापूर्वक लिखा है। कविने सत्यताके साथ जीवनकी घटनाओका यथार्थ चित्रण करनेमें तनिक भी कोर-कसर नही की है। वस्तुतः कविके जीवनकी घटनाएँ इतनी विचित्र है, जिससे पाठकोंका सहजमें मनोरंजन हो सकता है। कविमें हास्यरसकी प्रवृत्ति अच्छी मात्रामे विद्यमान है, जिससे हँसी-मजाकके अवसरोंको खाली नहीं जाने दिया है। सिनेमाके चलचित्रोंके समान मनमोहक घटनाएँ प्रत्येक पाठकके मनमे गुदगुदी उत्पन्न किये बिना नही रह सकतीं। ६७५ दोहा और चौपाइयोंमे लिखी गयी इस आत्मकथामे कविको अपना चरित्र चित्रित करनेमें पर्याप्त

सफलता प्राप्त हुई है। अपनेको तटस्थ रखकर सत्कर्म और दुष्कर्मोंपर दृष्टि डालना तथा इन्हें जनताके समक्ष खोलकर कच्चे चिट्ठीके रूपमें रखना, कविका बहुत बड़ा साहस है। इसी साहसके कारण उनका यह आत्म-कथा-काव्य आजके पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानोंके लिए अनुकरणीय है। आत्मकथाकी सफलताके लिए जिन उपादानोंकी आवश्यकता है, वे सभी उपादान इसमें विद्यमान हैं। अतः यह हिन्दी साहित्यमें सबसे पुराना आत्मकथा-काव्य है। भाषाकी सरलता और शैलीका सुस्पष्ट विधान इसका प्राण है। हिन्दी संसारको इसका वास्तविक रूपमें अनुसरण करना चाहिए।

सातवाँ अध्याय

रीति-साहित्य

हिन्दीमें रीतिका प्रयोग लक्षण ग्रन्थोके लिए होता है। जिस साहित्यमें काव्यके विभिन्न अगोंका लक्षण सोदाहरण प्रतिपादित होता है, उसे रीति साहित्य और जिस वैज्ञानिक पद्धतिपर—विधानके अनुसार यह प्रतिपादन किया जाता है, उसे रीति-शास्त्र कहते है। सस्कृत साहित्यमे इसे काव्य-शास्त्र कहा गया है। जैन लेखक और कवियोंने काव्य और साहित्यके विधानको रीतिके अन्तर्गत रखा है। जिस युगमे जैन साहित्यकारोंने रीति-साहित्यका विवेचन किया था, उस युगमें देशका राजनीतिक और आर्थिक पराभव अपनी चरम सीमातक पहुँच गया था। भारतकी कला उत्कर्षके चरम बिन्दुपर पहुँचनेके उपरान्त अगतिकी ओर अग्रसर हो रही थी। अप्रतिहत मुगलवाहिनी पश्चिमोत्तर प्रान्तोंमे लगातार तीनबार असफल रही, जिससे धन-जनकी हानिके साथ मुगल साम्राज्यको भी भारी धक्का लगा। यद्यपि बाहरसे भारत सम्पन्न और शक्तिशाली दिखाई देता था, पर उसके भीतर क्षयका बीज अकुरित होने लग गया था। जहाँगीरकी मस्ती और शाहजहाँके अपव्यय दोनोका परिणाम देशके लिए अहित-कर हुआ।

मुगल सम्राटोंके समान ही हिन्दू राजाओकी स्थिति थी। बहु-पत्नीत्वकी प्रथा रहनेके कारण राजपूत राजाओंके रनिवासमे आन्तरिक कलह और ईर्ष्याका नग्न नृत्य होता था। अहकारकी भावना इन राज-पूत राजाओंमे इतनी अधिक थी, जिससे पुत्र भी पिताकी हत्या करनेको तैयार था। फलतः इस विषम राजनीतिक परिस्थितिमे हिन्दू और मुसलमान

दोनों ही अपना नैतिक बल खो बैठे थे। दोनों ही निर्बाध इन्द्रियलिप्सामें रत थे। कवि और कलाकार अमीर, रईस और राजाओंके आश्रममें पहुँच-कर इन्हीं उच्चवर्गके व्यक्तियोंकी कामपिपासाको उत्तेजित करनेमे संलग्न थे। उस शृंगारिक और विलासिताके युगमे बाह्य और आन्तरिक जीवन-की स्वस्थ अभिव्यक्तिका मार्ग अवरुद्ध हो चुका था। जन-साधारणकी वृत्तियाँ बहिर्मुखी होकर अस्वस्थ कामविलासमें ही अपनेको व्यक्त करती थी। राजा, महाराजा और रईस बाह्य जीवनसे त्रस्त होकर अन्तःपुरकी रमणियोंकी गोदमें शान्तिका अनुभव करते थे। नैराश्यने अतिशय विला-सिताका रूप ग्रहण कर लिया था।

इस युगमे हिन्दू धर्मकी स्थिति और भी दयनीय थी। जीवनमे विलासिता आ जानेके कारण साधना और तत्त्वचिन्तनमे शैथिल्य आ गया था। धर्मका तात्त्विक विकास बिलकुल अवरुद्ध हो गया था, भक्ति और सेवा-अर्चनोंमे ऐश्वर्य और विलासने स्थान पा लिया था। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंमे अन्धविश्वास और रूढ़ियोंने घर कर लिया था। जिससे धर्म भी शृंगार और विलासके पोषणका साधन बन गया था। भक्तिकालके राधा-कृष्ण एक साधारण नायक-नायिकाके पदपर आसीन हो गये थे। मठ और मन्दिर देवदासियोके चरणोकी छम-छमसे गूँजते रहते थे। जनताका बौद्धिक ह्रास हो जानेके कारण साहित्यस्रष्टा और कलाकारोको भी विलास और शृङ्गारको उत्तेजित करना आवश्यक-सा हो गया था। फलतः हिन्दी साहित्यमे नायक नायिका-भेदपर सैकड़ों काव्य लिखे गये तथा हिन्दी कवियोने लक्षण ग्रन्थोंके साथ शृङ्गारका खुला निरूपण किया। जीवनके मूलगत गम्भीर प्रश्नोंके समाधानकी ओर कवियोंका बिलकुल ध्यान ही नहीं गया। अतएव हिन्दी रीति-साहित्यमें आध्यात्मिकताका तो पूर्ण अभाव है ही, पर प्रकृतिकी दृढ कठोरता भी नहीं है। जीवनकी अनेकरूपता, जो कि किसी भी भाषाके साहित्यके लिए स्थायी सम्पत्ति है इस युगके साहित्यमें उसका प्रायः अभाव है।

रीतिकालकी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियोंने भाषा और कविता दोनोंको अलकृत किया है। समयकी रुचि और तदाश्रित काव्य-प्रेरणा अलकरणके अनुकूल थी, अतः काव्यके रूप-आकारको सजानेका पूरा प्रयत्न किया है।

हिन्दीके रीतिग्रन्थ प्रायः काव्यप्रकाश, शृङ्गार-तिलक, रसमजरी, चन्द्रालोककी विषय-निरूपण-शैलीपर रचे गये है। विषयका पिष्ट-पेषण होनेके कारण कोई नयी उद्भावना रस, अलकार या शब्द शक्तिके सम्बन्धमें नही हुई। सस्कृत साहित्यके समान शृङ्गारको ही रसराज मानते हुए नायक-नायिकाओके भेद-प्रभेदोमे ही बालकी खाल निकालकर कलाकार कवि-कर्मकी इतिश्री समझते रहे।

परन्तु जैन कलाकारोने इस विलासिताके युगमे भी बहिर्मुखी वृत्तियों-का संकोच और अन्तर्मुखी वृत्तियोके प्रसार-द्वारा अन्तस्‌के प्रकाशको प्राप्त कर चिर-सत्य एवं चिर-सुन्दरकी आधारभूमिपर आरूढ हो शान्तरस-मे निमजन किया है। महाकवि बनारसीदासने शृगारी कवियोंकी भर्त्सना करते हुए कहा है—

> ऐसे मूढ़ कु-कवि कुधी, गहैं मृषा पथ दौर।
> रहैं मगन अभिमान में, कहैं औरकी और॥
> वस्तु सरूप लखैं नहीं, बाहिज दृष्टि प्रमान।
> मृषा विलास विलोकके, करें मृषा गुनगान॥

कविने शृंगारी कवियोके मृषा गुनगानका विश्लेषण करते हुए बताया है—

> माँस की ग्रन्थि कुच कंचन कलस कहैं,
> कहैं मुखचन्द जो सलेषमा को घरु है।
> हाड के दशन आहि हीरा मोती कहे ताहि,
> माँस के अधर ओठ कहे बिंबफल है॥

हाड दम्भ भुजा कहे कौलनाल काम जुधा,
हाड ही के थंभा जंघा कहे रंभा तरु है।
यों ही झूठी जुगति बनावैं औ कहावें कवि,
एते पै कहैं हमें शारदाको वरु है॥

जैन काव्यकी वैराग्योन्मुख प्रवृत्तिका विश्लेषण करनेपर निम्न निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) इसका मूलाधार आत्मानुभूति या प्रथम गुण है। इसमे पार्थिव एव ऐन्द्रिय सौन्दर्यके प्रति आकर्षण नही है। अपार्थिव और अतीन्द्रिय सौन्दर्यके रहस्य सकेत सर्वत्र विद्यमान है।

(२) रागात्मिका प्रवृत्तिको उदात्त और परिष्कृत करना तथा जीवनोन्नयनके लिए तत्त्वज्ञानका आश्रय लेना। जीवन-साधना स्वानुभव या तत्त्वज्ञानके अनुभव-द्वारा ही होती है, अतः तत्त्वज्ञानको जीवनमे उतारना तथा जीवनकी वास्तविकताओसे आमने-सामने खड़े होकर टक्कर लेने मे सम्पूर्ण चेतनाका उपयोग करना।

(३) वासनाके स्थानपर विशुद्ध प्रेमको अपनाना और आदर्शवादी बलिदानकी भावनाको जीवनमे उतारना।

(४) तरलता और छटाके स्थानपर आत्माकी पुकार एवं स्वस्थ जीवन-दर्शनको उपस्थित करना।

(५) जीवनके मूलगत प्रश्नोका समाधान करते हुए उद्बुद्ध जीवनकी गहन मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओसे अभिज्ञ करना।

(६) घोर अव्यवस्थासे क्षत-विक्षत सामन्तवादके भग्नावशेषकी छाया-मे त्रस्त और पीड़ित मानवको वैयक्तिक स्फूर्ति और उत्साह प्रदान करना।

(७) जीवन पथको, नैराश्यके अन्धकारको दूरकर आशाके संचार-द्वारा आलोकित करना एव विलास जर्जर मानवमे नैतिक बलका संचार करना।

कविवर भूधरदासने कवियोंको बोध देते हुए बताया है कि बिना सिखाये ही लोग विषयसुख सेवनकी चतुरता सीख रहे हैं, तब रसकाव्य

रचनेकी क्या आवश्यकता ? जो कवि विषय-काव्य रचकर जनता-जनार्दनको विषयोंकी ओर प्रेरित करते हैं, वे मानव-समाजके शत्रु हैं। ऐसे कुकवियोंसे सत्साहित्यके 'जीवनका निर्माण और उत्थान' कभी सिद्ध नहीं हो सकता है। कामुकताकी वृद्धि करना कविकर्मके विपरीत है, अतएव कोरी शृंगारिकताको प्रश्रय देना उचित नहीं है।

राग उदय जग अन्ध भयो, सहजे सब लोगन लाज गँवाई।
सीख बिना नर सीखत है, विषयानिके सेवनकी सुघराई॥
तापर और रचें रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझनिकी अँखियान में झोंकत हैं रज रामदुहाई॥

जहाँ शृंगारी कवियोंने स्तनोंको स्वर्णकलशोंकी और उनके श्यामल अग्रभागको नीलमणिकी ढकनीकी उपमा दी है, वहाँ कवि भूधरदासने क्या ही सुन्दर कल्पना-द्वारा भावाभिव्यञ्जन किया है—

कंचन कुम्भनकी उपमा, कहि देत उरोजनको कवि बारे।
ऊपर श्याम विलोकतके मनिनीलम ढँकनी ढँक ढारे॥
यों सत बैन कहे न कुपण्डित, ये युग आमिष पिण्ड उघारे।
साधन झार दई मुँह छार, भये इहि हेत किधौं कुच कारे॥

जैन साहित्यमे अन्तर्मुखी प्रवृत्तियोको अथवा आत्मोन्मुख पुरुषार्थको रस बताया है। जबतक आत्मानुभूतिका रस नहीं छलकता रसमयता नहीं आ सकती। विभाव, अनुभाव और संचारीभाव जीवके मानसिक, वाचिक और कायिक विकार हैं, स्वभाव नहीं हैं। रसोंका वास्तविक उद्भव इन विकारोंके दूर होनेपर ही हो सकता है। जबतक कषाय—विकारोंके कारण योगकी प्रवृत्ति शुभा-शुभ रूपमें अनुरंजित रहती है, आत्मानुभूति नहीं हो सकती। शुभाशुभ परिणतियोंके नाश होनेपर ही शुद्धानुभूतिजन्य आत्मरस छलकता है, इसी

रस-सिद्धान्त

कारण लौकिक रूपमें रस-विरस है। महाकवि बनारसीदासने रसकी अलौकिकताका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—

जब सुबोध घटमें परगासै । नवरस विरस विषमता नासै ॥
नवरस लखै एक रस माहीं । तातैं विरसभाव मिटि जाहीं ॥

अर्थात् जब हृदयमें विवेक—यथार्थ ज्ञानका प्रकाश होता है, तब रसोंकी विरसता और विषमताका नाश हो जाता है, और निरन्तर आत्मानुभूति होने लगती है।

तीव्र राग ही क्लान्त होकर जब वैराग्यमें परिणत हो जाता है, तब आत्मचिन्तन उत्पन्न होता है और इच्छा-सुन्दर रमणियोंमें प्रीति, मूर्छा—बाह्य वस्तुओंके साथ एकमेक रूप होनेके परिणाम, काम—इष्ट वस्तु अभिलाषा, स्नेह—विशिष्ट प्रेम, गार्ध्य—अप्राप्त वस्तुकी इच्छा, अभिनन्द—इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होनेपर सन्तोष, अभिलाषा—इष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए मनोरथ एवं ममत्व—यह वस्तु मेरी है का परिष्कार होता है। रसानुभूति अलौकिक रूपमें प्रशम—रागादिकका उत्कृष्ट शम, गुणके आविर्भूत होनेपर ही होती है। जैन कवियोंकी अनुभूतिका धरातल बहुत गहरा है। इन कलाकारोंने अपनी पैनी दृष्टि डालकर सूक्ष्म-तरल भावनाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए आत्म-सौन्दर्यको ग्रहण किया और इन्द्रिय-विलाससे दूर रहकर आत्मलोकमें विचरण करनेका प्रयास किया है।

जैन साहित्य-निर्माताओंने इसका प्रयोग आत्मानन्दके अर्थमें किया है। रसको महाकवि बनारसीदासने चिदानन्दस्वरूप माना है। समाधि या ध्यान-द्वारा जिस आनन्दकी अनुभूति होती है, वही आनन्द तत्कालके सहज साक्षात्कार-द्वारा उपलब्ध होता है। यों तो जैन साहित्यमें पुद्गलके रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन चार प्रधान गुणोंमें रसको गुणके रूपमें परिगणित किया है।

लौकिकरूपमें रसका प्रयोग जैनसाहित्यमें अनेक स्थलोंपर हुआ है।

"रस्यन्ते अन्तरात्मनाऽनुभूयन्ते इति रसास्तत्सहकारिकारणसन्निधानेषु चेतोविकारविशेषेषु रसाः शृंगारादयः"[1]। अर्थात् अन्तरात्माकी अनुभूतिको रस कहते हैं तथा इसमें सहकारी कारण मिलनेपर जो मनमें विकार उत्पन्न होता है, वह शृङ्गारादिरूप रस कहलाता है। इसीको स्पष्ट करते हुए कहा है—

> बाह्यार्थालम्बनो वस्तुविकारो मानसो भवेत्।
> स भावः कथ्यते सद्भिः तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः॥

अर्थात्—बाह्य वस्तुके आलम्बनसे जो मानसिक विकार उत्पन्न होता है, वह भाव कहलाता है और इसी भावके उत्कर्षको रस कहा जाता है। भगवज्जिनसेनने अलकार-चिन्तामणिमें रसका स्पष्टीकरण करते हुए बताया है—

> क्षयोपशमने ज्ञानाऽऽवृत्तिवीर्यान्तराययोः।
> इन्द्रियानिन्द्रियैर्जीवे त्विन्द्रियज्ञानमुद्भवेत्॥
> तेन संवेद्यमानो यो मोहनीयसमुद्भवः।
> रसाभिव्यञ्जकः स्थायिभावश्चिद्वृत्तिपर्ययः॥

अर्थ—ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशम होनेपर इन्द्रिय और मनके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह इन्द्रियज्ञान है। इस इन्द्रिय ज्ञानके सवेदनके साथ मोहनीय कर्मका उदय होनेपर विकृत चैतन्य पर्याय, जो कि स्थायी भावरूप है, रसकी अभिव्यक्ति कराती है।

स्थायी भावोके स्वरूपका निरूपण करते हुए बताया है—

सम्भोगगोचरो वाञ्छाविशेषो रतिः। विकारदर्शनादिजन्यो मनोरथो हासः। स्वस्येष्टजनवियोगादिना स्वस्मिन्दुःखोत्कर्षः शोकः। रिपुकृतापकारिणश्चेतसि प्रज्वलनं क्रोधः। कार्येषु लोकोत्कृष्टेषु स्थिरतरप्रयत्नः उत्साहः। रौद्रविलोकनादिना अनर्थाशङ्कनं भयम्। अर्थानां दोषविलो-

---

१. अभिधानराजेन्द्र 'रस' शब्द।

कनादिभिर्गर्हा जुगुप्सा। अपूर्ववस्तुदर्शनादिना चित्तविस्तारो विस्मयः। विरागत्वादिना निर्विकारमनस्त्वं शमः।

अर्थात्—सम्भोगसम्बन्धी इच्छा विशेषको रति; विकृत वस्तुके देखने पर जो मनोविनोदकी वाञ्छा उत्पन्न होती है, उसे हास; इष्ट व्यक्तिके वियुक्त होनेपर जो शोक उत्पन्न होता है, उसे शोक; शत्रु या अन्य उपकारीके प्रति मनमे जलन—सन्ताप उत्पन्न होना क्रोध; लोकके उत्कृष्ट कार्योंमें दृढ़ प्रयत्न करना उत्साह; भयानक वस्तुको देखकर उससे अनर्थकी आशंका करना भय; पदार्थोंके दोष देखनेसे उत्पन्न होनेवाली घृणा जुगुप्सा; अद्वितीय वस्तुके देखनेसे मनको विस्तृत करना विस्मय एवं विरक्ति आदिके द्वारा मनका निर्विकारी होना शम है।

इन स्थायी भावोंकी अभिव्यक्त दशाका नाम रस है। वाग्भटालंकारमे जैनाचार्यने इसी तथ्यका प्रकटीकरण करते हुए कहा है—

> विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
> आरोप्यमाण उत्कर्षं स्थायीभावः स्मृतो रसः॥

अर्थात्—हमारे हृदयस्थित रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शमभाव स्थायी रूपसे निरन्तर विद्यमान रहते है। जब ये ही भाव अवसर पाकर-विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावोके द्वारा उत्कर्षको प्राप्त होते हैं—जाग उठते है, तो रसकी अनुभूति होती है। तात्पर्य यह है कि मानव-हृदयमे सदैव प्रसुप्तावस्थामे विद्यमान रहनेवाले मनोविकारोंसे रसकी सिद्धि होती है।

जैन साहित्य-निर्माताओंने लौकिक और अलौकिक दोनों ही अवस्थाओंमें अनिर्वचनीय आनन्दको रस कहा है। कविता पढ़ने या सुनने और नाटक देखनेसे पाठक, श्रोता या दर्शकको अद्वितीय, सासारिक वस्तुओंमे अप्राप्य आनन्द उपलब्ध होता है, जो शब्दोंके द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है, वही काव्यमे रस कहलाता है। वस्तुतः काव्य

या साहित्यमें असाधारण आनन्दको संचारित करनेवाला रस अवश्य रहता है। निश्चय नयकी शैलीके अनुसार आत्मानुभूति ही रस है तथा साहित्यमें यही आत्मानुभूति-विद्यमान रहती है। यद्यपि मानसिक विकार और भाव जो काव्य-द्वारा उद्बुद्ध होते हैं, विरस हैं; परन्तु लौकिक दृष्टिसे ये भी आनन्दानुभूतिको ही उत्पन्न करते हैं।

जैन हिन्दी रीति साहित्यमें महाकवि बनारसीदासने अपने मौलिक चिन्तन-द्वारा रसोंके स्थायी भावोंके सम्बन्धमें नवीन प्रकाश डाला है। प्राचीन परम्परासे प्राप्त स्थायी भावोंकी अपेक्षा बनारसीदासकी कल्पना कितनी वैज्ञानिक और तथ्यपूर्ण है, यह निम्न विवेचनसे स्पष्ट है। महाकविने शृंगार रसका स्थायी भाव शोभा, हास्य रसका आनन्द, करुण रसका कोमलता, रौद्र रसका क्रोध, वीर रसका पुरुषार्थ, भयानक रसका चिन्ता, बीभत्स रसका ग्लानि, अद्भुतका आश्चर्य और शान्त रसका स्थायी भाव वैराग्य माना है। यद्यपि रौद्र, अद्भुत, बीभत्स और शान्त रसके स्थायी भाव प्राचीन परम्परासे साम्य रखते हैं, पर शेष रसोंके स्थायी भावोंकी उद्भावना बिल्कुल नवीन है[1]।

शृंगार[2] रसका स्थायी भाव शोभा रति स्थायी भावकी अपेक्षा

---

१. शोभा में शृंगार बसे वीर पुरुषारथमें,
कोमल हिये में करुणा बखानिये।
आनन्द में हास्य रुण्ड मुण्ड में विराजे रुद्र,
बीभत्स तहाँ जहाँ गिलानि मन आनिये॥
चिन्ता में भयानक अथाहता में अद्भुत,
मायाकी अरुचि तामें शान्त रस मानिये।
ये ई नव रस भव रूप ये ई भावरूप
इनको विलक्षण सुदृष्टि जगे जानिये॥

२. देखें जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग १६ किरण १।

अधिक तर्कसंगत है। क्योंकि शोभा शब्दमें जो गूढ़ अर्थ और व्यापक दृष्टिकोण निहित है, वह रतिमें नहीं। रतिको स्थायी भाव मान लेनेसे सबसे बड़ी आपत्ति यह आती है कि एक ही विषय-भोगसम्बन्धी चित्रके देखनेसे मुनि, कामुक और चित्रकारके हृदयमें एक ही प्रकारकी भावनाएँ उद्बुद्ध नहीं हो सकती। अतएव एकमात्र रतिको शृंगार रसका स्थायी भाव नहीं माना जा सकता। शोभाका सम्बन्ध मानसिक वृत्तिसे होनेके कारण इसका विशाल और व्यापक अर्थ ग्रहण किया जाता है। शोभा—सौन्दर्य की ओर मन, वचन और कायकी एकनिष्ठता होनेपर ही शृंगार रसकी अनुभूति होती है। अतएव सौन्दर्यमें ही चित्तवृत्ति तल्लीन होती है, जिससे शृंगारका अनुभव होता है।

हास्य रसका स्थायी भाव आनन्द मान लेनेसे इस रसकी उत्पत्ति अधिक वैज्ञानिक मालूम पड़ती है। हँसी तो कभी-कभी ऊबकर या खीझकर भी आती है, पर इस हँसीसे हास्यरसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। हँसना कई प्रकारका होता है, दूसरोंको अवाञ्छनीय मार्गपर जाते देखकर दुःखकी स्थितिमें हँसी आ जाती है, पर यहाँ हास्य रसकी अनुभूति नहीं है। क्योकि इस प्रकारकी हँसीमें एक वेदना छिपी रहती है। कभी-कभी कौतूहल होनेपर भी किसी ऊटपटाग कार्यको देखकर यो ही हँसी आ जाती है, परन्तु हास्य रसकी अनुभूति नहीं होती। इस प्रकारके स्थलोंमे प्रायः करुणावृत्ति हमारे हृदयमे उद्बुद्ध होती है तथा करुण रसकी ही अनुभूति होती है।

आनन्द स्थायी भाव स्वीकार कर लेनेपर उक्त दोष नहीं आता। जिन मनोरंजन और भोलेपनसे परिपूर्ण शुभ सवादोंको सुनते है और जिन प्रवृत्तियोंके द्वारा किसीकी हानि नहीं होती तथा मनबहलावका वातावरण तैयार हो जाता है, उस समय आनन्दकी अवस्थामें हास्य रसकी उत्पत्ति होती है। अभिप्राय यह कि हास्यरसका सम्बन्ध वस्तुतः आनन्दसे है, केवल हाससे नहीं। जबतक अन्तस्‌मे आनन्दका संचार नहीं होगा,

तबतक हास्य रसानुभूतिका होना सम्भव नहीं। आन्तरिक आह्लादके होनेपर ही हास्य रसानुभूति होती है, अतएव आनन्दको इस रसका स्थायी भाव मानना तर्कसंगत और वैज्ञानिक है।

प्राचीन परम्परामें करुण रसका स्थायी भाव शोक माना गया है, परन्तु महाकविने कोमलताको इसका स्थायी भाव माना है। कारण स्पष्ट है कि शोकके मूलमें चिन्ता रहती है तथा चिन्तामें भयकी उत्पत्ति होती है, अतएव केवल शोक करुण रसका सचार नही कर सकता है। करुणाका शब्दार्थ दया है और दया उसी व्यक्तिके हृदयमे उत्पन्न होगी, जिसके अन्तःकरणमे कोमलता रहेगी। कोमलताके अभावमे करुणा बुद्धिका उत्पन्न होना सम्भव नही है, अतएव करुण रसका स्थायी भाव कोमलताको मानना अधिक तर्कसंगत है।

कोमलतामें उदारता और समरसताका समन्वय या सतुलन है। यह स्वयं अपने आपमें सरल, निर्मल और निष्कलुष है। आधुनिक मनोविज्ञानवेत्ताओंने शोकमें अन्तर्द्वन्दजन्य चिन्ताका मिश्रण स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि आन्तरिक कठिनाइयोंके कारण शोकका प्रादुर्भाव होता है, जिससे करुण रसकी अनुभूति नही हो सकती। हॉ, कोमलतामें करुणावृत्तिका रहना अवश्यभावी है, अतएव शोककी अपेक्षा कोमलता ही करुणरसका विज्ञान-सम्मत स्थायीभाव है। इस वृत्तिमे चित्तका लचीलापन विशेषरूपसे विद्यमान है।

वीररसका पुरुषार्थ स्थायी भाव मानना अधिक वैज्ञानिक है, क्योंकि उत्साह किसी कारण ठढा भी हो सकता है, किन्तु पुरुषार्थमे आगेकी ओर बढनेकी भावना अन्तर्निहित है। किसीके वीररस सम्बन्धी काव्यको पढकर उत्साहका आना न आना निश्चित नही है, किन्तु पुरुषार्थ—कार्य-साधनकी तीव्र लगनका उत्पन्न होना परम आवश्यक है। पुरुषार्थ एक सजीव प्रवृत्ति है, पर उत्साह अन्यपरअवलम्बित रहनेवाली भावना है।

महाकविने भयानक रसका स्थायीभाव चिन्ताको माना है; क्योंकि

किसी भयानक दृश्यको देखकर भय उत्पन्न हो ही अथवा किसीके द्वारा डराये जानेपर भयकी भावना जाग्रत हो, इसका कोई निश्चय नहीं। जबतक चिन्ता उत्पन्न नही होती तबतक भय उत्पन्न नहीं हो सकता। चिन्ता शब्द भयकी अपेक्षा अधिक व्यापक है। यद्यपि चिन्ता और भय एक दूसरेके पृष्ठपोषक हैं, किन्तु चिन्ताके उत्पन्न होनेपर भयकी भावनाका जाग्रत होना आवश्यक-सा है। इस प्रकार स्थायीभावों और रसोंके विवेचनमें जैनसाहित्यकारोंने मौलिक चिन्तन उपस्थित किया है।

रसराज जैन साहित्यमें शान्तरसको स्वीकार किया है। इस रसका स्थायीभाव वैराग्य या शमको माना है; तत्त्वज्ञान, तप, ध्यान, चिन्तन, समाधि आदि विभाव हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोहके अभाव अनुभाव हैं; धृति, मति आदि व्यभिचारी भाव हैं। वस्तुतः न जहाँ राग-द्वेष हैं, न सुख-दुःख है, न उद्वेग-क्षोभ है और सब प्राणियोंमें समान भाव है, वहाँ शान्त रसकी स्थिति रहती है। मानव अहर्निश शान्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, उसका प्रत्येक प्रयत्न शान्तिके लिए होता है। भौतिकवाद और देहात्मवादसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती, अतएव शान्तरसको रसराज मानना समीचीन है। जिस प्रकार छोटे-छोटे निर्झर किसी समुद्रमें मिल जाते हैं, उसी प्रकार सभी रसोंका समावेश शान्तरसमें हो जाता है। जैसे नदियों और झरनोंका समुद्रमें मिलना स्वभावसिद्ध है, प्रकारान्तरसे नदियोंका उद्गम स्रोत भी समुद्रका जल ही है, इसी प्रकार मानव-जीवनकी समस्त प्रवृत्तियोंका उद्गम शान्तिसे तथा समस्त प्रवृत्तियोंका विलयन भी शान्तिमें ही होता है। शान्तिका अक्षय भण्डार आत्मा है, जब यह देह आदि परपदार्थोंसे अपनेको भिन्न अनुभव करने लगती है, उस समय शान्त रसकी उत्पत्ति होती है। यह अहकार, राग-द्वेषसे हीन, शुद्ध ज्ञान और आनन्दसे ओत-प्रोत आत्मस्थिति है। यह स्थिति चिरस्थायी है, रति, उत्साह आदि अन्य मनोदशाओंका आविर्भाव इसीमें होता है।

जैन साहित्यकारोंने वैराग्योत्पत्तिके दो साधन बतलाये हैं—तत्त्वज्ञान

और इष्टवियोग तथा अनिष्टसंयोग। इनमें पहला स्थायी भाव है और दूसरा सञ्चारी। आजका मनोविज्ञान भी उक्त जैन कथनका समर्थन करता है, क्योंकि इसके अनुसार रागकी क्लान्त अवस्था ही वैराग्य है। महाकवि देवने भी वैराग्यको रागकी अतिशय प्रतिक्रिया माना है। इनके मतानुसार तीव्र राग ही क्लान्त होकर वैराग्यमें परिणत हो जाता है। अतएव शान्त रसमें मनकी विभिन्न दशाओंका रहना आवश्यक है।

डा० श्री भगवानदासने अपने रस-मीमांसा निबन्धमें शान्त रसका रसराजत्व अत्यन्त सुचारु ढंगसे सिद्ध किया है। उनका कथन है कि "इस महारसमें अन्य सब रस देख पड़ते हैं, यह सबका समुच्चय है। श्रेष्ठ और प्रेष्ठ अन्तरात्मा परमात्माका (अपने पर) परमप्रेम, महा-काम, महाश्रृंगार, (अकामः सर्वकामो वा···), संसारकी विडम्ब-नाओंका उपहास, संसारके महातमस् अन्धकारमें भटकते हुए दीन जनोंके लिए करुणा (संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यम्), षड्-रिपुओंपर क्रोध (क्रोधे क्रोधः कथन्न ते), इनको परास्त करने, इन्द्रियों-की वासनाओंको जीतने, ज्ञान-दानसे दीनजनोंकी सहायता करनेके लिए उत्साह (युयोध्यस्मज्जुहुराणमेन), अन्तरारि षड्रिपु कहीं असावधान पाकर विवश न कर दें इसका भय (नरः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च), इन्द्रियोंके विषयोंपर और हाड-मांसके शरीरपर जुगुप्सा (मुखं लालाक्लिन्नं पिबति चषकं सासवमिव···अहो मोहान्धानां किमिव रमणीयं न भवति), और क्रीडात्मक लीला-स्वरूप अगाध, अनन्त जगत्का निर्माणविधान करानेवाली परमात्माकी (अपनी ही) शक्तिपर महाविस्मय (त्वमेवैकोऽस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुव ······)—सभी तो इस रसके अन्तर्भूत हैं।"

महाकवि बनारसीदासने शान्त रसका रसराजत्व सिद्ध करते हुए आत्मामें ही नवों रसोंकी स्थिति स्वीकार की है। डा० भगवानदासजीने जिस प्रकार ऊपर शान्तरसको संस्कृत साहित्यके उद्धरणोंके साथ रसराज

सिद्ध किया है, उसी प्रकार जैन कविने आत्मानुभूति और मौलिक चिन्तन-द्वारा आत्मस्वरूप शान्त रसमे सभी रसोंका अन्तर्भाव किया है—

गुन विचार सिंगार, वीर उद्यम उदार रुख।
करुना समरस रीति, हास हिरदै उछाह सुख॥
अष्ट करम दल मलन, रुद्र बरतै तिहि थानक।
तन विलेच्छ बीभच्छ, दुन्द मुख दसा भयानक॥
अदभुत अनन्त बल चिन्तवन, सान्त सहज वैराग ध्रुव।
नव-रस विलास परगास तब, सुबोध घट प्रगट हुव॥

अर्थात्—आत्माको ज्ञान गुणसे विभूषित करनेका विचार श्रृंगार, कर्म निर्जराका उद्यम वीररस, सब जीवोंको अपने समान समझना करुण-रस, हृदयमे उत्साह और सुखका अनुभव करना हास्यरस, अष्ट कर्मोंको नष्ट करना रौद्ररस, शरीरकी अशुचिताका विचार करना बीभत्स रस, जन्म-मरणादिका दुःख चिन्तन करना भयानक रस, आत्माकी अनन्त शक्तिको प्राप्त कर विस्मय करना अद्‌भुत रस और दृढ़ वैराग्य धारण करना तथा आत्मानुभवमे लीन होना शान्त रस है।

वैराग्यके साधन तत्त्वज्ञान-प्राप्तिके गुणस्थानरूप चौदह सोपान बतलाये गये है। पर रस विश्लेषणमे चार ही सोपान प्रधान है। सबसे प्रथम जगत्‌की वास्तविकताका ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। विभिन्न नामरूपात्मक यह जगत् मानव मनको नाना प्रलोभनों-द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है; जिससे अहकार और ममकारका सयोग होनेसे विभिन्न मानसिक विकारोंकी उत्पत्ति होती है। जब षड्‌द्रव्यों—जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालका वास्तविक परिज्ञान होता है और आत्माकी (जीवकी) इन सब द्रव्योंसे भिन्नत्व प्रतीति होने लगती है, उस समय प्रथम अवस्था—चतुर्थ गुणस्थान—आत्मानुभूति रूप सम्य-ग्दर्शनकी स्थिति आती है। यह रस अवस्था व्यापक है, इसमे आत्म-

शोधनकी प्रवृत्ति होती है, विभावसे हटकर स्वभाव रूप प्रवृत्ति होने लगती है। ऐन्द्रियिक सुख, उसका राशि-राशि सौन्दर्य सभी क्षणिक प्रतीत होने लगते हैं। मनुष्यका रूप, गौरव, वैभव, शक्ति, अहंकार कितने क्षणभंगुर हैं और इनकी क्षणभगुरतामें कितना कारुण्य विद्यमान है। अतः आत्म-दर्शनकी उत्पत्ति होना प्रथम अवस्था है।

प्रमादका, जिसके कारण सासारिक सुख-दुःख, उत्थान-पतन व्यापते हैं तथा स्वोत्थानकी प्रवृत्तिमे अनुत्साहकी भावना रहती है और आत्मोन्मुखरूप होनेवाला पुरुषार्थ ठढा पड जाता है, परिष्कार करना और इसे दूर करनेके लिए कटिबद्ध हो जाना वैराग्यकी द्वितीयावस्था है। तत्त्वचिन्तन द्वारा ही प्रमादको दूर किया जा सकता है, अतएव आत्मानुभवी अपने पुरुषार्थ-द्वारा शान्तरसकी उपलब्धिके लिए इस द्वितीय अवस्था को प्राप्त करता है। इस अवस्थामें भी नवों रसोंकी अनुभूति होती है।

तृतीय अवस्था उस स्थलपर उत्पन्न होती है, जब कषाय वासनाओ का पूर्ण अभाव हो जाता है। पूर्ण शान्तिमे बाधक कषाये ही हैं, अतएव इनके दूर होते ही आत्मा निर्मल हो जाती है। तत्वज्ञानकी चौथी अवस्था केवलज्ञानके उत्पन्न हो जानेपर पूर्ण आत्मानुभूति होती है। इस अवस्थामे पूर्णशान्तरस छलकने लगता है, आत्मा ही परमात्मा बन जाती है। आनन्दसागर लहराने लगता है।

महाकवि बनारसीदासने शान्तरसकी इन चारो अवस्थाओका सुन्दर विश्लेषण किया है। कविने अखण्ड-शान्तिको ही सर्वोत्कृष्ट शान्तरस माना है।

वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावै विसराम।
रस स्वादत सुख ऊपजें, अनुभव याको नाम॥

अर्थात्—अखण्ड शान्तिका अनुभव ही सबसे बड़ा सुख है, यही रस है और इसीके द्वारा मानव अपना अभीष्ट साधन कर सकता है। सर्व-

प्राणी समभाव भी इसीसे हो सकता है। अतएव **"नवमों सान्त रसनिकौ नायक"** मानना युक्ति सगत है।

रस-सिद्धान्तके निरूपणमें कवि बनारसीदासने जितनी मौलिकता दिखलाई, उतनी अन्य जैन कवियोंने नहीं। इन्होंने स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सचारीभाव इन चारों ही रसाङ्गोका नवीन दृष्टिकोणसे विवेचन किया।

रस-सिद्धान्तपर सवत् १६७० मे मानशिव कविने 'भाषा-कवि-रस मञ्जरी' शृङ्गाररस विपयक रचना लिखी है। इसमे रीति कालके अन्य कवियोंके समान नायिका-भेदपर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि विभाव, अनुभावोका विश्लेपण कपाय और वासनाओंके अनेक भेद-प्रभेदोंके विवेचन-द्वारा किया है, परन्तु नवीनता कुछ भी नही है। शृङ्गाररस और नायिका-भेदपर मानकविकी संयोग द्वात्रिंशिका (१७३१), उदय-चन्दका अनूप रसाल '(१७२८) 'और उदैराजका वैद्यविरहणि प्रबन्ध (१७७२) भी उपलब्ध हैं।

इन जैन साहित्यस्रष्टाओंने रस-विश्लेषणमें मूलतः स्थायी भावोकी स्थिति राग-द्वेष मनोविकारमे मानी है। क्योकि समस्त मनोवेगोंका सीधा सम्बन्ध इन्हीं दोनों भावोसे है। मानवका अहंभाव इन्हीं दोनोंके रूपमें अभिव्यंजित होता है। अतएव रति, हास, उत्साह और विस्मय साधारणतः अहभावके उपकारक होनेके कारण रागके अन्तर्गत और शोक, क्रोध, भय और जुगुप्सा अहभावके उपकारक होनेके कारण द्वेषके अन्तर्गत आते हैं। जब राग और द्वेष दोनोका परिमार्जन हो जाता है, तब वैराग्य—निर्वेदभावकी उत्पत्ति होती है। यह अहंभावकी समरसता की अवस्था है, आत्मा इसमें स्वोन्मुख रूपसे प्रतिभासित होने लगती है। लौकिक दृष्टिसे प्रथम चार भाव मधुर होनेके कारण सुखकी अभिव्यक्ति और दूसरे चार भाव कटु होनेके कारण दुःखकी अभिव्यक्ति करते हैं। इसप्रकार जैन लेखकोंने भावोंकी स्थिति राग और द्वेषके अन्तर्गत मान-

कर रसका विश्लेषण किया है। रससंख्या और भावोंकी संख्या रीति-कालके अन्य कवियोंके समान ही मानी है।

संस्कृत साहित्यके जैन कवियोंके समान हिन्दी भाषामे भी जैन कवियोंने अलकारपर ग्रन्थ-रचना की है। जिस प्रकार भारतीय साहित्यमे अलकार-परम्पराका भी क्रमिक विकास हुआ है उसी प्रकार जैन साहित्यमे भी अलकारोका क्रमिक विकास विद्यमान है। अलकार-चिन्तामणिमे भगवज्जिनसेनाचार्यने चित्रा-लकार और यमकालकारके भेद-प्रभेदोंकी सख्या पचाससे भी अधिक बत-लाई है। हिन्दीभाषामे कुँवर-कुशलका लखपतजयसिन्धु और उत्तमचन्द्र-का अलकारआशय मजरी प्रसिद्ध है। इन दोनो ग्रन्थोमे अलकार और अलकार्यका भेद स्पष्ट किया गया है। रस (भाव), वस्तु और अलकार तीनोंकी पृथक् स्थिति मानी गयी है। अलकार रसका उपकार करता है—तीव्रतर बनाता है तथा वस्तुके चित्रणमे रमणीयता या आकर्षण उत्पन्न करता है। अतएव रस (भाव) और वस्तु दोनो अलकार्य है और अलकार उनके अलकरणका साधन है।

अलंकार

रस काव्यकी आत्मा है, पर इसकी वास्तविक स्थिति अलकारके बिना बन नहीं सकती। क्योंकि भावमे रमणीयता, कोमलता, सूक्ष्मता और तीव्रता साधारण शब्दोके द्वारा नहीं आ सकती है। उक्तिकी चमत्कके द्वारा ही भावमे सौन्दर्य या रमणीयता उत्पन्न होती है। अतएव सुन्दर भावोंकी अभिव्यञ्जनाके लिए सुन्दर उक्तियोंका होना भी आवश्यक है। जैन साहित्यमें ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय साहित्यमे शब्द और अर्थ-को बिल्कुल भिन्न नहीं माना है। अतएव अनुभूति और अभिव्यक्तिमे भी पार्थक्य नहीं है। अतः शब्दोमे रमणीयता उत्पन्न करनेवाला साधन अल-कार काव्यकी आत्मा न होकर भी काव्यके रूप-प्रसाधनके लिए अनिवार्य है। जिस प्रकार आत्माकी रमणीयताके लिए शरीरका रमणीय होना भी आवश्यक है, उसी प्रकार भावोकी रमणीयताके लिए शब्दोका रमणीय

होना भी अनिवार्य है। शब्द और अर्थ दोनों सापेक्ष हैं, शब्द द्रव्य हैं तो अर्थ भाव; अतः भावके बिना द्रव्यकी स्थिति और द्रव्यके बिना भावकी स्थिति नहीं बन सकती है। दोनों ही परस्परापेक्षित हैं, एकको सुन्दर बनानेके लिए दूसरेका रमणीय होना आवश्यक है।

व्यावहारिक धरातलपर अलकारोंके द्वारा अपने कथनको कवि या लेखक श्रोता या पाठकके मनमें भीतर तक बैठानेका प्रयत्न करता है, बातको बढा-चढ़ाकर उसके मनका विस्तार करता है, बाह्य वैषम्य आदिका नियोजन कर आश्चर्यकी उद्भावना करता है तथा बातको घुमा-फिराकर वक्रताके साथ कहकर पाठककी जिज्ञासाको उद्दीप्त करता है। कवि अपनी बुद्धिका चमत्कार दिखलाकर पाठकके मनमे कौतूहल जाग्रत करता है। स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, जिज्ञासा और कौतूहल अलकारोके आधार हैं। साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार अलकारोके मूर्तरूप हैं। उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि साधर्म्य-मूलक, अतिशयोक्ति, उदात्तसार आदि अतिशयमूलक; विरोध, विभावना, असगति, व्याघात आदि वैषम्यमूलक; यथासख्य, कारणमाला, स्वभावोक्ति आदि औचित्यमूलक; अप्रस्तुतप्रशसा, व्याजोक्ति आदि वक्रतामूलक एव यमक, श्लेष आदि चमत्कारमूलक है। अतएव निष्कर्ष यह है कि अलकारोंका मूलाधार अतिशय, वक्रता और चमत्कार है। इन्ही तीनोके कारणभेदसे अलकारोंके सहस्रो भेद किये गये है।

कवि उत्तमचन्दने अभिव्यक्तिको रमणीय बनानेका सबसे प्रबल साधन प्रस्तुतविधानको बतलाया है। प्रस्तुतकी श्रीवृद्धिके लिए अप्रस्तुतका उपयोग। यह अप्रस्तुतविधान प्रधानतः साम्यपर आश्रित रहता है। साम्य तीन प्रकारका होता है—रूपसाम्य, धर्मसाम्य और प्रभावसाम्य। अलंकारोंका प्राण या आधार यही अप्रस्तुतविधान है, इससे विभिन्न रूपों और भेदोंका आलम्बन लेकर अलकारोंकी सख्याका वितान किया

गया है। भावोंके मानवीयकरणके लिए भी अलंकारोंका प्रयोग किया जाता है। इन्होंने शब्दालंकार और अर्थालकारोंकी संख्या २४३ मानी है। लक्षण और उदाहरण बहुत कम अलकारोंके दिये हैं।

जैन कवियोंने रीति साहित्यके अन्तर्गत छन्दविधानको भी माना है, अतएव छन्द-शास्त्रविषयक रचनाएँ अनेक उपलब्ध हैं। स्वयभू कविका छन्दो ग्रन्थ प्रसिद्ध है ही, इसके अतिरिक्त हेम कविका छन्दमालिका (१७०६), चेतन विजयका लघुपिगल (१८४७), ज्ञानसारका मालापिगल (१८७६), मेघराजका छन्दप्रकाश (१९ वी शती), उदयचन्दका छन्द प्रबन्ध और वृन्दावनका छन्दशतक श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंमें हिन्दी और संस्कृतके सभी प्रधान छन्दोंके लक्षण आये हैं। जैन कवियोंने भिन्न-भिन्न स्वाभाविक अभिव्यक्तियोंके लिए छन्दोंका आदर्श सॉचा तैयार किया है। जितने प्रकारकी अभिव्यक्तियॉ लयके सामञ्जस्यके साथ हो सकती हैं, उनका विधान छन्दशास्त्रमे किया है।

छन्दशास्त्र

वास्तविक बात यह है कि लयका स्थान जीवनमें महत्त्वपूर्ण है। मानवकी हृत्तन्त्रियोंके अतिरिक्त नदी, निर्झर, पेड़-पौधे, लता-गुल्म आदिमे सर्वत्र लय पायी जाती है। जीवनका सारतत्त्व लय ही है, इसी कारण उत्कट हर्ष, विषादके उच्छ्वासोंमे गुरुत्व और लघुत्वके कारण लयकी लहरें उठती रहती हैं। मधुर स्वर और लयको सुनकर मानवमात्रकी अन्तररागिनी तन्मय हुए बिना नहीं रह सकती है। अतः छन्दविधान इसी लयको नियन्त्रित करता है, यह भाषामें रागका प्रभाव, उसकी शक्ति और उसकी गतिके नियमनके साथ अन्तर स्पन्दनको तीव्रतम बनाता है। जिस प्रकार पतग तागेके लघु-गुरु सकेतोंके अनुसार ऊँची-ऊँची उड़ती जाती है, उसी प्रकार कविताका राग छन्दके संकेतोंपर उत्तरोत्तर गतिशील होता है। नादसौन्दर्य और प्रवाहका निर्वाह छन्दमे

ही किया जा सकता है। अतएव कविताको एक सुनिश्चित मार्गपर ले चलनेके लिए जैन-साहित्यकारोंने छन्द-व्यवस्था निरूपित की है।

१९ वीं शतीके उत्तरार्धमें कविवर वृन्दावनदासने १०० प्रकारके छन्दोंके बनानेकी विधि तथा छन्दशास्त्रकी आरम्भिक बातें बड़े सुन्दर और सरल ढंगसे लिखी हैं। इतना सरल और सुपाठ्य पिंगल-विषयका अन्य ग्रन्थ अबतक हमें नहीं प्राप्त हो सका है। आरम्भमें ही लघु-गुरुके पहचाननेकी प्रक्रिया बतलाता हुआ कवि कहता है[1]—

लघुकी रेखा सरल (।) है, गुरुकी रेखा वंक (ऽ)।
इहि क्रम सौं गुरु-लघु परखि, पढ़ियौ छन्द निशंक॥
कहुँ कहुँ सुकवि प्रबन्ध महँ, लघुको गुरु कहि देत।
गुरुहूँको लघु कहत हैं, समुझत सुकवि सुचेत॥

आठों गणोंके नाम, स्वामी और फलका निरूपण एक ही सवैयेमें करते हुए बताया है—

मगन तिगुरु भूलच्छि लहावत, नगन तिलघु सुर शुभ फल देत।
भगन आदि गुरु इन्दु सुजस, लघु आदि यगन जल वृद्धि करेत॥
रगन मध्य लघु, अगिन मृत्यु, गुरुमध्य जगन रवि रोग निकेत।
सगन अन्त गुरु, वायु भ्रमन तगनत लघू नव शून्य समेत॥

छन्दोंमें मात्रिक और वार्णिक छन्दोका विचार अनेक भेद-प्रभेदों सहित विस्तारसे किया गया है। लक्षणोंके साथ उदाहरण भी कविने अत्यन्त मनोज्ञ दिये हैं। अचलधृत छन्दमे १६ वर्ण माने है, इसमें ५ भगण और १ लघु होता है। कवि कहता है—

करम भरम वश भमत जगत नित,
सुर-नर-पशु तन धरत अमित तित।

---

१. सम्पादक जमनालाल जैन साहित्यरत्न और प्रकाशक मान्यखेट जैन संस्थान, मलखेड (निजाम)

सकल अथिर लखि परवश परकृत,
धरत रतन जिन भनित अचलधृत ॥

इसी प्रकार गीता प्रकरण सप्तक और दण्डक प्रकरणमे अनेक रमणीय उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कविकी इस रचनासे छन्दशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करनेमें पाठकोंको अत्यन्त सहूलियत होगी। अशोकपुष्पमञ्जरी छन्द, जिसमे ३१ वर्ण एक गुरु एक लघुक्रमसे होते है, का कितना सुन्दर और सरस निरूपण किया है।

केवली जिनेशकी प्रभावना अचिंत मित,
कंज पै रहैं सु अन्तरिच्छ पाद कंज री।
मूष और बिडाल मोर व्याल बैर टाल टाल,
हैं जहाँ सुमीन ह्वै निचीत भीति मंजरी ॥
अंग-हीन अंग पाय, हर्ष सो कहा न जाय,
नैनहीन नैन पाय मंजु कंज विजरी ॥
और प्रातिहार्यकी कथा कहा कहै सुवृन्द,
थोक शोकको हरै अशोकपुष्पमंजरी ॥

इसी प्रकार अनगशेखर, जलहरन, मनहरन आदि छन्दोका सोदाहरण लक्षण १०९ पद्योमे बतलाया गया है। हिन्दी भाषामे जैन कवियोंने छन्दो-विषयक अनेक रचनाएँ लिखी है, इनमे कई रचनाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कोष विषयक हिन्दी ग्रन्थोमे महाकवि बनारसीदासकी नाममाला, केसरकीर्त्तिका नामरत्नाकर, विनयसागरकी अनेकार्थ-नाममाला और चेतनविजयकी आतम-बोधनाममाला प्रसिद्ध है।

कोष

बनारसीदासकी नाममाला[1] हिन्दी भाषाका शब्दभण्डार बढ़ानेके

१. संपादक जुगलकिशोर मुख्तार, प्रकाशक—वीर सेवामन्दिर सरसावा, जि० सहारनपुर।

लिए एक अद्‌भुत कृति है इसमे ३५० विषयोके नामोंका दोहोमें सुन्दर संकलन किया गया है। नामोंमे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाके शब्दोका भी व्यवहार किया गया है। कविने विषयारम्भ करते हुए तीर्थंकरके नाम लिखे हैं—

तीर्थंकर सर्वज्ञ जिन, भवनासन भगवान।
पुरुषोत्तम आगत सुगत, संकर परम सुजान॥
बुद्ध मारजित केवली, वीतराग अरिहंत।
धरमधुरन्धर पारगत, जगदीपक जयवन्त॥

यद्यपि यह कोप धनंजय कविकी सस्कृतनाममालासे बहुत कुछ मिलता-जुलता है, पर उसका पद्यानुवाद नहीं है। अनेक नामोंमे कविने अन्य सस्कृत कोषोकी सहायता ली है तथा अपने शब्दज्ञान-द्वारा अनेक मौलिक उद्भावनाएँ भी की है। हिन्दी भाषाका शब्दभण्डार इसके द्वारा पूरा किया जा सकता है। कविने जिस वस्तुके नामोंका उल्लेख किया है, उसका नाम आरम्भमे दे दिया है। कोषकारकी यह शैली आशुबोधगम्य है, तथा इसके द्वारा वस्तु नामोको अवगत करनेमे कोई कठिनाई नहीं होती है। सोनेके नामोका उल्लेख करता हुआ कवि कहता है—

हाटक हेम हिरण्य हरि, कंचन कनक सुवर्ण।

इसी प्रकार रजत, आभूषण, वस्त्र, वन, मूल, पुष्प, सेना, ध्वजा आदि विषयोंकी नामावलीका निरूपण किया गया है। इस कोषमे कुल १७५ दोहे है। कोशमे कविने अचभा, अडोल, अब, आद, आठ, धान, खौरि, चकवा, जयवत, जेहर, झण्ड, टाड, डर, तपा, तलार, नरम, पूतली, पेड आदि देशी शब्दोंका भी प्रयोग किया है।

भैया भगवतीदासकी अनेकार्थनाममाला भी एक पद्यात्मक कोश है, इसमे एक शब्दके अनेकानेक अर्थोंका दोहोंमें संकलन किया गया है। इस कोशमें तीन अध्याय हैं, इनमे क्रमशः ६३, १२२ और ७१ दोहे हैं।

यह कोश भी हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। रचनाशैली सरस और सुन्दर है। कविने स्वयं ही कहा है—"अर्थ अनेक जु नामकी माला भनिय विचारि" : नमूनेके लिए गौ और सारंग शब्दके पर्यायवाची शब्द नीचे दिये जाते हैं—

गो घर गो तरु गो दिसा गो किरना आकास।
गो इन्द्री जल छन्द पुनि गो वानी जन भास॥

—गो-शब्द

कुरकटु काम कुरंगु कवि कोकु कुंभु कोदंडु।
कंजरु कमल कुठारु हलु झोडु कोपु पविदंडु॥
करटु करमु केहरु कमठु कर कौलाहल चोरु।
कंचनु काकु कपोतु अहि कंवल कलसरु नीरु॥
खगु नगु चातिगु रूंग खलु खरु खोदनउ कुदालु।
भूधरु भूरुह भुवनु भगु भट्टु भेकज अरु कालु॥
मेखु महिषु उत्तिम पुरुषु वृषु पारस पाषानु।
हिमु जमु ससि सूरजु सलिल बारह अंग बखानु॥
दीप कूपु कजलु पवनु मेघु सबल सब भृंग।
कवि सु भगौती उचरई ए कहियत सारंग॥

—सारग

परिशिष्ट

परिशीलित ग्रन्थोंके कतिपय प्रमुख ग्रन्थ-रचयिताओंका अति संक्षिप्त परिचय

महाकवि स्वयम्भूदेव—महाकवि स्वयम्भूदेवके पिताका नाम मारुतदेव और माताका नाम पद्मिनी था। इनका समय ईस्वी सन् ७७० है। यह गृहस्थ थे, इनकी दो पत्नियाँ थी। एकका नाम आदित्याम्बा और दूसरीका सामिअब्बा था। पुष्पदन्तके महापुराणके टिप्पणसे अवगत होता है कि यह 'आपुली सघीय' थे। यह पहले धनञ्जयके आश्रित थे, इस समय इन्होंने पउमचरिउकी रचना की थी। इसके पश्चात् इन्होंने धवलइयाका आश्रय ग्रहण किया था और इस समय इन्होने 'रिट्ठणेमिचरिउ' का प्रणयन किया।

स्वयम्भूदेवके अनेक पुत्र थे, इनमें त्रिभुवनदेव बहुत प्रसिद्ध और सुयोग्य विद्वान् थे। यह बचपनसे ही पिताके समान कविता करने लगे थे। पउमचरिउमे बताया गया है कि यदि त्रिभुवनदेव न होता तो पिताके काव्योंका, कुल और कवित्वका समुद्धार कौन करता। अन्य व्यक्ति जिस प्रकार पिताके धनका उत्तराधिकार ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार त्रिभुवनने अपने पिताके सुकवित्वका उत्तराधिकार लिया। स्वयम्भूका बड़ा ही कवि था। इनके पिता मारुतदेव भी अच्छे कवि थे। स्वयम्भूने अपने छन्दशास्त्रमें 'तहाय माउरदेवस्स' कहकर उनके एक दोहेका उदाहरण स्वरूपमें उल्लेख किया है।

अपभ्रश भाषाके इस महाकविने पउमचरिउ—जैन रामायण और रिट्ठणेमिचरिउ ये दो महाकाव्य एव पद्धड़िसाबद्ध, पंचमीचरिउ ये दो अन्य काव्य ग्रन्थ रचे थे। इनके अतिरिक्त 'स्वयंभूच्छन्दस' नामक अपभ्रंशका छन्द ग्रन्थ तथा अपभ्रशका एक व्याकरण भी लिखा था। यह व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध तो नहीं है, पर रामायणमें निम्न प्रकार उल्लेख मिलता है।

तावच्चिय य सच्छंदोभमइ अवब्भंस-मच्च-मायंगो ।
जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुसो पडइ ॥—पउमचरिउ १-५

महाकवि पुष्पदन्त—अपभ्रंश भाषाके महान् कवि पुष्पदन्त काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट और माताका नाम मुग्धादेवी था। इनके माता-पिता पहले शैव थे, फिर जैन हो गये थे और अन्तमें जैन विधिके अनुसार सन्यास लेकर शरीर त्याग किया था। अभिमानमेरु, अभिमानचिह्न, काव्यरत्नाकर, कविकुलतिलक, सरस्वती-निलय और कव्वपिसल्ल (काव्यपिशाच) ये इनकी उपाधियाँ थीं। इन उपाधियोंसे प्रतीत होता है कि इनका स्वभाव अभिमानी था और यह अप्रतिम प्रतिभाशाली महाकवि थे। यह पहले किसी वीरराय नामक राजा-के आश्रयमें थे। वहाँ इन्होंने काव्यरचना भी की थी, परन्तु राजाद्वारा उपेक्षित होनेपर वहाँसे चलकर क्षीणकाय मान्यखेट आये। वहाँ राष्ट्र-कूटनरेश कृष्णराज (तृतीय) के मन्त्री भरतके आश्रममें रहने लगे और यहीं पर महापुराणकी रचना की। इनकी रचनाओंसे अवगत होता है कि यह विदग्ध दार्शनिक, प्रकाण्ड सिद्धान्तमर्मज्ञ और असाधारण प्रतिभाशाली कवि थे। इनका समय ई० सन् ९५९ माना जाता है। इनकी निम्न रचनाएँ हैं। तिसट्ठिमहापुरिसगुणालकारु या महापुराण महाकाव्य और णयकुमार चरिउ तथा जसहरु चरिउ खण्डकाव्य हैं।

महाकवि बनारसीदास—जैनसाहित्यमें हिन्दी भाषाका इतना बड़ा अन्य कवि नहीं हुआ। इनका जन्म एक धनी मानी सम्भ्रान्त परिवारमें हुआ था। इनके प्रपितामह जिनदासका साका चलता था, पितामह मूलदास हिन्दी और फ़ारसीके पंडित थे और यह नरवर (मालवा)में वहाँके मुसलमान नवाबके मोदी होकर गये थे। इनके मातामह मदन-सिंह चिनालिया जौनपुरके प्रसिद्ध जौहरी थे और पिता खड्गसेन कुछ दिनोंतक बंगालके सुल्तान मोदीखाँके पोतदार रहे थे। इनका जन्म जौनपुरमें माघ सुदी ११ सवत् १६४३ में हुआ था। यह श्रीमाल वैश्य

थे। यह बड़े ही प्रतिभाशाली सुधारक कवि थे। शिक्षा सामान्य प्राप्त की थी, पर अद्‌भुत प्रतिभा होनेके कारण यह अच्छे कवि थे। इन्होंने चौदह वर्षकी अवस्थामें एक हजार दोहा चौपाइयोंका नवरस नामक ग्रन्थ बनाया था, जिसे आगे चलकर, इस भयसे कि ससार पथभ्रष्ट न हो, गोमतीमें प्रवाहित कर दिया था।

इनके पिता मूलतः आगरा-निवासी ही थे तथा इन्हें भी बहुत दिनों तक आगरा रहना पड़ा था। उस समय आगरा जैनविद्वानोंका केन्द्र था। इनके सहयोगियोंमें पं० रामचन्द्रजी, चतुर्भुज वैरागी, भगवती-दासजी, धर्मदासजी, कुँवरपालजी और जगजीवनरामजी विशेष उल्लेख योग्य हैं। ये सभी कवि थे। महाकवि बनारसीदासका सन्तकवि सुन्दर-दाससे सम्पर्क था। बताया गया है—"प्रसिद्ध जैनकवि बनारसीदासके साथ सुन्दरदासकी मैत्री थी। सुन्दरदास जब आगरे गये थे तब बनारसी-दासके साथ सम्पर्क हुआ था। बनारसीदासजी सुन्दरदासकी योग्यता, कविता और यौगिक चमत्कारोंसे मुग्ध हो गये थे। तभी इतनी श्लाघायुक्त कंठसे उन्होंने प्रशंसा की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसी-दासजी भी थे। उनके गुणोंसे सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये, इसीसे वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी।"

महाकवि बनारसीदासका सम्पर्क महाकवि तुलसीदासके साथ भी था। एक किंवदन्तीमें कहा गया है कि कवि तुलसीदासने अपनी रामायण बनारसीदासको देखनेके लिए दी थी। जब मथुरासे लौटकर तुलसीदास आगरा आये तो बनारसीदासने रामायणपर अपनी सम्मति **"विराजै रामायण घट माहीं। मर्मी होय मर्म सो जानै मूरख समझै नाहीं।"** इत्यादि पद्यमें लिखकर दी थी। कहते हैं इस सम्मतिसे प्रसन्न होकर ही तुलसीदासने कुछ पद्य भगवान् पार्श्वनाथकी स्तुतिमें लिखे हैं। ये पद्य शिवनन्दन द्वारा लिखित गोस्वामीजीकी जीवनीमें प्रकाशित हैं। इनकी निम्न रचनाएँ हैं—

१. नाममाला—एक सौ पचहत्तर दोहोंका छोटा-सा शब्दकोष है। इसकी सं० १६७० में जौनपुरमें रचना की थी।

२. नाटक समयसार—यह कविवरकी सबसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण रचना है। इसकी रचना सवत् १६९३ मे आगरामें की गयी थी।

३. बनारसी विलास—इसमे ५७ फुटकर रचनाएँ सग्रहीत हैं। इसका सकलन सवत् १७०१ मे प० जगजीवनने किया था।

४. अर्द्धकथानक—इसमे कविने अपनी आत्मकथा लिखी है। इसमे सवत् १६९८ तककी सभी घटनाएँ दी गयी है।

भैया भगवतीदास—यह आगराके निवासी थे। ओसवाल जैनी और कटरिया गोत्रके थे। इनके पिताका नाम लालजी था और दशरथ साहू इनके पितामह थे। इनके जन्मसवत् एवं मृत्युसंवत्के सम्बन्धमे कुछ पता नहीं है। हाँ इनकी रचनाओंमें संवत् १७३१ से १७५५ तकका उल्लेख मिलता है। वि० सं० १७११मे हीरानन्दजीने पचास्तिकायका अनुवाद किया था, उसमें उन्होंने आगरामें एक भगवतीदास नामक व्यक्तिके होनेका उल्लेख किया है। सम्भवतः भैया भगवतीदास ही उक्त व्यक्ति थे। इन्होंने कविता में अपना उल्लेख भैया, भविक और दासकिशोर उपनामोंसे किया है। इनकी समस्त रचनाओंका सग्रह ब्रह्मविलासके नामसे प्रकाशित है। यह बनारसीदासके समान अध्यात्मरसिक कवि थे। इनकी कवितामें प्रसादगुण एवं अलंकार सर्वत्र पाये जाते हैं। उर्दू और गुजराती भाषाका पुट भी इनकी रचनाओंमे विद्यमान है। थोड़े शब्दोंमें गहन अर्थ और परिष्कृत भावनाओंका निरुपण करना इनकी कविताकी प्रमुख विशेषता है। सरसता और सरलता इनके काव्यका जीवन है।

ब्रह्मगुलाल--यह पद्मावती पुरवाल जातिके थे। यह चदवार (फिरोजाबाद, जिला आगरा)के पास टापू नामक ग्रामके निवासी थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ कृपणजगावनचरित्र है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविवर ब्रह्मगुलालजी भट्टारक जगभूषणके शिष्य थे।

टापू गाँवके राजा कीरतसिंह थे, यहींपर धर्मदासजीके कुलमें मथुरामल्ल थे। यह ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें प्रसिद्ध थे। कविने इन्हींके उपदेशसे सगुण मार्गका निरूपण करनेके लिए संवत् १६७१मे इस ग्रन्थकी रचना की थी। यह अच्छे कवि थे। भाषापर इनका अच्छा अधिकार था।

आनन्दघन या घनानन्द—यह श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध सन्त कवि हैं। यह उपाध्याय यशोविजयजीके समकालीन थे। यशोविजयका जन्म संवत् १६८० बताया जाता है, अतः इनका काल भी वही है। हिन्दीमें इनकी 'आनन्दघनबहत्तरी' नामक कविता उपलब्ध है, यह रामचन्द्र काव्यमालामें प्रकाशित है। यह आध्यात्मिक कवि थे। इनकी रचनाओंमें समतारस और शान्तिरसकी धारा अवश्य मिलती है। रचनाएँ हृदयको स्पर्श करती है।

यशोविजय—यह भी श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका जन्म संवत् १६८० और मृत्यु सवत् १७४५ के आसपास हुई थी। यह गुजरातके डभोई नामक नगरके निवासी थे। यह नयविजयजीके शिष्य थे। संस्कृत, प्राकृत, गुजराती और हिन्दी भाषामें कविता करते थे। सस्कृत भाषामें रचे गये इनके अनेक ग्रन्थ है। यह गुजराती थे, पर विद्याभ्यासके सिलसिलेमें इन्हें काशी भी रहना पड़ा था। इसी कारण यह हिन्दीमें भी उत्तम कविता करते थे। इनके ७५ पदोंका एक सग्रह 'जसविलास'के नामसे प्रकाशित है। इनकी कवितामें आध्यात्मिक भावोंकी बहुलता है। भाषा आडम्बर शून्य है, पर भाव ऊचे हैं।

खेमचन्द—यह तापगच्छकी चन्द्रशाखाके पण्डित थे। इनके गुरुका नाम मुक्तिचन्द्र था। आपने नागर देशमे सवत् १७६१ में 'गुणमाला चौपई' अथवा 'गजसिंहगुणमालचरित'की रचना की है। यह ग्रन्थ अभी-तक अप्रकाशित है। इसकी जो प्रति जैनसिद्धान्त भवन आरामें सुरक्षित उसका लिपिकाल सं० १७८८ है। इनकी कवितामें वर्णनोंकी विशेषता है। भाषापर गुजरातीका बहुत बड़ा प्रभाव है। इनकी अन्य रचनाएँ अज्ञात हैं।

भूधरदास—कविवर भूधरदास आगराके निवासी थे। इनकी जाति खण्डेलवाल थी। इनका समय अनुमानतः १७ वीं शतीका अन्तिम भाग या १८ वीं शतीका प्रारम्भिक भाग है। इनके द्वारा रचित पार्श्वपुराणकी प्रतिका लिपिकाल १७५४ है, अतः यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि इनका समय १८ वीं शतीका पूर्वार्द्ध ही सम्भव है। इनकी कविता उच्चकोटिकी होती है। श्री प्रेमीजीने इनकी कविताके सम्बन्धमे लिखा है—"हिन्दीके जैन साहित्यमें पार्श्वपुराण ही एक ऐसा चरित ग्रन्थ है, जिसकी रचना उच्चश्रेणीकी है, जो वास्तवमें पढ़ने योग्य है और जो किसी संस्कृत प्राकृत ग्रन्थका अनुवाद करके नहीं, किन्तु स्वतन्त्र रूपमे लिखा गया है। इनकी सभी रचनाओंमे कवित्व है। निम्न तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—१.—**पार्श्वपुराण** (महाकाव्य)—इसमें भगवान् पार्श्वनाथका जीवन वर्णित है। २—**जैनशतक**—यह नीतिविषयक सुन्दर रचना है। इसमे १०७ कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय हैं। ३—**पदसंग्रह**—इसमें ८० पदोंका सकलन है।

द्यानतराय—यह कवि आगराके निवासी थे। इनका जन्म अग्रवाल जातिके गोयल गोत्रमे हुआ था। इनके पूर्वज लालपुरसे आकर आगरामें बस गये थे। इनके पितामहका नाम वीरदास और पिताका नाम श्यामदास था। इनका जन्म संवत् १७३३ में हुआ था और विवाह संवत् १७४८ मे हुआ था। विवाहके समय इनकी अवस्था १५ वर्षकी थी। उस समय आगरामे मानसिंहजीकी धर्मशैली थी। कवि द्यानतरायने उससे लाभ उठाया था। कविको प० विहारीदास और पं० मानसिंहके धर्मोपदेशसे जैनधर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। इन्होंने सवत् १७७७ मे श्री सम्मेदशिखरकी यात्रा की थी। इनका महान् ग्रन्थ धर्मविलासके नामसे प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थमे इनकी समस्त कविताएँ सगृहीत हैं, यह सकलन सवत् १७८० मे कविने स्वय किया है। इस संकलन मे ३३३ पद संग्रहीत हैं, जो स्वय एक बृहद्काय ग्रन्थका रूप ले सकते हैं।

पूजाओंके अतिरिक्त ४५ विषयोंपर इनकी फुटकर कविताएँ हैं। इनकी कविताएँ नीति और उपदेशात्मक अधिक हैं। भाषापर उर्दूका प्रभाव है। विचार और भावनाएँ सुलझी हुई हैं। संसारका जीता-जागता चित्र देखिए—

रुजगार बनै नाहिं धन तौ न घर माहिं
खानेकी फिकर बहु नारि चाहै गहना।
दैनेवाले फिरि जाहिं मिलै तो उधार नाहिं,
साझी मिलैं चोर धन आवै नाहिं लहना।
कोऊ पूत ज्वारी भयौ घर माहिं सुत थयौ,
एक पूत मरि गयौ ताको दुःख सहना।
पुत्री वर जोग भई ब्याही सुता जम लई,
एते दुःख सुख जानै तिसे कहा कहना॥

वृन्दावन—कवि वृन्दावनका जन्म शाहाबाद जिलेके बारा नामक गाँवमें सवत् १८४८ में हुआ था। आप गोयलगोत्रीय अग्रवाल थे। कविके वंशधर बारा छोड़कर काशीमें आकर रहने लगे थे। कविके पिताका नाम धर्मचन्द्र था। १२ वर्षकी अवस्थामें वृन्दावन अपने पिताके साथ काशी आये थे। काशीमें यह लोग बाबर शहीदकी गलीमें रहते थे।

वृन्दावनकी माताका नाम सिताबी और स्त्रीका नाम रुक्मिणी था। इनकी पत्नी बड़ी धर्मात्मा और पतिव्रता थी। इनकी ससुराल भी काशीके ठठेरी बाजारमें थी। इनके श्वसुर एक बड़े भारी धनिक थे। इनके यहाँ उस समय टकसालाका काम होता था। एक दिन एक किरानी अंग्रेज इनके श्वसुरकी टकसाला देखनेके लिए आया। वृन्दावन भी उस समय वहीं उपस्थित थे। जब उस किरानी अंग्रेजने इनके श्वसुरसे कहा—"हम तुम्हारा कारखाना देखना चाहते हैं, कि उसमें कैसे सिक्के तैयार होते हैं। वृन्दावनने उस अंग्रेज किरानीको फटकार दिया और उसे टकसाला नहीं दिखलायी। वह अंग्रेज नाराज होता हुआ वहाँसे चला गया।

दैवयोगसे कुछ दिनोंके उपरान्त वही अंग्रेज किरानी काशीका कलक्टर होकर आया। उस समय वृन्दावन सरकारी खजाचीके पदपर आसीन थे। साहब बहादुरने प्रथम साक्षात्कारके अनन्तर ही इन्हे पहचान लिया और मनमें बदला लेनेकी बलवती भावना जागृत हुई। यद्यपि कविवर अपना कार्य बड़ी ईमानदारी, सचाई और कुशलतासे सम्पन्न

करते थे, पर जब अफ़सर ही विरोधी बन जाय, तब कितने दिनोंतक कोई बच सकता है। आखिरकार एक जाल बनाकर साहबने इन्हें तीन वर्षकी जेलकी सजा दे दी। इन्हे शान्तिपूर्वक उस अंग्रेजके अत्याचारोंको सहना पड़ा।

कुछ दिनके उपरान्त एक दिन प्रातःकाल ही कलक्टर साहब जेलका निरीक्षण करने गये। वहाँ उन्होने कविको जेलकी एक कोठरीमें पद्मासन लगाये निम्न स्तुति पढ़ते हुए देखा।

'हे दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधानजी।
अब मेरी व्यथा क्यों न हरो बार क्या लगी॥'

इस स्तुतिको बनाते जाते थे और भैरवीमें गाते जाते थे। कविता करनेकी इनमें अपूर्व शक्ति थी, जिनेन्द्रदेवके ध्यानमें मग्न होकर धारा प्रवाह कविता कर सकते थे। अतएव सदा इनके साथ दो लेखक रहते थे, जो इनकी कविताएँ लिपिबद्ध किया करते थे। परन्तु जेलकी कोठरीमें अकेले ही ध्यान मग्न होकर भगवान्का चिन्तन करते हुए गानेमें लीन थे। इनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित हो रही थी। साहब बहुत देरतक इनकी इस दशाको देखता रहा। उसने "खजाची बाबू। खजाची बाबू" कहकर कई बार पुकारा; पर कविका ध्यान नहीं टूटा। निदान कलक्टर साहब अपने आफिसको लौट गये। थोड़ी देरमें एक सिपाहीके द्वारा इनको बुलवाया और पूछा "तुम क्या गाटा और रोटा था।" वृन्दावनने उत्तर दिया—'अपने भगवान्से तुम्हारे अत्याचारकी प्रार्थना करता था। साहबके अनुरोधसे वृन्दावनने पुनः "हे दीनबन्धु श्रीपति" विनती उन्हें सुनायी और इसका अर्थ भी समझाया। साहब बहुत प्रसन्न हुआ ओर इस घटनाके तीन दिनके बाद ही कारागृहसे इन्हें मुक्त कर दिया गया। तभीसे उक्त विनती सकटमोचनस्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध हो गयी है। इनके कारागृहकी घटनाका समर्थन इनकी कवितासे भी होता है।

"श्रीपति मोहि जान जन अपनो,
हरो विघन दुख दारिद जेल।"

कहा जाता है कि राजघाटपर फुटही कोठीमें एक गार्डन साहब सौदागर रहते थे। उनकी एक बड़ी भारी दुकान थी। आपने कुछ दिन तक इस दुकानकी मैनेजरीका भी कार्य किया था। यह अनवरत कविता रचनेमे लीन रहते थे। जब यह जिनमन्दिरमे दर्शन करने जाते तो प्रति-

दिन एक विनती या स्तुति रचकर ही भगवान्‌के दर्शन करते । इनके साथ देवीदास नामक व्यक्ति रहते थे । इन्हें पद्मावती देवीका इष्ट था । यह शरीरसे भी बड़े बली थे । बड़े-बड़े पहलवान भी इनसे भयभीत रहते थे । इनके जीवनमें अनेक चमत्कारी घटनाएँ घटी हैं । इनके दो पुत्र थे अजितदास और शिखरचंद । अजितदासका विवाह आरामें बाबू मुन्नीलालजीकी सुपुत्रीसे हुआ था । अतः अजितदासजी आरा ही आकर बस गये । यह भी पिताके समान कवि थे । इनकी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं । इनके द्वारा रचित निम्न ग्रन्थ हैं—प्रवचनसार, तीस चौबीसी पाठ, चौबीसी पाठ, छन्दशतक, अर्हत्पासाकेवली और वृन्दावनविलास (फुटकर कविताओंका सकलन) इनके द्वारा रचित एक जैन रामायण भी है जिसकी अधूरी प्रति आराके एक सज्जनके पास है ।

बुधजन—इनका पूरा नाम विरधीचन्द था । यह जयपुरके निवासी खण्डेलवाल जैन थे । यह अच्छे कवि थे । इनका समय अनुमानतः उन्नीसवीं शताब्दीका मध्यभाग है । कविता करनेकी अच्छी प्रतिभा थी । इनके द्वारा विरचित निम्न चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं १—तत्त्वार्थबोध (१८७१), २—बुधजनसतसई (१८८१), पञ्चास्तिकाय (१८९१) और बुधजनविलास (१८९२) । इनकी भाषापर मारवाड़ीका प्रभाव है । किन्तु पदोंकी भाषा तथा बुधजन सतसईकी भाषा हिन्दी है ।

मनरंग—इनका पूरा नाम मनरंगलाल है । यह कन्नौजके निवासी पल्लीवाल थे । इनके पिताका नाम कनौजीलाल और माताका नाम देवकी था । कन्नौजमें गोपालदासजी नामक एक धर्मात्मा सज्जन निवास करते थे । इनके अनुरोधसे ही इन्होने चौबीसीपाठकी रचना की थी । इस प्रसिद्ध पाठका रचनाकाल संवत् १८५७ है । इसके अतिरिक्त इनके ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं—नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसन चरित्र, सप्तर्षि पूजा एवं शिखरसम्मेदाचलमाहात्म्य । शिखरसम्मेदाचलमाहात्म्यका रचनाकाल संवत् १८८९ है ।

अनुक्रमणिका

ग्रन्थकार एवं कवि

ग्रन्थोंकी अनुक्रमणिका

ज्ञानपीठके महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रकाशन

पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर
- महाबन्ध [१] १२)
- जैन शासन [द्वि० सं०] ३)

पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
- महाबन्ध [२,३,४] ३३)
- सर्वार्थसिद्धि १२)

पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य
- तत्त्वार्थवृत्ति १६)
- तत्त्वार्थराजवार्तिक [१] १२)
- न्यायविनिश्चय विवरण [भाग १-२] ३०)

पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य
- आदिपुराण [भाग १] १०)
- आदिपुराण [भाग २] १०)
- उत्तरपुराण १०)
- धर्मशर्माभ्युदय ३)

पं० हीरालाल शास्त्री, न्यायतीर्थ
- वसुनन्दि-श्रावकाचार ५)
- जिनसहस्रनाम ४)

पं० राजकुमार जैन साहित्याचार्य
- मदनपराजय ८)
- अध्यात्म-पदावली ४॥)

पं० नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य
- केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि ४)

पं० के० भुजबली शास्त्री
- कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची १३)

प्रो० हरिदामोदर वेलणकर
- सभाष्य रत्नमञ्जूषा २)

पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी
- नाममाला [सभाष्य] ३॥)

प्रो० ए० चक्रवर्ती
- समयसार [अंग्रेजी] ८)
- थिरुकुरल [तामिल लिपि] ५)

प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी
- करलक्खण [द्वि० सं०] ॥)

श्री भिक्षु धर्मरक्षित
- जातकट्टकथा [पाली] ९)

श्री कामताप्रसाद जैन
- हिन्दी जैनसाहित्यका संक्षिप्त इतिहास २॥=)

श्रीमती रमारानी जैन
- आधुनिक जैनकवि ३॥)

पं० गुलाबचन्द्र व्याकरणाचार्य
- पुराणसारसंग्रह [भाग१-२] ४)

पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल
- कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न २)

श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०
- मुक्तिदूत [उपन्यास] ५)